तंत्र-सूत्र

तंत्र-विज्ञान

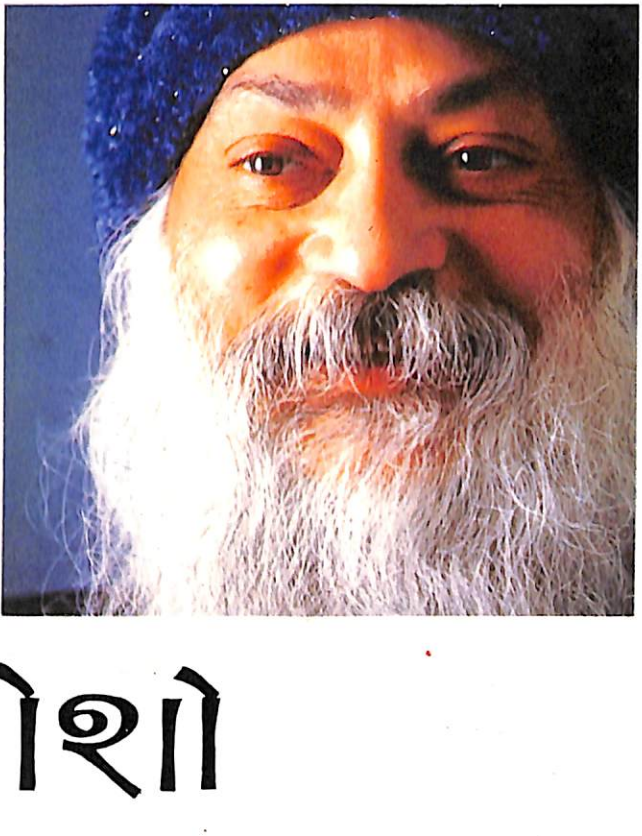

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र

पहला खंड

60

तंत्र-विज्ञान

(विज्ञान भैरव तंत्र : पहला खंड)

(तंत्र-सूत्र : ओशो द्वारा भगवान शिव के विज्ञान भैरव तंत्र पर दिए गए
80 प्रवचनों में से 1 से 8 प्रवचनों का संकलन।)

|| वीरशैव विज्ञान भैरव ||

ओशो

तंत्र-विज्ञान

(विज्ञान भैरव तंत्र : पहला खंड)

तंत्र-सूत्र : ओशो द्वारा भगवान शिव के विज्ञान भैरव तंत्र पर दिए गए 80 प्रवचनों में से 1 से 8 प्रवचनों का संकलन।

भगवान् रजनीश
आप के श्री-चरणों में
कोटी-कोटी नमन् ।

——— ....?

हिन्द पॉकेट बुक्स

संकलन : मा प्रेम कल्पना
संपादन : स्वामी आनंद मैत्रेय, स्वामी आनंद सत्यार्थी
संयोजन : स्वामी योग अमित
साज-सज्जा : स्वामी जगदीश भारती
लेज़र टाइपसेटिंग : स्पैक्ट्रम मीडिया, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड,
दिलशाद गार्डन, जी. टी. रोड, दिल्ली-110 095
मुद्रक : न्यूटेक फोटोलिथोग्राफर्स दिल्ली-110095
कापीराइट : सर्वाधिकार सुरक्षित
इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी भी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रेकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।
संस्करण : 2001
प्रतियां : 2000

भूमिका

यह तन रब्ब सच्चे का हुजरा

ब्रह्म-पुराण में एक गाथा कही जाती है कि सर्वांग सुंदरी अहिल्या को देखकर सभी देव-दानव विचलित हो उठे थे। लेकिन गौतम ऋषि उसी तरह गंभीर रहे, इसलिए ब्रह्मा ने वह सुंदरी गौतम ऋषि को दे दी...

एक बार जब गौतम तीर्थ-दर्शन के लिए गए, तो राजा इंद्र ने उन्हीं का रूप धारण कर लिया, और आश्रम के भीतर अहिल्या के पास पहुंच गए...

तभी गौतम आए, और उन्होंने अहिल्या को और इंद्र को श्राप दे दिया...

इस प्रतीकात्मक गाथा में हम गहरे उतर जाएं, तो देख सकते हैं कि गौतम किरण-विज्ञान के पहले ज्ञाता थे। तम के पार जा सके, अंधेरे के पार, इसीलिए गौतम नाम हुआ...

अहिल्या का अर्थ है—जो हिल न पाए। यह रासायनिक पदार्थ था—गौतम ऋषि की प्रयोगशाला में...

इंद्र—सूरज-मंडल के अंतर की एक किरण का नाम है। वही किरण प्रयोगशाला में आई, तों खोज का काम आगे बढ़ा...

श्राप देने का अर्थ है—कीलित कर देना।

वही किरण कीलित हुई तो पदार्थ के चमक उठने पर गौतम ने उसमें अपना ही रूप देखा...

भग का अर्थ है—योनि, वह नाड़ी जो सात ग्रहों की किरणों को धरती पर लाती है।

और जो गौतम ने कहा—इंद्र ! तुम हजार भग वाले हो जाओ, उसका अर्थ है—तुम हजार नाड़ियों वाले हो जाओ और ब्रह्मांड की शक्ति को धरती पर ले आओ।

और गौतम ऋषि ने अहिल्या से कहा—तुम शिला बन जाओ ! इसी तरह प्रयोगशाला में रहो, जब तक मेरी खोज पूरी नहीं होती। साथ ही वरदान

दिया—जब तुम गोमती नदी में मिल जाओगी, अति सुंदर हो जाओगी...

यह किसी बहती हुई नदी से मिलना—रासायनिक खोज का दुनिया में विचरण करने का संकेत है, विज्ञान का लोगों तक पहुंच जाना...

मैं इसी गाथा की रोशनी में—ओशो को इंद्र कहना चाहती हूं, सूरज की किरण, आत्मा की किरण, चेतना की किरण, जो हमारी स्थूल की दुनिया में आई तो चिंतन प्रवाहित होने लगा...

'हुजरा' लफ्ज़ उस ग़ार-गुफा या कोठरी के लिए होता है, जहां बैठकर कोई बरसों-बरसों साधना करता है, और फिर वह स्थान पूजनीय हो जाता है। लेकिन तंत्र-विज्ञान उससे बहुत आगे है, वह बाहर की किसी गुफा-ग़ार को नहीं, अपने तन को हुजरा बना लेने की एक ऐसी विधि है, जिसमें यह मिट्टी की काया तरंगित होकर ईश्वर का हुजरा बन जाती है...

ओशो जब कहते हैं—'तंत्र विज्ञान है, दर्शन नहीं है; 'क्यों' इसकी चिंता नहीं है, यह 'कैसे' की फिक्र करता है। सत्य क्या है, उसे इसकी चिंता नहीं है, वरन इसकी है कि सत्य को कैसे उपलब्ध हुआ जाए'—तो अहसास होता है कि उन्होंने ठीक उस विद्या की नाड़ी पर अंगुली रख दी है, जिसमें बाहर का कोई स्थान नहीं, यह मिट्टी की काया ईश्वर का हुजरा हो जाती है...

यह सत्य का वह स्वीकार है, जिसमें तर्क और सिद्धांत बहुत पीछे छूट जाते हैं, हर शास्त्रार्थ पीछे छूट जाता है, और एक तैयारी होने लगती है—अनुभव में उतर जाने की...

तंत्र की आत्मा में उतर पाने का अनुभव जरूर कई ऋषियों को हुआ होगा, लेकिन अनुभव बोलना नहीं जानता और ओशो, अकेले ओशो हैं, जो अनुभव से तरंगित होकर अपनी वाणी को भी तरंगित कर पाए हैं। इसलिए कहना होगा कि इस ग्रंथ में एक नहीं तीन पहलू इकट्ठे हुए हैं—

एक देवी—जो प्रश्न पूछ सके...

एक शिव—जो हर प्रश्न का उत्तर दे पाए...

और एक ओशो—जो हर उत्तर की आत्मा में उतर जाए...

शिव ने जो कुछ कहा था—वह बीज अक्षर हैं, सदियों से हमारे सामने थे, और कह सकती हूं कि ओशो ने उन अक्षरों में प्राण-प्रतिष्ठा की है। ठीक उसी तरह, जिस तरह इंद्र ने, सूरज-मंडल की किरण ने, गौतम ऋषि के रासायनिक पदार्थ में प्राण-प्रतिष्ठा की थी...

उस विज्ञान के लिए भी तीन शक्तियों की आवश्यकता थी।

एक रासायनिक पदार्थ—अहिल्या।

एक किरण-विज्ञान का ज्ञाता—गौतम।

और एक सूरज-मंडल के अंतर की किरण—इंद्र।

हमारे पास देवी भी थी, शिव भी थे, इसलिए यह तंत्र-विज्ञान सामने आया, लेकिन इस विज्ञान को एक ओशो चाहिए था कि यह प्रवाहित हो सके...

कह सकती हूं कि इस ग्रंथ ने अहिल्या को श्राप-मुक्त किया है—मिट्टी की काया को श्राप-मुक्त किया है...

हम इस ग्रंथ को पढ़ने वाले, अगर स्वयं में केंद्रित हो पाएं, अपने-अपने अनुभव में उतर जाएं, तो अहिल्या के श्राप-मुक्त होने का रहस्य जान पाएंगे ...

अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम एक भावप्रवण कवयित्री एवं लेखिका हैं, जिनसे न केवल भारत का अपितु संपूर्ण विश्व का साहित्य धन्य हुआ है। आपको साहित्य अकादमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। 1960 से आप पंजाबी पत्रिका 'नागमणि' का संपादन कर रही हैं। आपके काव्यमय लेख ओशो टाइम्स़ इंटरनेशनल में अक्सर प्रकाशित होते हैं।

अनुक्रम

1. **तंत्र में प्रवेश** **11**

2. **योग और तंत्र; समर्पण और विधि** **34**

    1. योग और तंत्र में क्या फर्क है ? 34
    2. समर्पण की विधि क्या है ? 45
    3. कैसे कोई विधि रास आती है ? 52

3. **श्वास : शरीर और आत्मा के बीच सेतु** **57**

    1. दो श्वासों के बीच के अंतराल को अनुभव करो 63
    2. दो श्वासों के बीच संक्रांति-बिंदु को देखो 66
    3. दो श्वासों के विलय-बिंदु को देखो 70
    4. श्वास के ठहरने के क्षण में सजग रहो 76

4. **मन के धोखों से सावधान** **80**

    1. ऐसी आसान विधि से क्या ज्ञान-उपलब्धि संभव है ? 80
    2. और काम करते हुए क्या श्वास-बोध का प्रयोग किया जा सकता है? 89

5. **अवधान, शिव-नेत्र और आत्मोपलब्धि** **102**

    5. अपना ध्यान तृतीय नेत्र पर एकाग्र करो 103
    6. कार्य में व्यस्तता के बीच ध्यान को अंतराल पर एकाग्र करो 111
    7. स्वप्न में सजगता की विधि 114
    8. संधि-स्थल को भक्तिपूर्वक देखो 120
    9. मृतवत लेट रहो, अपलक घूरो, कुछ चूसो और चूसना बन जाओ 121

6. स्वप्न का अतिक्रमण कैसे हो **130**

1. स्वप्न देखते हुए बोधपूर्ण कैसे हुआ जाए ? 130
2. प्रयत्न क्यों करें अगर हम नाटक के पात्र भर हैं ? 144

7. प्रेम करते हुए प्रेम ही हो जाओ **151**

10. प्रेम ही हो जाओ 159
11. इंद्रियों के द्वार बंद करो 167
12. अपने को वजनशून्य हो जाने दो 169

8. तांत्रिक शुद्धि का आधार अभेद है **174**

1. शुद्धि से तंत्र का अभिप्राय क्या है ? 174

1

तंत्र में प्रवेश

सूत्र

देवी कहती हैं :

हे शिव, आपका सत्य क्या है ? यह विस्मय-भरा विश्व क्या है ? इसका बीज क्या है ? विश्व-चक्र की धुरी क्या है ? रूपों पर छाए लेकिन रूप के परे यह जीवन क्या है ? देश और काल, नाम और प्रत्यय के परे जाकर हम इसमें कैसे पूर्णतः प्रवेश करें ? मेरे संशय निर्मूल करें।

कुछ भूमिका की बातें।

एक कि विज्ञान भैरव तंत्र का जगत बौद्धिक नहीं है; वह दार्शनिक नहीं है। सिद्धांत इसके लिए अर्थ नहीं रखता। यह उपाय की, विधि की चिंता करता है, सिद्धांत की कतई नहीं। तंत्र शब्द का अर्थ ही है—विधि, उपाय, मार्ग। इसलिए यह कोई मीमांसा नहीं है, इस बात को ध्यान में रख.लें। बौद्धिक समस्याओं और उनके ऊहापोह से इसका कोई संबंध नहीं है। यह चीजों के 'क्यों' की चिंता नहीं लेता, उनके 'कैसे' की चिंता लेता है; सत्य क्या है इसकी नहीं, वरन इसकी कि सत्य को कैसे उपलब्ध हुआ जाए।

तंत्र का अर्थ विधि है। इसलिए यह एक विज्ञान-ग्रंथ है। विज्ञान 'क्यों' की नहीं, 'कैसे' की फिक्र करता है। दर्शन और विज्ञान में यही बुनियादी भेद है। दर्शन पूछता है—यह अस्तित्व क्यों है ? विज्ञान पूछता है — यह अस्तित्व कैसे है ? जब तुम कैसे का प्रश्न पूछते हो, तब उपाय, विधि महत्त्वपूर्ण हो जाती है। तब सिद्धांत व्यर्थ हो जाते हैं; अनुभव केंद्र बन जाता है।

तंत्र विज्ञान है; तंत्र दर्शन नहीं है। दर्शन को समझना आसान है; क्योंकि उसके लिए सिर्फ मस्तिष्क की जरूरत पड़ती है। यदि तुम भाषा जानते हो, यदि तुम प्रत्यय समझते हो तो तुम दर्शन समझ सकते हो। उसके लिए तुमको

6. स्वप्न का अतिक्रमण कैसे हो **130**

1. स्वप्न देखते हुए बोधपूर्ण कैसे हुआ जाए ? 130
2. प्रयत्न क्यों करें अगर हम नाटक के पात्र भर हैं ? 144

7. प्रेम करते हुए प्रेम ही हो जाओ **151**

10. प्रेम ही हो जाओ 159
11. इंद्रियों के द्वार बंद करो 167
12. अपने को वजनशून्य हो जाने दो 169

8. तांत्रिक शुद्धि का आधार अभेद है **174**

1. शुद्धि से तंत्र का अभिप्राय क्या है ? 174

1

तंत्र में प्रवेश

सूत्र

देवी कहती हैं :

हे शिव, आपका सत्य क्या है ? यह विस्मय-भरा विश्व क्या है ? इसका बीज क्या है ? विश्व-चक्र की धुरी क्या है ? रूपों पर छाए लेकिन रूप के परे यह जीवन क्या है ? देश और काल, नाम और प्रत्यय के परे जाकर हम इसमें कैसे पूर्णतः प्रवेश करें ? मेरे संशय निर्मूल करें।

कुछ भूमिका की बातें।

एक कि विज्ञान भैरव तंत्र का जगत बौद्धिक नहीं है; वह दार्शनिक नहीं है। सिद्धांत इसके लिए अर्थ नहीं रखता। यह उपाय की, विधि की चिंता करता है, सिद्धांत की कतई नहीं। तंत्र शब्द का अर्थ ही है—विधि, उपाय, मार्ग। इसलिए यह कोई मीमांसा नहीं है, इस बात को ध्यान में रख. लें। बौद्धिक समस्याओं और उनके ऊहापोह से इसका कोई संबंध नहीं है। यह चीजों के 'क्यों' की चिंता नहीं लेता, उनके 'कैसे' की चिंता लेता है; सत्य क्या है इसकी नहीं, वरन इसकी कि सत्य को कैसे उपलब्ध हुआ जाए।

तंत्र का अर्थ विधि है। इसलिए यह एक विज्ञान-ग्रंथ है। विज्ञान 'क्यों' की नहीं, 'कैसे' की फिक्र करता है। दर्शन और विज्ञान में यही बुनियादी भेद है। दर्शन पूछता है—यह अस्तित्व क्यों है ? विज्ञान पूछता है — यह अस्तित्व कैसे है ? जब तुम कैसे का प्रश्न पूछते हो, तब उपाय, विधि महत्त्वपूर्ण हो जाती है। तब सिद्धांत व्यर्थ हो जाते हैं; अनुभव केंद्र बन जाता है।

तंत्र विज्ञान है; तंत्र दर्शन नहीं है। दर्शन को समझना आसान है; क्योंकि उसके लिए सिर्फ मस्तिष्क की जरूरत पड़ती है। यदि तुम भाषा जानते हो, यदि तुम प्रत्यय समझते हो तो तुम दर्शन समझ सकते हो। उसके लिए तुमको

बदलने की, संपरिवर्तित होने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जैसे हो वैसे ही बने रहकर दर्शन को समझ सकते हो। लेकिन वैसे ही रहकर तंत्र को नहीं समझ सकते। तंत्र को समझने के लिए तुम्हारे बदलने की जरूरत रहेगी; बदलाहट की ही नहीं, आमूल बदलाहट की जरूरत होगी। जब तक तुम बिलकुल भिन्न नहीं हो जाते हो, तब तक तंत्र को नहीं समझा जा सकता। क्योंकि तंत्र कोई बौद्धिक प्रस्तावना नहीं है; वह एक अनुभव है। और जब तक तुम अनुभव के प्रति संवेदनशील, तैयार, खुले हुए नहीं होते, तब तक यह अनुभव तुम्हारे पास आने को नहीं है।

दर्शन की फिक्र तुम्हारे मन के साथ है। उसके लिए तुम्हारा मस्तिष्क काफी है, उसको तुम्हारी समग्रता नहीं चाहिए। तंत्र तुमको तुम्हारी समग्रता में मांगता है। यह बहुत गहरी चुनौती है; इसमें तुम पूरे और इकट्ठे होकर ही उतर सकते हो। तंत्र खंडित नहीं है। उसकी अगवानी के लिए और ही तरह के रुझान, और ही तरह की यात्रा, और ही तरह के मन की जरूरत है।

यही कारण है कि देवी ऐसे प्रश्न पूछती हैं जो दार्शनिक प्रश्न जैसे दिखते हैं। विज्ञान भैरव तंत्र देवी के प्रश्नों से शुरू होता है। और सभी प्रश्न दर्शन के तल पर हाथ में लिए जा सकते हैं। दरअसल कोई भी प्रश्न दो ढंग से हल किया जा सकता है — दार्शनिक ढंग से अथवा समग्रतापूर्वक; बौद्धिक ढंग से अथवा अस्तित्वगत रूप से।

उदाहरण के लिए अगर कोई पूछे, प्रेम क्या है ? तो तुम उस प्रश्न का उत्तर बौद्धिक तल पर दे सकते हो, कोई सिद्धांत प्रस्तावित कर सकते हो, किसी विशेष परिकल्पना के लिए दलील दे सकते हो। तुम एक व्यवस्था, एक सिद्धांत, एक मतवाद खड़ा कर सकते हो। और हो सकता है कि प्रेम का तुमको बिलकुल पता न हो।

मतवाद गढ़ने के लिए अनुभव की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि तुम जितना कम जानते हो उतना ही अच्छा। क्योंकि तब तुम बेहिचक व्यवस्था प्रस्तावित कर सकते हो। केवल अंधा आदमी आसानी के साथ प्रकाश की व्याख्या कर सकता है। जब तुम नहीं जानते हो, तब ढीठ होते हो। अज्ञान हमेशा ढीठ होता है; ज्ञान झिझकता है। जितना तुम जानते हो उतनी ही पांव के नीचे जमीन खिसकती नजर आती है। जितना तुम जानते हो उतना ही तुमको तुम्हारे अज्ञान का अनुभव होता है। और जो सच में ही ज्ञानी हैं, वे अज्ञानी हो जाते हैं। वे बच्चों की तरह या मूढ़ों की तरह सरल हो जाते हैं।

इसलिए जितना कम जानते हो उतना बेहतर। मीमांसक होना, मतवादी होना,

मूढ़ाग्रही होना सचमुच आसान है। किसी भी प्रश्न को बुद्धि के तल पर हल करना सरल है।

लेकिन किसी प्रश्न को अस्तित्वगत रूप से हल करना, उसे सोचना नहीं, उसे जीना, उसमें जीना और उसके द्वारा अपने को पूरी तरह बदल जाने देना कठिन है। उसका अर्थ हुआ कि प्रेम को जानने के लिए तुमको प्रेम में उतरना पड़ेगा। वह खतरनाक है। क्योंकि तब तुम वही न रहोगे जो थे। अनुभव तुमको बदल देगा। जिस क्षण तुम प्रेम में प्रवेश करते हो, तुम एक दूसरे व्यक्ति में प्रवेश करते हो। और तब जब तुम उसके बाहर निकलोगे, तब तुमको तुम्हारा पुराना चेहरा पहचानने को नहीं मिलेगा। वह चेहरा अब तुम्हारा रहा नहीं। एक विच्छिन्नता, एक टूट पैदा हो चुकेगी। अब एक अंतराल आ गया। पुराना आदमी मर चुका और उसकी जगह एक नया आदमी आ गया है। उसे ही पुनर्जन्म कहते हैं, द्विज कहते हैं।

तंत्र गैर-दार्शनिक है और अस्तित्वगत है। इसलिए यद्यपि देवी ऐसे प्रश्न पूछती हैं जो दार्शनिक मालूम होते हैं, लेकिन शिव उत्तर उसी ढंग से नहीं देते। इस बात को आरंभ में ही समझ लेना बेहतर होगा। नहीं तो तुम हैरानी में पड़ोगे कि शिव क्यों उनके एक प्रश्न का भी उत्तर नहीं देते ! जो भी प्रश्न देवी पूछती हैं, शिव उनके उत्तर ही नहीं देते। और तो भी वे उत्तर देते हैं। और सच तो यह है कि केवल शिव ने ही उनके उत्तर दिए हैं, किसी और ने नहीं। लेकिन उनके उत्तर भिन्न तल के हैं।

देवी पूछती हैं— प्रभो, आपका सत्य क्या है ? शिव इस प्रश्न का उत्तर न देकर उसके बदले में एक विधि देते हैं। अगर देवी इस विधि के प्रयोग से गुजर जाएं तो वे उत्तर पा जाएंगी। इसलिए उत्तर परोक्ष है, प्रत्यक्ष नहीं। शिव नहीं बताते हैं कि मैं कौन हूं, वे एक विधि भर बताते हैं। वे कहते हैं— यह करो और तुम जान जाओगी।

तंत्र के लिए करना ही जानना है, और कोई जानना जानना नहीं है। जब तक तुम कुछ करते नहीं, जब तक बदलते नहीं, जब तक बुद्धि के अतिरिक्त किसी अन्य ही आयाम में नहीं प्रवेश करते, तब तक कोई उत्तर नहीं है। उत्तर तो दिए जा सकते हैं, लेकिन वे सब के सब झूठे होंगे। सभी दर्शन झूठे हैं।

तुम एक प्रश्न पूछते हो और दर्शन एक उत्तर दे देता है, उससे तुम चाहे संतुष्ट होते हो या नहीं होते हो। यदि संतुष्ट हुए तो तुम उस दर्शन के अनुयायी हो जाते हो; लेकिन तुम वही के वही रहते हो। और यदि नहीं संतुष्ट हुए तो

दूसरे दर्शन की खोज में निकल चलते हो जिनसे संतुष्टि मिल सके। लेकिन तुम वही के वही रहते हो; अछूते रहते हो, अपरिवर्तित रहते हो।

इसलिए तुम हिंदू हो कि मुसलमान हो कि ईसाई हो कि जैन हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। हिंदू, मुसलमान या जैन के मुखौटे के पीछे जो असली व्यक्ति है, वह वही रहता है। सिर्फ शब्दों का या वस्त्रों का भेद है। चाहे वह चर्च जाता हो कि मंदिर जाता हो कि मस्जिद जाता हो, वह वही रहता है। सिर्फ चेहरों का फर्क है। और वे चेहरे झूठे हैं, वे मुखौटे भर हैं। और मुखौटों के पीछे वही आदमी है—वही क्रोध, वही आक्रामकता, वही हिंसा, वही लोभ, वही लिप्सा—सब कुछ वही का वही है। क्या मुस्लिम कामुकता हिंदू कामुकता से भिन्न है ? क्या ईसाई हिंसा और हिंदू हिंसा में फर्क है ? वह एक ही है। हकीकत एक है; सिर्फ वस्त्र भिन्न हैं।

तंत्र को तुम्हारे वस्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं है; उसे सीधे तुमसे लेना-देना है। अगर तुम प्रश्न पूछते हो तो उससे इतना ही पता चलता है कि तुम कहां हो। और उससे यह भी पता चलता है कि तुम जहां भी हो, तुमको दिखाई नहीं पड़ता है। एक अंधा आदमी पूछता है— प्रकाश क्या है ? और दर्शन बताना शुरू कर देगा कि प्रकाश क्या है। मगर तंत्र केवल यह निष्पत्ति निकालेगा कि प्रकाश के बारे में प्रश्न पूछने वाला महज आंख का अंधा है। और तब तंत्र उस आदमी का उपचार शुरू करेगा, उसे बदलने का उपाय करेगा कि उसकी आंखें देख सकें। तंत्र यह नहीं बताएगा कि प्रकाश क्या है; तंत्र सिर्फ यह बताएगा कि तुम किस तरह आंख को, दृष्टि को, देखने को उपलब्ध हो सकते हो। और दृष्टि की उपलब्धि के साथ ही उत्तर उपलब्ध हो जाएगा।

इसलिए तंत्र समाधान नहीं देता है; समाधान को उपलब्ध होने की विधि देता है। अब यह समाधान बौद्धिक नहीं होगा। अगर तुम अंधे आदमी को प्रकाश के बारे में कुछ कहोगे तो वह कहना बौद्धिक होगा। और अगर अंधा स्वयं देखने में सक्षम हो जाता है तो वह अस्तित्वगत बात होगी। जब मैं कहता हूं कि तंत्र अस्तित्वगत है तो उसका यही मतलब है।

इसलिए शिव देवी के प्रश्नों के उत्तर देने नहीं जा रहे हैं, फिर भी देने जा रहे हैं। यह पहली बात। और दूसरी बात कि यह एक सर्वथा भिन्न भाषा है। इसमें प्रवेश के पहले हमें इसके संबंध में कुछ जान लेना होगा। तंत्र के सभी ग्रंथ शिव और देवी के बीच संवाद हैं। देवी पूछती हैं और शिव जवाब देते हैं। सभी तंत्र-ग्रंथ ऐसे ही शुरू होते हैं। क्यों ? यह ढंग क्यों ?

यह बहुत अर्थपूर्ण है। यह संवाद किन्हीं गुरु और शिष्य के बीच संवाद

नहीं है, यह संवाद घटित होता है, दो प्रेमियों के बीच। और तंत्र इसके द्वारा एक बहुत अर्थपूर्ण बात की खबर देता है—यह कि गहराई की शिक्षा तब तक नहीं दी जा सकती, जब तक कि दोनों के, शिष्य और गुरु के बीच प्रेम का संबंध न हो। शिष्य और गुरु को गहरे प्रेमी होना होगा। तब—और तभी—ऊंचाई को, पार को अभिव्यक्त किया जा सकता है, प्रकट किया जा सकता है।

इसलिए यह प्रेम की भाषा है। शिष्य के लिए प्रेम के भाव में होना जरूरी है। लेकिन इतना काफी नहीं है। दो मित्र भी प्रेम में हो सकते हैं। तंत्र कहता है, शिष्य में प्रेम के अतिरिक्त ग्राहकता होनी चाहिए। तभी कुछ संभव है। शिष्य होने के लिए स्त्री होना जरूरी नहीं है; लेकिन उसके लिए स्त्रैण ग्राहकता का भाव अनिवार्य है। यहां देवी पूछती हैं, उसका अर्थ हुआ कि स्त्रैण भाव पूछता है। लेकिन स्त्रैण भाव पर यह जोर क्यों ?

पुरुष और स्त्री में शारीरिक फर्क ही नहीं है, मानसिक फर्क भी है। यौन शरीर के तल पर ही नहीं, मन के तल पर भी बड़ा फर्क लाता है। स्त्रैण मन का अर्थ है ग्राहकता—समग्र ग्राहकता, समर्पण, प्रेम। शिष्य को उसी स्त्रैण मन की आवश्यकता है, अन्यथा वह नहीं सीख पाएगा। तुम पूछ तो सकते हो, लेकिन अगर खुले नहीं हो, तो उत्तर तुमको नहीं मिल सकता। प्रश्न पूछकर भी तुम बंद रह सकते हो। उस हालत में उत्तर तुम में प्रवेश नहीं करेगा। तुम्हारे द्वार-दरवाजे बंद हैं; तुम मृत हो। तुम खुले जो नहीं हो।

स्त्रैण ग्राहकता का अर्थ है— गहरे में गर्भ जैसी ग्राहकता, ताकि तुम ग्रहण कर सको, ले सको। उतना ही नहीं, उससे भी ज्यादा की जरूरत है। स्त्री कोई चीज ग्रहण ही नहीं करती है; जिस क्षण ग्रहण करती है उसी क्षण वह चीज उसके शरीर का भाग बन जाती है। बच्चा ग्रहीत हुआ। स्त्री गर्भ धारण करती है और गर्भाधान के साथ बच्चा स्त्री के शरीर का अंश बन जाता है। वह विजातीय नहीं रहा, विदेशी नहीं रहा। वह आत्मसात कर लिया गया। अब वह बच्चा कुछ ऐसा नहीं रहा जो कि मां से जुड़ा भर रहेगा; अब वह मां के अंश की तरह, मां की तरह ही जीएगा। बच्चा ग्रहीत ही नहीं होता है, स्त्रैण शरीर सृजनात्मक हो जाता है और बच्चा बढ़ने भी लगता है।

शिष्य को गर्भ जैसी ग्राहकता की जरूरत है। जो कुछ भी ग्रहण किया जाए, उसे मृत ज्ञान की तरह इकट्ठा नहीं करना है; उसे तुम्हारे भीतर बढ़ना चाहिए, उसे तुम्हारा रक्त, हड्डी ही बन जाना चाहिए। अब उसे तुम्हारा हिस्सा बन जाना पड़ेगा। उसे बढ़ने देना है, वृद्धि देनी है। और यही वृद्धि तुमको, ग्राहक को बदलेगी, रूपांतरित करेगी।

यही कारण है कि तंत्र इस उपाय को काम में लाता है। हर ग्रंथ देवी के प्रश्न से शुरू होता है और शिव उसका उत्तर देते हैं। देवी शिव की प्रिया हैं—उनका स्त्रैण अंश।

एक बात और। अब आधुनिक मनोविज्ञान, खासकर गहराई का मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य पुरुष और स्त्री दोनों है। कोई भी व्यक्ति न मात्र पुरुष है और न मात्र स्त्री है। प्रत्येक उभयलिंगी है; उसमें दोनों यौन मौजूद हैं। पश्चिम में यह खोज हाल की घटना है, लेकिन तंत्र के लिए हजारों साल से उसकी एक बुनियादी धारणा रही है। तुमने शिव के कुछ चित्र देखे होंगे जिनमें वे अर्धनारीश्वर हैं, आधा पुरुष और आधी नारी। मनुष्य के पूरे इतिहास में यह अपनी तरह की अकेली धारणा है। शिव को उसमें आधे पुरुष और आधी स्त्री की तरह चित्रित किया गया है।

इसलिए देवी प्रिया ही नहीं हैं, शिव की अर्धांगिनी हैं। और जब तक शिष्य गुरु का दूसरा अर्धांग नहीं बन जाता, ऊंचाई की शिक्षा, गुह्य विधियों की शिक्षा नहीं दी जा सकती। जब तुम ऐसे हो जाओगे तो संदेह नहीं बचेगा। जब तुम गुरु के साथ ऐसे एक हो जाओगे—समग्र रूपेण, गहन रूपेण—कि तर्क न रहा, बुद्धि न बची, तब तुम ग्रहण करते हो, तब तुम गर्भ बन जाते हो। और तब गुरु की शिक्षा तुममें वृद्धि पाती है, तुमको बदलने लगती है।

यही कारण है कि तंत्र प्रेम की भाषा में लिखा गया। यहां प्रेम की भाषा के संबंध में भी कुछ समझना आवश्यक है। भाषा दो प्रकार की है— तर्क की भाषा और प्रेम की भाषा। और दोनों में बुनियादी भेद है।

तर्क की भाषा आक्रामक, विवादी और हिंसक होती है। अगर मैं तार्किक भाषा का प्रयोग करूं तो मैं तुम्हारे मन पर आक्रमण-सा करूंगा। मैं तुमसे अपनी बात मनवाने की, तुमको अपने पक्ष में लाने की, तुम्हें अपना खिलौना बनाने की कोशिश करूंगा। मैं जिद करूंगा कि मेरा तर्क सही है और तुम्हारा गलत। तर्क की भाषा अहं-केंद्रित होती है; इसलिए मैं सिद्ध करूंगा कि मैं सही हूं और तुम गलत। दरअसल मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है, मुझे मेरे अहंकार से मतलब है। और मेरा अहंकार हमेशा सही होता है।

प्रेम की भाषा सर्वथा भिन्न है, वहां मुझे अपनी नहीं, तुम्हारी चिंता है। वहां मुझे कुछ सिद्ध करने को नहीं पड़ी है, अपने अहंकार को मजबूत नहीं बनाना है। तुम्हारी सहायता करना ही मेरा अभीष्ट है। यह करुणा है जो तुमको बढ़ने में, बदलने में, तुम्हारे पुनर्जन्म में सहयोगी होना चाहती है।

और दूसरी बात कि तर्क सदा बौद्धिक है। उसमें तर्क और सिद्धांत महत्त्वपूर्ण

हैं, दलीलें अर्थपूर्ण हैं। प्रेम की भाषा में, क्या कहा जाए, यह महत्त्व का नहीं है; कैसे कहा जाए, महत्त्व का है। वाहन, शब्द महत्त्वपूर्ण नहीं है; महत्त्वपूर्ण है उसका अर्थ, उसका संदेश। यह हृदय से हृदय की गुफ्तगू है, मन से मन का वाद-विवाद नहीं। यह विवाद नहीं संवाद है, सहभागिता है। इसलिए यह दुर्लभ घटना है कि पार्वती शिव की गोद में बैठकर पूछती हैं और शिव उत्तर देते हैं। यह प्रेम-संवाद है, प्रेमालाप। इसमें कोई द्वंद्व नहीं है—शिव मानो स्वयं से बोल रहे हों।

प्रेम पर, प्रेम की भाषा पर इतना जोर क्यों है ? इसलिए कि अगर तुम अपने गुरु के साथ प्रेम में हो तो सारा गेस्टाल्ट बदल जाता है, समूचा दर्शन, समूचा परिदृश्य दूसरा ही हो जाता है। तब बात ही कुछ और है। तब तुम गुरु के शब्द नहीं सुनते हो, तब तुम गुरु को पीते हो। तब शब्द अप्रासंगिक हो जाते हैं; तब शब्दों के बीच का मौन महिमावान हो उठता है। गुरु जो कुछ कहता है, वह अर्थपूर्ण हो सकता है, नहीं भी हो सकता है; उसमें असली चीज उसकी दृष्टि है, मुद्रा है; असली चीज उसकी करुणा है, प्रेम है।

इसीलिए तंत्र की एक निश्चित अवस्था है, ढंग है। उसका हरेक ग्रंथ देवी के प्रश्न और शिव के उत्तर से शुरू होता है। दलील के लिए उसमें जगह नहीं है; शब्दों का वहां अपव्यय नहीं है। उसमें तथ्यों के सीधे-सादे वक्तव्य हैं, जो तारनुमा भाषा में, संक्षिप्ततम रूप में कहे गए हैं। उसमें किसी से मनवाने का आग्रह नहीं है, मात्र बताने की बात है।

अगर तुम बंद मन से शिव को प्रश्न पूछो तो वे इस ढंग से जवाब नहीं देंगे। तब पहले तुम्हारा जो बंद होना है, उसे हटाने के लिए शिव को आक्रामक होना पड़ेगा। तब पहले तुम्हारे पूर्वाग्रहों को, पूर्व-धारणाओं को नष्ट करना पड़ेगा। जब तक तुम अपने अतीत से बिलकुल विच्छिन्न नहीं होते, तब तक तुमको कुछ भी नहीं दिया जा सकता। लेकिन शिव की प्रिया के साथ, देवी के साथ यह बात नहीं है; देवी के साथ देवी का कोई अतीत नहीं है।

स्मरण रहे कि जब तुम गहरे प्रेम में होते हो, तब तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है, नहीं हो जाता है। तब कोई अतीत नहीं रहता है; वर्तमान का क्षण ही सब कुछ हो जाता है। जब तुम प्रेम में होते हो, तब वर्तमान ही मात्र समय होता है। वर्तमान ही सब कुछ है—न अतीत, न भविष्य।

इसलिए देवी खुली हैं। कोई सुरक्षा नहीं है वहां; कुछ साफ करने को नहीं है, कुछ नष्ट करने को नहीं है। भूमि तैयार है, उसमें बीज डालने की देर है। कहना चाहिए कि भूमि न केवल तैयार ही है, वह स्वागत की मुद्रा में है, ग्राहक

है; वह गर्भ बनने को तत्पर है।

इसलिए शिव के ये वचन, जिन पर हम चर्चा करेंगे, अति संक्षिप्त हैं, सूत्ररूप में हैं। लेकिन शिव का प्रत्येक सूत्र एक वेद की, एक बाइबिल की, एक कुरान की हैसियत का है। उनका एक अकेला वाक्य एक महान शास्त्र का, धर्म-ग्रंथ का आधार बन सकता है। शास्त्र तर्कबद्ध होते हैं; उनमें प्रस्ताव करना पड़ता है, बचाव करना पड़ता है, तर्क देना पड़ता है। यहां कोई तर्क नहीं है, प्रेम का मात्र वक्तव्य दिया गया है।

तीसरी बात कि विज्ञान भैरव तंत्र का अर्थ ही है चेतना के भी पार जाने की विधि। विज्ञान का अर्थ चेतना है, भैरव का अर्थ वह अवस्था है जो चेतना से भी परे है और तंत्र का अर्थ विधि है, चेतना के पार जाने की विधि। यह परम धर्म-सिद्धांत है—सिद्धांत के बिना धर्म-सिद्धांत।

हम मूर्च्छित हैं, अचेतन हैं, इसलिए सारी धर्म-देशना अचेतन के ऊपर उठने की, चेतन होने की देशना है। उदाहरण के लिए कृष्णमूर्ति हैं, झेन है, वे सभी अधिक से अधिक चेतना, सजगता, होश लाने की फिक्र करते हैं। क्योंकि हम मूर्च्छित हैं, बेहोश हैं, इसलिए कैसे ज्यादा होशपूर्ण, ज्यादा जाग्रत हुआ जाए ? मूर्च्छा से जागरण की ओर कैसे गति हो ?

लेकिन तंत्र कहता है कि यह भी द्वैत का ही खेल है—यह मूर्च्छा-अमूर्च्छा का खेल है। यदि तुम मूर्च्छा से अमूर्च्छा की यात्रा करते हो तो भी एक द्वैत की ही यात्रा करते हो। तंत्र कहता है— दोनों के पार चलो। जब तक तुम दोनों के पार नहीं जाते, तब तक परम को नहीं उपलब्ध हो सकते। इसलिए न अचेतन, न चेतन, दोनों के पार चलो, मात्र होओ। चेतन-अचेतन नहीं होना है, मात्र होना है। यह योग के भी पार है, झेन के भी पार है; यह सभी धर्म-देशनाओं के पार है।

विज्ञान का मतलब चेतना है। और भैरव एक विशेष शब्द है, तांत्रिक शब्द, जो पारगामी के लिए कहा गया है। इसलिए शिव को भैरव कहते हैं और देवी को भैरवी—वे जो समस्त द्वैत के पार चले गए हैं।

हमारे अनुभव में प्रेम ही उसकी थोड़ी झलक दे सकता है। यही कारण है कि तंत्र-विद्या सिखाने के लिए प्रेम उसका बुनियादी उपाय बन जाता है। अपने अनुभव से हम कह सकते हैं कि प्रेम ही वह कुछ है जो द्वैत के पार जाता है। जब दो व्यक्ति प्रेम में होते हैं, तब ज्यों-ज्यों वे उसकी गहराई में उतरते हैं त्यों-त्यों दो कम और एक ही ज्यादा रहते हैं। और एक बिंदु आता है, एक शिखर स्पर्श होता है जहां वे देखने में ही दो होते हैं, भीतर एक ही

हो जाते हैं। वहां द्वैत का अतिक्रमण हो जाता है।

इसी अर्थ में जीसस का यह वचन कि 'परमात्मा प्रेम है' अर्थपूर्ण हो जाता है, अन्यथा नहीं। हमारे अनुभव में प्रेम परमात्मा के सबसे निकट है। इसका यह मतलब नहीं है जैसा कि ईसाई अर्थ किए चले जाते हैं कि परमात्मा प्रेमपूर्ण है कि परमात्मा को आपके लिए पिता जैसा प्रेम है। ये मूर्खता भरी बातें हैं। परमात्मा प्रेम है—यह एक तांत्रिक वक्तव्य है। इसका अर्थ है कि हमारे अनुभव में केवल प्रेम वह यथार्थ है जो परमात्मा के, भगवत्ता के निकटतम पड़ता है। क्योंकि प्रेम में एकता का अनुभव होता है। शरीर दो रहते हैं, लेकिन शरीर से परे कुछ है, जो मिलकर एक हो जाता है।

यही कारण है कि यौन की भूख इतनी बड़ी है, उसकी दौड़ भारी है। असली दौड़ तो इस एकता के पीछे है। लेकिन वह एकता यौन की, काम की नहीं है। काम में दो शरीरों को एक होने का धोखा ही होता है, वे एक होते नहीं। वे आलिंगन में बंधते हैं और एक क्षण के लिए दोनों एक-दूसरे में अपने को भूल जाते हैं, और थोड़ी शारीरिक एकता अनुभव होती है। यह खोज बुरी नहीं है, लेकिन उस पर ही रुक जाना खतरनाक है। यह खोज किसी गहरी एकता की खोज की खबर भर है।

प्रेम में किसी ऊंचे तल पर कुछ आंतरिक गति करता है और एक-दूसरे में मिलकर एकता की अनुभूति होती है। उसमें द्वैत मिट जाता है। और इसी द्वैतहीन प्रेम में हमें उसकी झलक मिल सकती है, जिसे भैरव की अवस्था कहते हैं। हम कह सकते हैं कि भैरवावस्था वह प्रेम है जिसमें से लौटना नहीं होता है। प्रेम के शिखर से फिर नीचे आना नहीं है; शिखर पर ही बने रहना है।

हमने कैलाश पर शिव का आवास बनाया है। वह प्रतीक है कि कैलाश सबसे ऊंचा शिखर है, सबसे पवित्र शिखर है। वहीं हमने शिव का आवास रखा है। हम वहां जा सकते हैं, लेकिन हमें वहां से नीचे उतर आना होगा। वह हमारा आवास नहीं हो सकता है। हम तीर्थयात्रा के लिए वहां जा सकते हैं। वह तीर्थ है, तीर्थयात्रा है। एक क्षण के लिए हम भी उस शिखर को छू सकते हैं, लेकिन फिर वापस आना होगा।

प्रेम में यह पवित्र तीर्थयात्रा घटित होती है, लेकिन सबके लिए नहीं। क्योंकि शायद ही कोई यौन के पार जाता है। इसलिए हम घाटी में, अंधेरी घाटी में जीते चले जाते हैं। कभी-कभी विरला कोई प्रेम के शिखर को उपलब्ध होता है; लेकिन वह भी नीचे उतर आता है, क्योंकि उस ऊंचाई पर सिर चकराने लगता है। वह इतना ऊंचा है और तुम इतने निम्न, छोटे। और वहां रहना भी

कठिन है। जिन्होंने प्रेम किया है, वे जानते हैं कि प्रेम में सदा बने रहना कितना कठिन है। बार-बार वापस आना पड़ता है। वह शिव का आवास है। वे वहां रहते हैं, वह उनका घर ही है।

भैरव प्रेम में जीते हैं, प्रेम उनका आवास है। जब मैं कहता हूं कि वह उनका आवास है, उसका अर्थ है कि अब उन्हें प्रेम का भी बोध नहीं रहा। क्योंकि कैलाश पर ही रहने पर बोध भी जाता रहता है कि यह कैलाश है, शिखर है। तब शिखर समतल भूमि बन जाता है। शिव को प्रेम का बोध नहीं है। हमें प्रेम का बोध होता है, क्योंकि हम अप्रेम में जीते हैं; और इस वैषम्य के कारण, विपरीतता के कारण हमें प्रेम का बोध होता है।

शिव प्रेम ही हैं। भैरव का अर्थ होता है कि वह प्रेम ही हो गया है। यह नहीं कि वह प्रेमपूर्ण है, प्रेम करता है; वह स्वयं प्रेम हो गया है, वह शिखर पर है, शिखर ही उसका आवास है।

इस सर्वोच्च शिखर को संभव कैसे बनाया जाए जो सब द्वैत के पार है, अचेतन के पार है, चेतन के पार है, शरीर और आत्मा के पार है, संसार और मोक्ष के भी पार है ? इस शिखर को उपलब्ध कैसे हुआ जाए ?

उसकी विधि तंत्र है। लेकिन तंत्र शुद्ध विधि है, इसलिए इसे समझने में कठिनाई होगी। इसलिए हम पहले उस प्रश्न को समझें जो देवी पूछती हैं:

हे शिव, आपका सत्य क्या है ?

यह प्रश्न क्यों ? तुम भी यही प्रश्न पूछ सकते हो, लेकिन उसका वही अर्थ नहीं होगा। इसलिए समझने की कोशिश करो कि देवी क्यों पूछती हैं कि आपका सत्य क्या है।

देवी गहरे से गहरे प्रेम में हैं। और जब कोई गहरे प्रेम में होता है तब पहली दफा उसे भीतर सत्य का साक्षात्कार होता है। तब शिव आकार नहीं हैं, शरीर नहीं हैं। जब तुम प्रेम में होते हो, तब प्रेमी का शरीर लुप्त हो जाता है। तब आकार मिट जाता है, निराकार प्रकट होता है। तब तुम एक अतल गहराई के सामने होते हो। यही कारण है कि हम प्रेम से इतना डरते हैं। हम एक शरीर का सामना कर सकते हैं; हम आकृति का, रूप का सामना कर सकते हैं; लेकिन हम अगाध अतल का, महाशून्य का सामना नहीं कर सकते।

अगर तुम किसी को प्रेम करते हो, सचमुच प्रेम करते हो तो उसका शरीर निश्चित रूप से विलुप्त हो जाने वाला है। ऊंचाई के शिखर के किसी क्षण में आकार मिट जाएगा और प्रेमी के माध्यम से तुम निराकार में प्रवेश कर जाओगे। यही वजह है कि हम डरते हैं। यह तो एक अतल समुद्र में गिरना हो जाएगा।

'हे शिव, आपका सत्य क्या है ?'

यह महज जिज्ञासा का प्रश्न नहीं है। देवी अवश्य ही आकार के साथ प्रेम में पड़ गई होंगी। चीजें वैसे ही शुरू होती हैं। उन्होंने पहले आदमी के रूप में इस आदमी को प्रेम किया होगा। और जब प्रेम वयस्क हुआ, प्रस्फुटित हुआ, खिला, तब यह आदमी ही अंतर्धान हो गया। वह निराकार हो गया है। अब वह आदमी कहीं दिखाई नहीं देता।

'हे शिव, आपका सत्य क्या है ?'

यह प्रेम के एक अत्यंत ही गहन क्षण में पूछा गया प्रश्न है। और जब प्रश्न उठते हैं, तब जिन मनों से वे उठते हैं, उनके अनुसार उनमें फर्क पड़ता है। इसलिए अपने-अपने मन में इस प्रश्न की स्थिति, इसका माहौल पैदा करो। पार्वती भारी अड़चन में पड़ी होंगी; देवी कठिनाई में पड़ी होंगी। शिव अंतर्धान हो गए हैं। जब प्रेम अपने शिखर पर होता है, तब प्रेमी अंतर्धान हो जाता है। यह क्यों होता है ?

यह होता है, क्योंकि वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति निराकार है। तुम शरीर नहीं हो। शरीर की तरह चलते हो, शरीर के तल पर जीते हो, लेकिन शरीर नहीं हो। जब हम बाहर से किसी को देखते हैं, तब वह शरीर ही है। लेकिन प्रेम तो भीतर प्रवेश करता है। तब हम व्यक्ति को बाहर से नहीं देखते हैं। प्रेम किसी को भी वैसे देख सकता है जैसे वह अपने को भीतर से देखता है। तब रूप विदा हो जाता है।

झेन संत रिंझाई आत्मोपलब्ध हुआ तो उसने पहला प्रश्न पूछा— मेरा शरीर कहां है ? वह कहां चला गया ? और वह खोजने लगा। उसने अपने शिष्यों को बुलाया और कहा— जाओ और खोजो कि मेरा शरीर कहां गया ? मेरा शरीर खो गया है।

वह निराकार में, अरूप में प्रवेश कर गया था। तुम भी एक निराकार अस्तित्व हो। लेकिन तुम अपने को प्रत्यक्ष नहीं, दूसरों की वजह से जानते हो। तुम अपने को आईने के मार्फत जानते हो। किसी समय आईने में अपने को देखते हुए आंखें बंद कर लो और तब ध्यान करो— अगर आईना नहीं होता तो मैं अपना रूप कैसे पहचानता ? एक ऐसी दुनिया की सोचो जहां आईना नहीं हो। तुम अकेले हो, कोई आईना नहीं है, आईने का काम करती हुई दूसरों की आंखें भी नहीं हैं। तब क्या तुम्हें चेहरा होगा ? या तुम्हें शरीर होगा ?

नहीं, नहीं होगा। है भी नहीं। हम अपने को दूसरों के द्वारा ही जानते हैं। और दूसरे केवल बाहरी रूप देखते हैं। और यही कारण है कि हम उसके साथ

तादात्म्य कर लेते हैं।

एक दूसरा झेन संत हयाकुजो अपने शिष्यों से कहा करता था— जब ध्यान करते हुए तुम्हारा सिर खो जाए तब तुरंत मेरे पास आना। जब तुम्हें लगे कि तुम्हारा सिर तुम्हारे कंधे पर नहीं है तब डरना मत, तुरंत मेरे पास चले आना। यही सही क्षण है, जब तुम्हें कुछ सिखाया जा सकता है। सिर के रहते सिखावन संभव नहीं है। सिर सदा बीच में आ जाता है।

देवी शिव से पूछती हैं— 'हे शिव, आपका सत्य क्या है ? आप कौन हैं ?'

आकार मिट गया है, इसलिए यह प्रश्न। प्रेम में तुम दूसरे में स्वयं उसकी तरह प्रविष्ट होते हो। तुम उत्तर नहीं दे रहे, तुम एक हो जाते हो। और पहली दफा तुम एक अंतस को, निराकार उपस्थिति को जानते हो।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक हमने शिव की कोई प्रतिमा, कोई चित्र नहीं बनाया। हम सिर्फ शिवलिंग बनाते रहे, उनका प्रतीक बनाते रहे। शिवलिंग एक निराकार आकार है। जब तुम किसी को प्रेम करते हो, किसी में प्रवेश करते हो, तब वह मात्र एक ज्योतित उपस्थिति हो जाता है। शिवलिंग वही ज्योतित उपस्थिति है, प्रकाश का प्रभा-मंडल। इसीलिए देवी पूछती हैं —

आपका सत्य क्या है ? यह विस्मय-भरा विश्व क्या है ?

हम विश्व को जानते हैं, लेकिन नहीं जानते हैं कि यह आश्चर्य से भरा है। बच्चे जानते हैं, प्रेमी जानते हैं; कभी-कभी कवि और पागल जानते हैं। लेकिन हम नहीं जानते कि ब्रह्मांड आश्चर्य भरा है। हमारे लिए सब कुछ महज पुनरावृत्ति है; उसमें कोई आश्चर्य नहीं, कोई कविता नहीं। वह सपाट गद्य है हमारे लिए। तुम्हारे हृदय में वह कोई गीत नहीं पैदा करता, तुममें वह नृत्य नहीं उपजाता; तुम्हारे भीतर किसी कविता का जन्म नहीं बनता। सारा जगत यंत्रवत मालूम होता है।

बच्चे अवश्य उसे आश्चर्य-भरी आंखों से देखते हैं। और जब आंखें आश्चर्य-भरी होती हैं, तब सारा ब्रह्मांड आश्चर्य से भर जाता है। और जब तुम प्रेम में होते हो, तुम फिर बच्चों की भांति हो जाते हो। जीसस कहते हैं— केवल वे ही हमारे प्रभु के राज्य में प्रवेश करेंगे जो बच्चों की भांति हैं। क्यों ? क्योंकि विश्व यदि आश्चर्यपूर्ण नहीं है तो तुम धार्मिक नहीं हो सकते। विश्व की व्याख्या हो सके, यह दृष्टि वैज्ञानिक है। तब जगत ज्ञात है या अज्ञात। लेकिन जो अज्ञात है, वह किसी दिन ज्ञात हो सकता है। तब वह अज्ञेय नहीं है। और जगत तभी अज्ञेय है, एक रहस्य है, जब आंखें विस्मय-भरी हों।

देवी पूछती हैं, 'यह विस्मय-भरा विश्व क्या है ?'

यहां वे व्यक्तिगत प्रश्न से अचानक अव्यक्तिगत प्रश्न पर छलांग लगाती हैं। वे पूछती थीं— आपका सत्य क्या है ? और फिर अचानक पूछ बैठती हैं— यह विस्मय-भरा जगत क्या है ? जब रूप विदा होता है तब प्रेमी विश्व बन जाता है—निराकार, अंतहीन। अचानक देवी को बोध होता है कि मैं शिव के बारे में नहीं पूछ रही हूं, पूरे विश्व के बारे में पूछ रही हूं। अब शिव ही समस्त विश्व हो गए हैं। अब सब ग्रह-तारे उनके भीतर ही घूम रहे हैं; सारा आकाश, समस्त महाकाश उनसे घिरा है। अब वे सबसे बड़ा घेरने वाला तत्त्व हैं—महा घेरनहार।

कार्ल जैस्पर्स ने ईश्वर को महा घेरनहार कहा है। जब तुम प्रेम में, प्रेम के घनिष्ठ संस्वर में प्रवेश करते हो, तब व्यक्ति का, रूप का लोप हो जाता है और प्रेमी विश्व का द्वार बनकर रह जाता है।

अगर तुम्हारी उत्सुकता वैज्ञानिक है तो तुम्हें तर्क की राह से जाना होगा। तब तुम्हें निराकार की नहीं सोचनी चाहिए। तब निराकार से बचो और आकार से संतोष करो। इसलिए विज्ञान सदा रूप से बंधा है। यदि वैज्ञानिक मन को कुछ निराकार की बात कही जाए, तो वह तुरंत उसे आकार में तोड़कर रख देगा। जब तक वह आकार नहीं धारण करता, वह उसके लिए व्यर्थ है। पहले उसे आकार, निश्चित आकार देना है और तब खोज शुरू होगी।

प्रेम में यदि आकार हो तो उसका अंत है। आकार को मिटा दो। जब चीजें अरूप हो जाती हैं—धुंधलकी, सीमाहीन हो जाती हैं, जब हर चीज दूसरी चीज में प्रवेश करती है, जब समस्त विश्व एकता में सिमट जाता है, तब—और तभी—यह विश्व विस्मय-भरा कलामय विश्व है।

इसका बीज क्या है ?

देवी आगे बढ़ती हैं, विश्व से भी आगे जाकर पूछती हैं— इसका बीज क्या है ? यह निराकार, विस्मय-भरा विश्व कहां से आता है ? कहां इसका उद्‌गम है ? या कोई उद्‌गम नहीं है ? बीज क्या है ?

विश्व-चक्र की धुरी क्या है ?

देवी आगे पूछती हैं। यह चक्र चलता ही जाता है—महापरिवर्तन, सतत प्रवाह। लेकिन इसका मध्यबिंदु क्या है ? इसकी धुरी कहां है ? अचल केंद्र कहां है ?

देवी किसी उत्तर के लिए नहीं रुकती हैं, पूछती ही चली जाती हैं। मानो वे किसी और से नहीं, स्वयं से ही बात कर रही हों।

रूपों पर छाए लेकिन रूप के परे यह जीवन क्या है ? देश और काल, नाम और प्रत्यय के परे जाकर हम इसमें कैसे पूर्णतः प्रवेश करें ? मेरे संशय निर्मूल करें।

यहां प्रश्न से अधिक संशय पर जोर है— मेरे संशय निर्मूल करें।

यह महत्त्वपूर्ण है। अगर तुम कोई बौद्धिक प्रश्न पूछते हो तो तुम उसके हल के लिए निश्चित उत्तर चाहते हो। लेकिन देवी कहती हैं, 'मेरे संशय निर्मूल करें।' वे वास्तव में कोई उत्तर नहीं चाहतीं, अपने मन का रूपांतरण चाहती हैं। क्योंकि जो उत्तर भी दिया जाए, संदेह करने वाला मन संदेह ही करता रहेगा।

इसे ध्यान में रख लो— संदेह करने वाला मन संदेह ही करता रहेगा। उत्तर अप्रासंगिक है। मैं एक उत्तर दूं, लेकिन अगर तुम्हारा मन संदेह करने वाला है तो तुम उस उत्तर पर भी संदेह करोगे। तुम्हारा मन ही संदेह करने वाला है। और संदेह से भरे मन का अर्थ है कि तुम किसी भी चीज पर प्रश्नचिह्न लगा दोगे।

इसलिए उत्तर व्यर्थ हैं। तुम मुझसे पूछते हो— किसने संसार को बनाया ? और यदि मैं कहूं कि अ ने बनाया तो तुम निश्चित रूप से पूछोगे कि अ को किसने बनाया ? इसलिए असली समस्या प्रश्नों के उत्तर देना नहीं है, असली समस्या है कि संदेह करने वाले मन को कैसे बदला जाए, उसे कैसे ऐसा बनाया जाए कि वह संदेह न करे, श्रद्धा करे।

इसलिए देवी कहती हैं, 'मेरे संशय निर्मूल करें।'

दो-तीन बातें और। जब तुम प्रश्न पूछते हो तो कई कारण से पूछ सकते हो। एक कारण हो सकता है कि तुम अपनी संपुष्टि के लिए पूछते हो। तुम्हें उत्तर पता है, उत्तर तुम्हारे पास है; तुम सिर्फ पक्का करना चाहते हो कि तुम्हारा उत्तर सही है। लेकिन तब तुम्हारा प्रश्न ही झूठा है, नकली है। वह प्रश्न ही नहीं है। तुम अपने को बदलने के इरादे से नहीं, सिर्फ कुतूहलवश पूछते हो।

मन पूछता ही जाता है। मन में प्रश्न वैसे ही आते हैं जैसे पेड़ में पत्ते लगते हैं। मन का स्वभाव ही है पूछना। वह पूछता ही चला जाता है। तुम क्या पूछते हो, यह महत्त्व का नहीं है, मन को जो भी मिले, वह उससे ही प्रश्न पैदा कर लेगा। मन प्रश्न गढ़ने की चक्की है। मन को कुछ भी दे दो, वह उसके टुकड़े कर उससे अनेक प्रश्न बना लेगा। तुम एक प्रश्न का उत्तर दो, वह उसी एक उत्तर से अनेक प्रश्न गढ़ लेगा।

यही तो दर्शन का इतिहास रहा है। बर्ट्रेंड रसेल ने अपने संस्मरण में कहा है कि मैं बच्चा था तो सोचता था कि एक दिन जब सारे दर्शन को समझने

की प्रौढ़ता आएगी तब सभी प्रश्न हल हो जाएंगे। अब जब अस्सी का हो चुका हूं तो मैं कह सकता हूं कि मेरे बचपन के प्रश्न तो ज्यों के त्यों खड़े ही हैं, दर्शन के इन सिद्धांतों के कारण बहुत-से दूसरे प्रश्न भी पैदा हो गए हैं। इसलिए रसेल ने कहा है कि मैं युवा था तो कहता था कि दर्शन आत्यंतिक उत्तरों की खोज है, अब यह नहीं कह सकता। इसे तो अंतहीन प्रश्नों की खोज ही कहना उचित होगा।

इसलिए एक प्रश्न अपने साथ एक उत्तर लाता है और साथ ही अनेक प्रश्न भी। संदेह करने वाला मन ही समस्या है।

पार्वती कहती हैं— मेरे प्रश्नों की फिक्र न करें। मैंने अनेक प्रश्न पूछ लिए— आपका सत्य रूप क्या है ? यह आश्चर्य-भरा जगत क्या है ? बीज कौन है? जागतिक चक्र की धुरी कहां है ? आकार के परे जीवन क्या है ? समय और स्थान से परे होकर हम उसमें पूरी तरह प्रवेश कैसे करें ? लेकिन मेरे प्रश्नों की फिक्र न करें। मेरे संशय निर्मूल करें। ये प्रश्न तो मैं इसलिए पूछती हूं कि वे मेरे मन में उठते हैं। मैं आपको केवल अपना मन दिखाने के लिए ये प्रश्न पूछती हूं। उन पर बहुत ध्यान मत दें। उत्तरों से मेरा काम नहीं चलेगा। मेरी जरूरत तो है कि मेरे संशय निर्मूल हों।

लेकिन संशय निर्मूल कैसे होंगे ? किसी उत्तर से ? क्या कोई उत्तर है जो कि मन के संशय दूर कर दे ? मन ही तो संशय है। जब तक मन नहीं मिटता है, संशय निर्मूल कैसे होंगे ?

शिव उत्तर देंगे। उनके उत्तर में सिर्फ विधियां हैं—सबसे पुरानी, सबसे प्राचीन विधियां। लेकिन तुम उन्हें अत्याधुनिक भी कह सकते हो, क्योंकि उनमें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता। वे पूर्ण हैं—एक सौ बारह विधियां। उनमें सभी संभावनाओं का समावेश है; मन को शुद्ध करने के, मन के अतिक्रमण के सभी उपाय उनमें समाए हैं। शिव की एक सौ बारह विधियों में एक और विधि नहीं जोड़ी जा सकती। और यह ग्रंथ, विज्ञान भैरव तंत्र, पांच हजार वर्ष पुराना है। उसमें कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता; कुछ जोड़ने की गुंजाइश ही नहीं है। यह सर्वांगीण है, संपूर्ण है, अंतिम है। यह सब से प्राचीन है और साथ ही सबसे आधुनिक, सबसे नवीन। पुराने पर्वतों की भांति ये तंत्र पुराने हैं, शाश्वत जैसे लगते हैं, और साथ ही सुबह के सूरज के सामने खड़े ओस-कण की भांति ये नए हैं, ये इतने ताजे हैं।

ध्यान की इन एक सौ बारह विधियों से मन के रूपांतरण का पूरा विज्ञान निर्मित हुआ है। एक-एक कर हम उनमें प्रवेश करेंगे। पहले हम उन्हें बुद्धि

से समझने की चेष्टा करेंगे। लेकिन बुद्धि को मात्र एक यंत्र की तरह काम में लाओ, मालिक की तरह नहीं। समझने के लिए यंत्र की तरह उसका उपयोग करो, लेकिन उसके जरिए नए व्यवधान मत पैदा करो। जिस समय हम इन विधियों की चर्चा करेंगे, तुम अपने पुराने ज्ञान को, पुरानी जानकारियों को एक किनारे धर देना। उन्हें अलग ही कर देना; वे रास्ते की धूल भर हैं।

इन विधियों का साक्षात्कार निश्चय ही सावचेत मन से करो; लेकिन तर्क को हटा कर करो। इस भ्रम में मत रहो कि विवाद करने वाला मन सावचेत मन है। वह नहीं है। क्योंकि जिस क्षण तुम विवाद में उतरते हो, उसी क्षण सजगता खो देते हो, सावचेत नहीं रहते हो। तुम तब यहां हो ही नहीं।

ये विधियां किसी धर्म की नहीं हैं। याद रखो, वे ठीक वैसे ही हिंदू नहीं हैं, जैसे सापेक्षवाद का सिद्धांत आइंस्टीन के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण यहूदी नहीं हो जाता, रेडियो और टेलीविजन ईसाई नहीं हैं। कोई नहीं कहता कि बिजली ईसाई है, क्योंकि ईसाई मस्तिष्क ने उसका आविष्कार किया था। विज्ञान किसी वर्ण या धर्म का नहीं है। और तंत्र विज्ञान है। इसलिए स्मरण रहे कि तंत्र हिंदू कतई नहीं है। ये विधियां हिंदुओं की ईजाद अवश्य हैं, लेकिन वे स्वयं हिंदू नहीं हैं। इसलिए इन विधियों में किसी धार्मिक अनुष्ठान का उल्लेख नहीं रहेगा। किसी मंदिर की जरूरत नहीं है। तुम स्वयं मंदिर हो। तुम ही प्रयोगशाला हो, तुम्हारे भीतर ही पूरा प्रयोग होने वाला है। और विश्वास की भी जरूरत नहीं है।

तंत्र धर्म नहीं, विज्ञान है, किसी विश्वास की जरूरत नहीं है। कुरान या वेद में, बुद्ध या महावीर में आस्था रखने की आवश्यकता नहीं है। नहीं, किसी विश्वास की आवश्यकता नहीं है। प्रयोग करने का महासाहस पर्याप्त है, प्रयोग करने की हिम्मत काफी है और यही इसका सौंदर्य है। एक मुसलमान प्रयोग कर सकता है और वह कुरान के गहरे अर्थों को उपलब्ध हो जाएगा। एक हिंदू अभ्यास कर सकता है और वह पहली दफा जानेगा कि वेद क्या है। वैसे ही एक जैन इस साधना में उतर सकता है; बौद्ध इस साधना में उतर सकता है। उन्हें अपने धर्म छोड़ने की जरूरत नहीं है। वे जहां हैं, वहीं तंत्र उन्हें आप्तकाम करेगा। उनके अपने चुने हुए रास्ते जो भी हों, तंत्र सहयोगी होगा।

इसलिए याद रहे, तंत्र शुद्ध विज्ञान है। तुम हिंदू हो सकते हो, या मुसलमान, या पारसी, या कोई भी। तंत्र तुम्हारे धर्म को जरा भी नहीं छूता है। तंत्र का कहना है कि धर्म सामाजिक मामला है। किसी भी धर्म में रहो, यह अप्रासंगिक है। लेकिन तुम अपने को रूपांतरित कर सकते हो। और उस रूपांतरण के लिए

वैज्ञानिक प्रणाली जरूरी है। जब तुम बीमार पड़ते हो या तुम्हें तपेदिक या कुछ हो गया है, तब तुम्हारा हिंदू या मुसलमान होना कोई फर्क नहीं करता है। तपेदिक को तुम्हारे हिंदू, इस्लाम या किसी भी राजनीतिक या सामाजिक विश्वास के साथ लेना-देना नहीं है। तपेदिक का इलाज वैज्ञानिक ढंग से किया जाना होगा। कोई हिंदू तपेदिक या मुसलमान तपेदिक नहीं होता।

तुम अज्ञान में हो, द्वंद्व में हो; तुम सोए हो। यह एक रोग है—आध्यात्मिक रोग। और इस रोग का इलाज तंत्र के द्वारा होना है। तुम इसमें अप्रासंगिक हो, तुम्हारा विश्वास अप्रासंगिक है। यह आकस्मिक है कि तुम कहीं पैदा हुए हो और कोई दूसरा और कहीं पैदा हुआ है। यह सांयोगिक है। तुम्हारा धर्म भी सांयोगिक है। इसलिए उससे चिपके मत रहो। और अपने को रूपांतरित करने के लिए वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग करो।

तंत्र बहुत माना-जाना नहीं है। यदि माना-जाना भी है तो बहुत गलत समझा गया है। और उसके कारण हैं। जो विज्ञान जितना ही ऊंचा और शुद्ध होगा, उतना ही कम जनसाधारण उसे जान-समझ सकेगा। हमने सापेक्षवाद के सिद्धांत का नाम सुना है। कहा जाता था कि आइंस्टीन के जीते-जी केवल बारह व्यक्ति उसे समझते थे। सारी जमीन पर सिर्फ बारह लोग उसे समझ सके। खुद अल्बर्ट आइंस्टीन के लिए उसे दूसरों को समझाना, उसे समझने के योग्य बनाना कठिन था। क्योंकि वह सिद्धांत ही इतना ऊंचा था। मानो वह तुम्हारे सिर के ऊपर से चला जाता था।

लेकिन उसे समझा जा सकता है। एक तकनीकी ज्ञान हो, गणित का ज्ञान हो, प्रशिक्षण हो, तो वह बिलकुल समझा जा सकता है। तंत्र उससे भी कठिन है, क्योंकि किसी प्रशिक्षण से काम नहीं चलेगा। केवल रूपांतरण मदद कर सकता है।

यही कारण है कि जनसाधारण के लिए तंत्र नहीं समझा गया। और सदा यह होता है कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो तो उसे गलत जरूर समझते हो; क्योंकि तब तुम्हें लगता है कि समझते जरूर हो। तुम रिक्त स्थान में बने रहने को राजी नहीं हो।

दूसरी बात कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो, तुम उसे गाली देने लगते हो। यह इसलिए कि यह तुम्हें अपमानजनक लगता है। तुम सोचते हो, मैं और नहीं समझूं, यह असंभव है। इस चीज के साथ ही कुछ भूल होगी। और तब तुम गाली देने लगते हो। तब तुम ऊलजलूल बकने लगते हो। और कहते हो कि अब ठीक है।

इसलिए तंत्र को नहीं समझा गया, और तंत्र को गलत समझा गया। वह इतना गहरा और ऊंचा था कि यह होना स्वाभाविक था।

तीसरी बात कि चूंकि तंत्र द्वैत के पार जाता है, इसलिए उसका दृष्टिकोण अति नैतिक है। कृपा कर इन शब्दों को समझो— नैतिक, अनैतिक, अति नैतिक। नैतिक क्या है, हम समझते हैं, अनैतिक क्या है, वह भी हम समझते हैं। लेकिन जब कोई चीज अति नैतिक हो जाती है, नैतिक-अनैतिक दोनों के पार चली जाती है, तब उसे समझना कठिन हो जाता है।

तंत्र अति नैतिक है। इसे इस तरह देखो। औषधि, दवा अति नैतिक है, वह न नैतिक है और न अनैतिक। चोर को दवा दो तो उसे लाभ पहुंचाएगी। संत को दो, तो उसे भी लाभ पहुंचाएगी। वह चोर और संत में कोई भेद नहीं करेगी। दवा नहीं कह सकती कि यह चोर है इसलिए मैं उसे मारूंगी और वह साधु है उसकी मदद करूंगी। दवा वैज्ञानिक है। तुम्हारा चोर या संत होना उसके लिए अप्रासंगिक है।

तंत्र अति नैतिक है। तंत्र कहता है— कोई नैतिकता जरूरी नहीं है, कोई खास नैतिकता जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि तुम अनैतिक हो, क्योंकि तुम्हारा चित्त अशांत है। इसलिए तंत्र शर्त नहीं लगाता कि पहले तुम नैतिक बनो तब तंत्र की साधना कर सकते हो। तंत्र के लिए यह बात ही बेतुकी है। कोई बीमार है, बुखार में है और डाक्टर आकर कहता है— पहले अपना बुखार कम करो; पहले पूरा स्वस्थ हो लो और तभी मैं दवा दूंगा !

यही तो हो रहा है। एक चोर साधु के पास आता है और कहता है कि मैं चोर हूं, मुझे ध्यान करना सिखाएं। साधु कहता है कि पहले चोरी छोड़ो, चोर रहते ध्यान कैसे करोगे ! एक शराबी आकर कहता है, मैं शराबी हूं, मुझे ध्यान बताएं। और साधु कहता है, पहली शर्त कि शराब छोड़ो और तब ध्यान कर सकोगे।

ये शर्तें ही आत्मघातक हो जाती हैं। वह मनुष्य शराबी है, या चोर है, या अनैतिक है; क्योंकि उसका चित्त अशांत है, रुग्ण है। ये तो रुग्ण चित्त के प्रभाव हैं, परिणाम हैं। और उसे कहा जाता है, पहले अच्छे हो लो तब ध्यान करना। लेकिन तब ध्यान की जरूरत किसको है ?

ध्यान औषधीय है; ध्यान औषधि है।

तंत्र अति नैतिक है। वह नहीं पूछता कि तुम कौन हो। तुम्हारा मनुष्य होना काफी है। तुम जहां भी हो, जो भी हो, स्वीकृत हो।

जो विधि तुम्हें तुम्हारे अनुकूल पड़े उसे चुन लो, उसमें अपनी पूरी शक्ति

लगा दो, और फिर तुम वही नहीं रहोगे जो थे। वास्तविक, प्रामाणिक विधियां सदा वैसा ही करती हैं। और मैं पूर्व-शर्त खड़ी करता हूं तो वह बताता है कि विधि नकली है। अगर मैं कहूं कि पहले यह करो, वह मत करो और तब ध्यान, तो उसका अर्थ हुआ कि मैं असंभव शर्तें रख रहा हूं। क्योंकि चोर अपने विषय भर बदल सकता है, वह अचोर नहीं हो सकता। लोभी अपने लोभ के विषय बदल सकता है, वह अलोभी नहीं हो सकता। तुम उस पर या वह स्वयं अपने पर अलोभ को लाद सकता है, लेकिन वह भी लोभ के लिए ही करेगा। यदि स्वर्ग का वादा किया जाए, तो वह अलोभी होने का यत्न कर सकता है। लेकिन यह तो सबसे बड़ा लोभ हो गया, परम लोभ हो गया। अब स्वर्ग, मोक्ष, सच्चिदानंद उसके लोभ के लक्ष्य होंगे।

तंत्र कहता है, तुम आदमी को बदलाहट की प्रामाणिक विधि के बिना नहीं बदल सकते। मात्र उपदेश से कुछ नहीं बदलता है। और पूरी जमीन पर यही हो रहा है। तंत्र जो कुछ कह रहा है, सारा संसार उसकी गवाही दे रहा है। इतने उपदेश, इतनी नैतिक शिक्षा, इतने पुरोहित, इतने प्रचारक ! पृथ्वी उनसे पटी है। और फिर भी सब कुछ इतना अनैतिक है ! इतना कुरूप है ! ऐसा क्यों हो रहा है ?

अगर अस्पताल उपदेशकों के हवाले कर दिए जाएं तो वहां भी यही होगा। वे वहां जाकर उपदेश शुरू कर देंगे। वे हर बीमार आदमी को कहेंगे कि तुम अपराधी हो, तुमने ही यह बीमारी खड़ी की है, पहले तुम उसे हटाओ। यदि अस्पताल उपदेशकों के जिम्मे कर दिए जाएं, तो उनका क्या हाल होगा ? वही जो समूचे संसार का है।

उपदेशक उपदेश किए चले जाते हैं। वे लोगों से कहते हैं कि क्रोध मत करो और उसके लिए कोई उपाय नहीं बताते। और हमने यह उपदेश बहुत-बहुत समय से सुना है, लेकिन कभी नहीं पूछा— क्या कहते हो ? मैं क्रोधी हूं और तुम कहते हो कि क्रोध मत करो। यह कैसे संभव है ? जब मैं क्रोध में हूं तो उसका मतलब है कि मैं क्रोध ही हूं। और तुम सिर्फ कहते हो कि क्रोध मत करो। तो क्या मैं अपना दमन करूं ? लेकिन दमन से तो और क्रोध पैदा होगा। उससे अपराध-भाव पैदा होगा। क्योंकि यदि मैं अपने को बदलने की कोशिश करूं और न बदल पाऊं तो मेरे भीतर हीनता पैदा होगी। उससे मुझमें अपराध-भाव पैदा होगा कि मैं निकम्मा हूं, कि मैं अपने क्रोध को नहीं जीत सकता।

वैसे क्रोध को कोई नहीं जीत सकता है। उसके लिए किसी उपाय की, किसी विधि की जरूरत है। क्योंकि तुम्हारा क्रोध तुम्हारे अशांत चित्त का लक्षण

है। अशांत मन को बदलो और लक्षण बदल जाएगा। क्रोध इतना भर दिखा रहा है कि भीतर क्या है। भीतर को बदलो और बाहर बदल जाएगा।

इसलिए तंत्र तुम्हारी तथाकथित नैतिकता की फिक्र नहीं करता। सच तो यह है कि नैतिकता पर जोर देना क्षुद्र है, अपमानजनक है। वह अमानुषिक है। यदि कोई मेरे पास आता है और मैं उससे कहता हूं कि पहले क्रोध छोड़ो, पहले काम छोड़ो, पहले यह छोड़ो, वह छोड़ो तो मैं अमानुषिक हूं। जो मैं कहता हूं वह असंभव है। और इस असंभावना के कारण ही वह आदमी भीतर से क्षुद्रता का अनुभव करेगा। वह दीन-हीन अनुभव करेगा; अपनी ही आंखों में भीतर पतित मालूम पड़ेगा। यदि वह असंभव की चेष्टा करेगा तो हारेगा। और हार के कारण वह अपने को पापी मान बैठेगा।

उपदेशकों ने सारी दुनिया को समझा दिया है कि सब पापी हो। यह उनके लिए अच्छा है। जब तक तुम यह नहीं मानते कि तुम पापी हो, उनका धंधा नहीं चलेगा। तुम्हें पापी होना पड़ेगा। तभी गिरजे, मंदिर और मस्जिद फूलते-फलते रहेंगे। तुम्हारा पाप में होना ही उनकी कमाई का मौसम है। तुम्हारा पाप ऊंचे से ऊंचे मंदिर-मस्जिद की नींव है। तुम जितने पापी होओगे उतना ही ऊंचा उनका शिखर उठेगा। वे तुम्हारे अपराध पर, पाप पर, तुम्हारे हीनता के भाव पर ही खड़े किए जाते हैं। और इस तरह उन्होंने एक दीन-हीन मनुष्यता का निर्माण किया है।

तंत्र तुम्हारी तथाकथित नैतिकता की, तुम्हारे सामाजिक रस्म-रिवाज आदि की चिंता नहीं करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि तंत्र तुम्हें अनैतिक होने को कहता है। नहीं, तंत्र जब तुम्हारी नैतिकता की ही इतनी कम फिक्र करता है तो तुम्हें अनैतिक होने को नहीं कह सकता। तंत्र तो वैज्ञानिक विधि बताता है कि कैसे चित्त को बदला जाए। और एक बार चित्त दूसरा हुआ कि तुम्हारा चरित्र दूसरा हो जाएगा। एक बार तुम्हारे ढांचे का आधार बदला कि पूरी इमारत दूसरी हो जाएगी।

इसी अति नैतिक सुझाव के कारण तंत्र तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्माओं को बर्दाश्त नहीं हुआ। वे सब उसके विरोध में खड़े हो गए। क्योंकि अगर तंत्र सफल होता है तो धर्म के नाम पर चलने वाली सारी नासमझी समाप्त हो जाएगी।

यह देखो कि ईसाइयत वैज्ञानिक प्रगति के विरुद्ध जोर से लड़ती रही। क्योंकि उसने सोचा कि यदि भौतिक जगत में वैज्ञानिक प्रगति आई तो वह दिन दूर नहीं है जब विज्ञान मनोवैज्ञानिक और धार्मिक जगत में भी प्रवेश कर जाएगा। इसलिए ईसाइयत वैज्ञानिक प्रगति के खिलाफ जूझती रही। एक बार तुम जान

गए कि विधियों के द्वारा तुम पदार्थ को बदल सकते हो तो किसी दिन तुम यह भी जान ही लोगे कि विधियों के द्वारा मन को भी बदल सकते हो। क्योंकि मन सूक्ष्म पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यही तंत्र की प्रस्तावना है कि मन सूक्ष्म पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है और यह बदला जा सकता है। और मन बदला कि संसार बदल गया, क्योंकि तुम मन के द्वारा ही देखते हो। जो संसार तुम देखते हो उसे वैसा एक विशेष मन के कारण देखते हो। मन को बदलो और तब देखोगे कि एक भिन्न संसार ही तुम्हारे सामने होगा। और जब मन अ-मन हो जाए—वह तंत्र का आत्यंतिक लक्ष्य है कि एक ऐसी अवस्था आए जहां मन ही न रहे—तब संसार को बिना माध्यम के देखो। और जब माध्यम नहीं रहा तब तुम सत्य के बिलकुल आमने-सामने होते हो। क्योंकि अब तुम्हारे और सत्य के बीच में कोई भी न रहा। तब कुछ भी विरूप, विकृत नहीं किया जा सकेगा।

तंत्र कहता है कि उस अवस्था का नाम भैरव है जब मन नहीं रहता है—अ-मन की अवस्था। और तब पहली दफा तुम यथार्थतः उसको देखते हो जो है। जब तक मन है, तुम अपना ही संसार रचे जाते हो, तुम उसे आरोपित, प्रक्षेपित किए जाते हो। इसलिए पहले तो मन को बदलो और तब मन को अ-मन में बदलो।

और ये एक सौ बारह विधियां सभी लोगों के काम आ सकती हैं। हो सकता है, कोई विशेष उपाय तुमको ठीक न पड़े। इसलिए तो शिव अनेक उपाय बताए चले जाते हैं। कोई एक विधि चुन लो जो तुमको जंच जाए।

और यह जानना कठिन नहीं है कि कौन-सी विधि तुम्हें जंचती है। हम यहां प्रत्येक विधि को समझने की कोशिश करेंगे और बताएंगे कि कैसे तुम अपने लिए वह विधि चुन लो जो कि तुम्हें और तुम्हारे मन को रूपांतरित कर दे। यह समझ, यह बौद्धिक समझ बुनियादी तौर से जरूरी है, लेकिन यह अंत नहीं है। जिस विधि की भी चर्चा मैं यहां करूं उसको प्रयोग करो। सच में यह है कि जब तुम अपनी सही विधि का प्रयोग करते हो, तब झट से उसका तार तुम्हारे किसी तार से लगकर बज उठता है।

इसलिए मैं यहां रोज-रोज विधियों की चर्चा किए जाऊंगा। तुम प्रयोग करना। बस उनसे खेलना। घर जाना और प्रयोग करना। और प्रयोग करते-करते जब तुम अपनी विधि के पास पहुंचोगे तो वह तुम्हारे भीतर खट से बज उठेगी, वह तुम्हें घेर लेगी। तुम्हारे भीतर कुछ विस्फोट-सा होगा और तुम जानोगे कि यह विधि मेरे लिए है। लेकिन प्रयास जरूरी है। और तुम चकित रह जाओगे कि

किसी दिन एक विधि ने तुम्हें बस आच्छादित कर लिया है।

इसलिए इधर मैं उनकी चर्चा किए जाऊंगा और उधर साथ ही साथ तुम उनके साथ खेलते जाना। मैं खेलना शब्द का व्यवहार करता हूं, क्योंकि तुम्हें बहुत गंभीर नहीं होना है। बस खेलना। और खेल-खेल में ही तुम्हें कुछ जंच जाएगा। जब जंच जाए तब गंभीर हो जाना, तब उसमें गहरे उतर जाना—तीव्रता से, निष्ठा से, पूरी ऊर्जा के साथ, पूरे मन से। लेकिन उसके पहले बस खेलना।

मैंने देखा है कि जब तुम खेलते हो तब तुम्हारा मन अधिक खुला रहता है। गंभीर होने पर वह उतना खुला नहीं होता, बंद होता है। इसलिए खेलना भर। गंभीर मत होना, खेलना। और ये विधियां बहुत सरल हैं। तुम उनके साथ खेल सकते हो।

एक विधि लो और उसके साथ तीन दिन खेलो। अगर तुम्हें उसके साथ निकटता की अनुभूति हो, अगर उसके साथ तुम थोड़ा स्वस्थ महसूस करो, अगर तुम्हें लगे कि यह तुम्हारे लिए है तो फिर उसके प्रति गंभीर हो जाओ। तब दूसरी विधियों को भूल जाओ, उनसे खेलना बंद करो। और अपनी विधि के साथ टिको, कम-से-कम तीन महीने टिको। चमत्कार संभव है। बस इतना होना चाहिए कि वह विधि सचमुच तुम्हारे लिए हो। यदि तुम्हारे लिए नहीं है तो कुछ नहीं होगा। तब उसके साथ जन्मों-जन्मों तक प्रयोग करके भी कुछ नहीं होगा। और अगर विधि तुम्हारे लिए है तो तीन मिनट काफी हैं।

ये एक सौ बारह विधियां तुम्हारे लिए चमत्कारिक अनुभव बन सकती हैं, या तुम उन्हें महज सुन सकते हो। यह तुम पर निर्भर है, मैं सभी संभव पहलुओं से प्रत्येक विधि की व्याख्या करूंगा। अगर तुम उसके साथ कुछ निकटता अनुभव करो तो तीन दिनों तक उससे खेलो और फिर छोड़ दो। अगर वह तुम्हें जंचे, तुम्हारे भीतर कोई तार बजा दे तो फिर तीन महीने उसके साथ प्रयोग करो।

जीवन चमत्कार है। अगर हमने उसके रहस्य को नहीं जाना है तो उससे यही जाहिर होता है कि तुम्हें उसके पास पहुंचने की विधि नहीं मालूम है।

शिव यहां एक सौ बारह विधियां प्रस्तावित कर रहे हैं। इसमें सभी संभव विधियां सम्मिलित हैं। यदि इनमें से कोई भी तुम्हारे भीतर नहीं 'जंचती' है, कोई भी तुम्हें यह भाव नहीं देती है कि वह तुम्हारे लिए है तो फिर कोई भी विधि तुम्हारे लिए नहीं बची। इसे ध्यान में रखो। तब अध्यात्म को भूल जाओ और खुश रहो। वह तब तुम्हारे लिए नहीं है।

लेकिन ये एक सौ बारह विधियां तो समस्त मानव-जाति के लिए हैं। और वे उन सभी युगों के लिए हैं जो गुजर गए हैं और आने वाले हैं। और किसी

भी युग में एक भी ऐसा आदमी नहीं हुआ और न होने वाला ही है, जो कह सके कि ये सभी एक सौ बारह विधियां मेरे लिए व्यर्थ हैं। असंभव ! यह असंभव है !

प्रत्येक ढंग के चित्त के लिए यहां गुंजाइश है। तंत्र में प्रत्येक किस्म के चित्त के लिए विधि है। कई विधियां हैं जिनके उपयुक्त मनुष्य अभी उपलब्ध नहीं हैं, वे भविष्य के लिए हैं। और ऐसी विधियां भी हैं जिनके उपयुक्त लोग रहे नहीं, वे अतीत के लिए हैं। लेकिन डर मत जाना। अनेक विधियां हैं जो तुम्हारे लिए ही हैं।

तो कल से हम इस यात्रा पर निकलेंगे।

2

योग और तंत्र; समर्पण और विधि

प्रश्न-सार

1. योग और तंत्र में क्या फर्क है ?

2. समर्पण की विधि क्या है ?

3. कैसे कोई विधि रास आती है ?

कई प्रश्न हैं। पहला प्रश्नः

परंपरागत योग और तंत्र में भेद क्या है? क्या वे एक ही चीज हैं ?

तंत्र और योग बुनियादी रूप से भिन्न हैं। यद्यपि दोनों एक ही लक्ष्य पर ले जाते हैं, तो भी उनके रास्ते भिन्न हैं; भिन्न ही नहीं विपरीत हैं।

इसे ठीक से समझ लेना है। योग की प्रक्रिया भी उपायमूलक है। योग भी विधि ही है। योग कोई मीमांसा नहीं है। तंत्र की तरह ही योग भी क्रिया, उपाय, विधि पर निर्भर है। तंत्र क़ी तरह ही योग में भी कुछ करने से, क्रिया से होना या अस्तित्व उपलब्ध होता है। लेकिन दोनों के ढंग, दोनों की प्रक्रियाएं भिन्न-भिन्न हैं।

योग में लड़ना अनिवार्य है; वह योद्धा का पथ है। तंत्र के मार्ग पर लड़ना बिलकुल नहीं है। उलटे तंत्र में भोग है, भोगना है; लेकिन बोधपूर्वक। योग होश के साथ दमन है; तंत्र होश के साथ भोग है।

तंत्र कहता है कि तुम जो कुछ हो, परम तत्त्व उसके विपरीत नहीं है। वह वृद्धि है, विकास है; तुम परम तत्त्व की ओर विकसित हो सकते हो। तुम्हारे और सत्य के बीच विरोध नहीं है। तुम उसके अंश हो; इसलिए प्रकृति के साथ विरोध की, द्वंद्व की जरूरत नहीं है। तुम्हें प्रकृति का उपयोग करना है; तुम जो भी हो उसका उपयोग करना है, ताकि उसके पार उठ सको।

योग में ऊपर जाने के लिए तुम्हें अपने से ही संघर्ष करना है। योग में संसार और मोक्ष—जो तुम हो और जो तुम हो सकते हो—दो विपरीत चीजें हैं। इसलिए दमन करो, जो हो उसे मिटाओ; ताकि वह हो सको जो हो सकते हो। योग में पार जाना मृत्यु है। तुम्हारे स्वरूप के जन्म लेने के लिए तुम्हें मरना होगा।

तंत्र की निगाह में योग गहरा आत्मघात है। उसमें तुम्हें अपने प्रकृत रूप—शरीर, वृत्ति, इच्छा—सब कुछ को मारना होगा, नष्ट करना होगा। तंत्र कहता है— तुम जैसे हो, अपने को स्वीकार करो। तंत्र गहरी से गहरी स्वीकृति है। अपने और सत्य के बीच, संसार और निर्वाण के बीच अंतराल नहीं बनाना है। कोई भी अंतराल नहीं। तंत्र में अंतराल जरूरी नहीं है; मृत्यु जरूरी नहीं है। वहां तुम्हारे पुनर्जन्म के लिए मृत्यु नहीं, अतिक्रमण आवश्यक है। और इस अतिक्रमण के लिए अपना उपयोग करना है।

उदाहरण के लिए यौन है, काम है। वह बुनियादी ऊर्जा है जिसके जरिए, जिससे ही तुम पैदा हुए हो। तुम्हारे अस्तित्व के, तुम्हारे शरीर के बुनियादी कोश कामजन्य हैं; कामुक हैं। यही कारण है कि मनुष्य का मन यौन के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। योग में इस ऊर्जा से लड़ना अनिवार्य है। वहां लड़कर ही तुम अपने भीतर एक भिन्न केंद्र को जन्म देते हो। जितना ही तुम लड़ते हो उतना ही इस दूसरे केंद्र पर तुम एकत्रित होते हो, अखंड होते हो। तब यौन तुम्हारा केंद्र नहीं रह जाता। काम से लड़कर, मगर बोधपूर्वक, तुम्हारे भीतर अस्तित्व का एक नया केंद्र, एक नई धुरी, एक नया स्फटिकीकरण पैदा होगा। तब काम तुम्हारी ऊर्जा नहीं रह जाएगा। काम से लड़कर तुम अपनी ऊर्जा निर्मित करोगे। तब एक सर्वथा नई ऊर्जा, सर्वथा नया अस्तित्व-केंद्र पैदा होगा।

तंत्र में काम-ऊर्जा का उपयोग करना है। उससे लड़ो मत, उसे रूपांतरित करो। शत्रुता की भाषा में मत सोचो; उससे मैत्री साधो। वह तुम्हारी ही ऊर्जा है; वह बुरी नहीं है, दुष्ट नहीं है। सब ऊर्जा तटस्थ है। उसे ही तुम्हारे अहित में लगाया जा सकता है। तुम उस ऊर्जा को अपना अवरोधक बना सकते हो, और उसी ऊर्जा को अपनी सीढ़ी भी बना सकते हो। उपयोग की बात है। सही उपयोग करो तो वह मित्र है; गलत उपयोग से वही शत्रु हो जाती है। स्वयं में वह कोई भी नहीं है—मित्र न शत्रु।

साधारण आदमी यौन का, काम का जिस प्रकार से उपयोग करता है, काम उसका शत्रु बन जाता है। काम उसको विनष्ट करता है; काम से वह बस क्षीणबल होता है।

योग विपरीत दृष्टि, साधारण चित्त के विपरीत दृष्टि अपनाता है। साधारण

चित्त अपनी ही वासनाओं से विनष्ट होता है। इसलिए योग कहता है— वासना छोड़ो और वासना-शून्य बनो। तंत्र कहता है—वासना के प्रति, कामना के प्रति जागो; उससे लड़ो मत। कामना में पूरी सजगता के साथ उतर जाओ। और जब तुम पूरे होश से कामना में उतरते हो, तुम उसका अतिक्रमण कर जाते हो। तब तुम उसमें होते हो और उसमें नहीं होते हो। उसके भीतर से गुजरकर भी तुम उससे अछूते बने रहते हो।

योग का आकर्षण है, प्रभाव है; क्योंकि योग साधारण चित्त के विपरीत है। इसलिए साधारण चित्त योग की भाषा समझता है। तुम्हें पता है कि काम कैसे तुम्हें विनष्ट करता है, कैसे तुम उसके गिर्द कठपुतली की तरह नाचते हो। अपने अनुभव से तुम यह जानते हो। इसलिए योग जब लड़ने को कहता हैं तब तुरंत तुम उसकी भाषा समझ जाते हो। योग का यही आकर्षण है।

तंत्र आसानी से उस आकर्षण को नहीं पा सकता। यह बहुत कठिन लगता है कि कैसे कामना में उससे पराजित हुए बिना प्रवेश हो सकता है ! चित्त भयभीत होता है। बात ही यह खतरनाक मालूम देती है। ऐसा नहीं कि यह खतरनाक है; तुम काम के संबंध में जो जानते हो उसके चलते तुम्हें यह खतरा नजर आता है। तुम अपने को जानते हो। तुम जानते हो कि तुम कैसे अपने को धोखा दे सकते हो। तुम भलीभांति जानते हो कि तुम्हारा मन चालाक है। तुम कामना में, काम में, सब चीज में उतर सकते हो और अपने को धोखे में रख सकते हो कि पूरे होश के साथ उतर रहे हो। यही कारण है कि तुम्हें खतरा मालूम देता है।

खतरा तंत्र में नहीं, तुममें है। और योग का आकर्षण भी तुम्हारे कारण है, तुम्हारे साधारण मन के कारण है, जिसने काम का दमन किया है, जो काम का भूखा है, जो कामांध है। साधारण मन काम के संबंध में स्वस्थ नहीं है; इसलिए योग का आकर्षण है। जब मनुष्यता कुछ बेहतर होगी, जब यौन स्वस्थ होगा, प्रकृत और सामान्य होगा, तब बात कुछ दूसरी होगी।

हम प्रकृत, स्वाभाविक और सामान्य नहीं हैं। हम तो सर्वथा अप-सामान्य, अस्वस्थ और विक्षिप्त हैं। लेकिन क्योंकि सभी लोग ऐसे ही हैं, इसलिए इसका बोध हमें नहीं होता। पागलपन ही इतना सामान्य है कि नहीं पागल होना अप-सामान्य मालूम पड़ेगा। हमारे बीच बुद्ध अप-सामान्य हैं। जीसस अप-सामान्य हैं। वे हमसे अन्यथा मालूम पड़ते हैं। यह सामान्यता रोग है। और इसी सामान्य चित्त में योग का आकर्षण पैदा होता है।

यदि तुम यौन को उसकी स्वाभाविकता में ग्रहण करो, यदि उसके आस-पास

पक्ष या विपक्ष का तत्त्वचिंतन नहीं खड़ा करो, यदि तुम उसे वैसे ही देखो जैसे अपने हाथ-पांव को देखते हो, एक स्वाभाविक चीज की तरह उसे उसकी समग्रता में स्वीकार करो, तो फिर तंत्र का प्रभाव पैदा होगा। और तभी तंत्र बहुजनहिताय सिद्ध हो सकता है।

और तंत्र के दिन आ रहे हैं। देर-अबेर पहली बार सर्व-साधारण के बीच तंत्र का विस्फोट होने वाला है। क्योंकि पहली बार यौन को, काम को स्वाभाविक ढंग से ग्रहण करने की भूमि तैयार हुई है। और संभव है कि यह विस्फोट पश्चिम में शुरू हो, क्योंकि फ्रायड, जुंग और रेख ने वहां भूमि तैयार की हुई है। वे तंत्र के बारे में तो अनभिज्ञ थे, लेकिन अनजाने ही उन्होंने तंत्र के विकास के लिए बुनियादी भूमि तैयार कर दी है। पश्चिम का मनोविज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मनुष्य की बुनियादी बीमारी कामजन्य है, उसकी बुनियादी विक्षिप्तता काम-केंद्रित है। इसलिए जब तक उसका यह काम-केंद्रित होना नहीं मिटता है, आदमी स्वाभाविक और सामान्य नहीं होगा।

सेक्स के प्रति, काम के प्रति अपनी दृष्टि और रुझान के चलते, अपने भाव के चलते आदमी गलत हो गया है। किसी भी दृष्टि या भाव की जरूरत नहीं है। और तभी तुम स्वाभाविक हो सकते हो। क्या तुम अपनी आंखों के प्रति कोई रुझान रखते हो ? वे दुष्ट हैं या दिव्य ? तुम अपनी आंखों के पक्ष में हो या विपक्ष में ? कोई भी पक्षपात नहीं है। और इसीलिए आंखें सामान्य हैं।

फिर कोई भाव ले लो, सोचो कि आंखें बुरी हैं, और तब उनसे देखना मुश्किल हो जाएगा। तब देखना वैसे ही समस्या-मूलक हो जाएगा जैसे अभी यौन है, काम है। तब तुम देखना चाहोगे, देखने की इच्छा करोगे, देखने को व्यग्र होओगे, और जब देख लोगे तब अपराधी अनुभव करोगे। देखने के बाद तुम्हें लगेगा कि कुछ भूल हो गई, कुछ पाप हो गया। और तब तुम अपने देखने के यंत्र को, आंखों को ही नष्ट करना चाहोगे। और फिर जितना ही उन्हें नष्ट करना चाहोगे, उतना ही तुम आंख-केंद्रित हो जाओगे। और एक अनर्गल सिलसिला शुरू होगा— तुम ज्यादा से ज्यादा देखना भी चाहोगे और साथ ही ज्यादा से ज्यादा अपराधी भी अनुभव करोगे। काम-केंद्र के साथ यही दुर्घटना घटी है।

तंत्र कहता है— तुम जो भी हो उसे स्वीकार करो। तंत्र का यह मूल स्वर है— समग्र स्वीकार। और समग्र स्वीकार के जरिए ही तुम विकास कर सकते हो। तब जो भी ऊर्जा तुम्हारे पास है, उसका उपयोग करो।

पर उसका उपयोग कैसे करोगे ? पहले उन्हें स्वीकारो, फिर खोजो, जानो कि यह ऊर्जा क्या है, यह तत्त्व क्या है, यह यौन क्या है ? हम उससे परिचित

नहीं हैं। हम यौन के बारे में बहुत कुछ जानते हैं जो दूसरों ने हमें सिखाया है, जो उधार ज्ञान है। हम काम-भोग से भी गुजरे होंगे, लेकिन अपराधी मन से, दमित मन से और जल्दबाजी में। मन का कोई बोझ उतार फेंकने के लिए हम संभोग में उतरे होंगे। तुम्हारे लिए काम-भोग प्रिय कर्म नहीं है, तुम उसमें प्रसन्न नहीं हो; लेकिन उसे तुम छोड़ भी नहीं सकते। क्योंकि जितना ही उसे छोड़ना चाहते हो, उतना ही वह आकर्षक होता जाता है। जितना ही तुम उसे नकारते हो, उतना ही उसके प्रति आमंत्रित अनुभव करते हो।

तुम कामवासना को नकार नहीं सकते, मिटा नहीं सकते; लेकिन मिटाने के प्रयत्न में तुम उस चित्त को ही, उस सजगता और संवेदनशीलता को ही मिटा डालते हो, जो कामवासना को समझ सकती थी। इसलिए तुम्हारा यौन, तुम्हारा काम संवेदनशून्य होकर जारी रहता है, और तब तुम उसे समझ नहीं पाते।

गहरी संवेदनशीलता ही किसी चीज को समझ सकती है; उसके प्रति गहरा भाव, गहरी सहानुभूति और उसमें गहरी गति ही किसी चीज को समझ सकती है। तुम काम को तभी समझ सकते हो, यदि तुम काम के पास वैसे ही जाओ जैसे कोई कवि फूलों के पास जाता है—तभी समझ सकते हो। अगर तुम फूलों के साथ अपराध अनुभव करो, तो तुम फुलवारी से आंखें बंद किए गुजर जाओगे; तुम बड़ी जल्दबाजी में रहोगे; तुम्हें फुलवारी से जल्दी-जल्दी, किसी कदर निकल भागने की फिक्र लगी रहेगी। फिर सजग और बोधपूर्ण कैसे रह सकोगे ?

इसलिए तंत्र कहता है— तुम जो भी हो उसे स्वीकार करो। तुम अनेक बहु-आयामी ऊर्जाओं के रहस्य हो, महारहस्य हो; उसे स्वीकारो और प्रत्येक ऊर्जा के साथ गहरी संवेदना और सजगता से, प्रेम और बोध के साथ यात्रा करो। उसके साथ यात्रा करो। और तब प्रत्येक कामना अपने ही अतिक्रमण का वाहन बन जाती है। तब प्रत्येक ऊर्जा सहयोगी हो जाती है। और तब संसार ही निर्वाण हो जाता है, शरीर ही मंदिर बन जाता है—पवित्र मंदिर, पावन तीर्थ।

योग निषेध है; तंत्र विधेय। योग द्वैत की भाषा में सोचता है, इसलिए यह योग शब्द। योग का अर्थ है, दो चीजों को जोड़ना, उनका युग्म बनाना; दो चीजों के ऊपर जूआ रखना। लेकिन वहां दो चीजें हैं, वहां द्वैत है। तंत्र कहता है— द्वैत नहीं है। और अगर द्वैत है तो तुम उसे एक नहीं कर सकते। कितना भी प्रयत्न करो, दो रहेंगे ही। कितना भी जोड़ो, दो के दो रहेंगे ही। संघर्ष जारी रहेगा; द्वैत बचा रहेगा।

अगर संसार और परमात्मा दो हैं, तो वे एक में नहीं जोड़े जा सकते। और

अगर वे यथार्थ में दो नहीं हैं, दो की तरह सिर्फ भासते हैं, तो ही वे एक हो सकते हैं। अगर तुम्हारा शरीर और तुम्हारी आत्मा दो हैं तो उनको जोड़ने का उपाय नहीं है। वे दो रहेंगे ही।

तंत्र कहता है— द्वैत नहीं है; वह मात्र आभास है। इसलिए आभास को मजबूत बनाने की जरूरत क्या है ? इस आभास को मजबूत होने में सहयोग क्यों दिया जाए ? इसी क्षण इसे समाप्त करो और एक हो जाओ। और एक होने के लिए स्वीकार चाहिए, संघर्ष नहीं। स्वीकार एक करता है। संसार को स्वीकारो, शरीर को स्वीकारो; उस सब को स्वीकारो जो इसमें निहित है। अपने भीतर दूसरा केंद्र मत पैदा करो। क्योंकि तंत्र की दृष्टि में दूसरा केंद्र अहंकार के सिवाय कुछ नहीं है। याद रहे, तंत्र की नजर में वह अंहकार ही है। इसलिए अहंकार को मत खड़ा करो, सिर्फ बोध रखो कि तुम क्या हो।

और अगर लड़ोगे तो अहंकार वहां होगा ही। इसलिए ऐसा योगी खोजना मुश्किल है जो अहंकारी न हो। सच में मुश्किल है। योगी निरहंकारिता की बात किए जा सकते हैं, लेकिन वे निरहंकारी नहीं हो सकते। उनकी पद्धति ही अहंकार का सृजन करती है। और संघर्ष वह पद्धति है, प्रक्रिया है। अगर लड़ोगे तो निश्चय अहंकार पैदा करोगे। जितना तुम लड़ोगे उतना अहंकार बलवान होगा। और अगर तुम संघर्ष में जीत गए, तो तुम्हारा अहंकार परम हो जाएगा।

तंत्र कहता है— कोई संघर्ष नहीं। और तब अहंकार की संभावना नहीं है।

लेकिन अगर हम तंत्र की मानें तो बहुत समस्याएं खड़ी होंगी। क्योंकि यदि हम लड़ते नहीं तो हमारे लिए भोग ही रह जाता है। हमारे लिए संघर्ष नहीं का मतलब होता है भोग। और तब हम डर जाते हैं। जन्मों-जन्मों हम भोग में डूबे रहे और कहीं नहीं पहुंचे।

लेकिन जो हमारा भोग है, वही तंत्र का भोग नहीं है। तंत्र कहता है— भोगो, लेकिन होश के साथ। अगर तुम क्रोधित हो तो तंत्र यह नहीं कहेगा कि क्रोध मत करो। वह कहेगा कि पूरे दिल से क्रोध करो, लेकिन साथ-साथ उसके प्रति सजग भी रहो। तंत्र क्रोध के खिलाफ नहीं है। तंत्र आध्यात्मिक नींद, आध्यात्मिक मूर्च्छा के खिलाफ है। होश रखो और क्रोध करो। और तंत्र का यही गुह्य रहस्य है कि अगर तुम होशपूर्ण रहे तो क्रोध रूपांतरित हो जाता है, क्रोध करुणा बन जाता है। तो तंत्र के अनुसार क्रोध तुम्हारा शत्रु नहीं है; क्रोध बीजरूप में करुणा है। क्रोध की ऊर्जा ही करुणा बन जाती है। और अगर तुम उससे लड़ते हो, तो करुणा की संभावना नहीं रह जाती।

तो अगर तुम दमन में सफल हुए, तो मृत हो जाओगे। दमन के कारण क्रोध तो नहीं रहेगा, लेकिन उसी कारण करुणा भी जाती रहेगी। क्योंकि क्रोध ही करुणा बनता है। उसी तरह काम के दमन में अगर तुम सफल हुए—जो कि असंभव है—तो काम तो नहीं रहेगा, लेकिन उसके साथ ही प्रेम भी नहीं रहेगा। क्योंकि काम के मरने पर वह ऊर्जा ही कहां बची, जो प्रेम में विकसित होती है ! तुम कामरहित तो हो जाओगे, पर साथ ही प्रेमरहित भी हो जाओगे। और तब सारा खेल ही खतम हो गया। क्योंकि प्रेम के बिना भगवत्ता कहां है ? और प्रेम के बिना मुक्ति कहां है ?

तंत्र का कहना है कि इन्हीं ऊर्जाओं को रूपांतरित करना है। इसी बात को दूसरे ढंग से भी कहा जा सकता है। यदि तुम संसार के विरुद्ध हो तो निर्वाण संभव नहीं है; क्योंकि संसार को ही तो निर्वाण में रूपांतरित करना है। तब तुम बुनियादी शक्तियों के ही खिलाफ हो गए—उन्हीं शक्तियों के जो कि स्रोत हैं।

इसलिए तंत्र की कीमिया कहती है कि लड़ो मत; तुम्हें जो भी शक्तियां मिली हैं उनके साथ मैत्रीपूर्ण बनो। तुम उनका स्वागत करो। इस बात के लिए कृतज्ञ अनुभव करो कि तुम्हें क्रोध मिला है, कि तुम्हें कामवासना मिली है, कि तुम्हें लोभ मिला है। कृतज्ञ अनुभव करो, क्योंकि वे ही अप्रकट स्रोत हैं, उद्गम हैं। और उन्हें रूपांतरित किया जा सकता है। और काम रूपांतरित हो तो वही प्रेम बन जाता है। काम का जहर मिट जाता है; उसकी कुरूपता जाती रहती है।

बीज कुरूप है। लेकिन वही बीज जब जीवंत होता है तो अंकुर और फूल में रूपांतरित हो जाता है। और तब उसमें सौंदर्य है। बीज को मत फेंको, क्योंकि तब तुम उसके साथ फूल भी फेंक रहे हो। फूल अभी प्रकट नहीं हैं कि तुम उन्हें देख सको। वे अप्रकट हैं; लेकिन हैं। बीज का उपयोग करो कि तुम उसके फूल को प्राप्त कर सको।

इसलिए पहले स्वीकृति, संवेदनशील स्वीकृति और बोध, और तब भोग की इजाजत।

एक और बात। यह हैरानी की बात है; लेकिन तंत्र की वह गहरी से गहरी खोज है। और वह यह है कि जिस किसी चीज को भी तुम अपना दुश्मन मान लेते हो, चाहे वह लोभ हो या क्रोध हो, काम हो, कुछ भी हो, वह तुम्हारे मानने से ही दुश्मन हो जाती है। इसलिए उसे परमात्मा का वरदान मानो और उसके पास कृतज्ञ हृदय से पहुंचो। उदाहरण के लिए तंत्र ने काम-ऊर्जा के रूपांतरण

के लिए अनेक विधियां खोज निकाली हैं। संभोग में ऐसे जाओ जैसे कि तुम भगवान के मंदिर में जा रहे हो। काम-कृत्य को ऐसे लो जैसे कि वह प्रार्थना हो, ध्यान हो। उसकी पवित्रता को अनुभव करो।

यही कारण है कि खजुराहो, पुरी और कोणार्क के मंदिरों में मैथुन की मूर्तियां अंकित हैं। मंदिरों की दीवारों पर संभोग के चित्र बेतुके लगते हैं—खासकर ईसाइयत, इस्लाम और जैन धर्म की आंखों में। उनके मनों में ही यह बात नहीं अटती कि मैथुन के चित्रों से मंदिर का क्या संबंध हो सकता है ! खजुराहो के मंदिर की बाहरी दीवारों पर संभोग की, मैथुन की हर संभव मुद्रा पत्थर में अंकित है। क्यों ? मंदिर में उनका क्या स्थान है ? हमारे मनों में यह बात नहीं समा पाती। ईसाइयत एक ऐसे चर्च की कल्पना नहीं कर सकती जिसमें खजुराहो जैसे चित्र खुदे हों। असंभव !

आधुनिक हिंदू भी इस बात के लिए अपने को अपराधी अनुभव करते हैं। इसका कारण है कि आधुनिक हिंदुओं का मानस ईसाइयत के द्वारा निर्मित हुआ है। वे हिंदू-ईसाई हैं और इसीलिए वे और भी बदतर हैं। ईसाई होना तो ठीक है, लेकिन हिंदू-ईसाई होना बहुत अजीब, बहुत बेहूदा लगता है। वे अपराधी अनुभव करते हैं। एक हिंदू नेता पुरुषोत्तम दास टंडन ने तो यहां तक कहा कि इन मंदिरों को ध्वस्त कर देना चाहिए; वे हमारे नहीं हैं।

सच ही वे हमारे नहीं मालूम पड़ते। क्योंकि बहुत समय से, सदियों से तंत्र हमारे हृदयों से निर्वासित रहा है। तंत्र हमारी मुख्य धारा नहीं रहा; योग मुख्य धारा रहा। और योग खजुराहो की सोच भी नहीं सकता, और यही कारण है कि उनके नष्ट किए जाने की मांग होती है।

तंत्र कहता है— मैथुन के पास ऐसे जाओ जैसे कि पवित्र मंदिर को जा रहे हो। यही कारण है कि उसके पवित्र मंदिरों में मैथुन के चित्र अंकित हैं। उन्होंने कहा कि मैथुन में ऐसे उतरो जैसे मंदिर में प्रवेश करते हो। जब यहां मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर में मैथुन इसलिए है कि तुम्हारे मन में दोनों संबंधित हो जाएं, दोनों की संगति बैठ जाए।

और तब तुम अनुभव कर सकते हो कि संसार और निर्वाण दो विरोधी तत्त्व नहीं, वरन एक हैं। वे एक-दूसरे के शत्रु नहीं हैं। वे ध्रुवीय विपरीतताएं हैं जो एक-दूसरे की सहायता करती हैं। और इस ध्रुवीयता के कारण ही वे अस्तित्व में भी हैं। अगर यह ध्रुवीयता नष्ट हो जाए तो संसार ही नष्ट हो जाएगा।

इसलिए उस गहरी एकता को देखो जो सभी चीजों के भीतर समाई है। केवल ध्रुवीय बिंदुओं को मत देखो, उस आंतरिक धारा को भी देखो जो सबको

एक करती है।

तंत्र के लिए सब कुछ पवित्र है। स्मरण रखो कि तंत्र के लिए सब कुछ पवित्र है; कुछ भी अपवित्र नहीं है। इसे इस भांति देखने की कोशिश करो। एक अधार्मिक आदमी के लिए सब कुछ अपवित्र है; तथाकथित धार्मिक आदमी के लिए कुछ चीजें पवित्र हैं और कुछ अपवित्र; और तंत्र के लिए सब कुछ पवित्र है।

कुछ समय पूर्व एक ईसाई पादरी मेरे पास आया था। उसने कहा कि ईश्वर ने संसार को बनाया। मैंने उससे पूछा कि पाप को किसने बनाया ? उसने उत्तर दिया कि शैतान ने पाप को पैदा किया। तब मैंने पूछा, और शैतान को किसने बनाया ? और पादरी अड़चन में पड़ गया और उसने कहा, शैतान को तो ईश्वर ने ही बनाया।

अब शैतान पाप को पैदा करता है और परमात्मा शैतान को। तब असली पापी कौन है, शैतान या परमात्मा ? लेकिन द्वैतवादी धारणा सदा ऐसी ही अनर्गल बातों पर पहुंचती और पहुंचाती है।

तंत्र के लिए ईश्वर और शैतान दो नहीं हैं। तंत्र में शैतान नाम की कोई चीज ही नहीं है। तंत्र में सब कुछ भागवत है, सब कुछ पवित्र है। और यही सही दृष्टिकोण और सबसे गहरा दृष्टिकोण मालूम पड़ता है। अगर इस जगत में कोई चीज अपवित्र है तो प्रश्न उठता है कि वह कहां से आती है और वह संभव कैसे है ?

इसलिए दो ही विकल्प हैं। एक है नास्तिक का विकल्प जो कहता है कि सब कुछ अपवित्र है। यह दृष्टिकोण अपनी जगह ठीक है। नास्तिक भी अद्वैतवादी है; उसे संसार में कहीं भी पवित्रता दिखाई नहीं देती। और दूसरा विकल्प तांत्रिक का है। वह कहता है कि सब कुछ पवित्र है। वह भी अद्वैतवादी है। लेकिन इन दोनों के बीच जो तथाकथित धार्मिक लोग हैं, वे वास्तव में धार्मिक नहीं हैं। वे न धार्मिक हैं और न अधार्मिक, वे सदा द्वंद्व में जीते हैं। और उनका पूरा धर्मशास्त्र छोरों को मिलाने में संलग्न है। लेकिन वे छोर कभी नहीं मिलते।

अगर संसार में एक भी कोश, एक भी अणु अपवित्र है तो सारा संसार अपवित्र हो जाता है। क्योंकि पवित्र संसार में वह अकेला अपवित्र अणु कैसे रह सकता है ? उसे सब कुछ का, समस्त का सहारा मिला है; होने के लिए सबका, समस्त का सहारा चाहिए। और अगर अपवित्र तत्त्व पवित्र तत्त्वों से सहारा पाता है, तो दोनों में फर्क क्या रहा ? इसलिए संसार या तो समग्ररूपेण और बेशर्त पवित्र है, और या वह अपवित्र है। बीच की कोई स्थिति नहीं हो सकती।

तंत्र कहता है कि सब कुछ पवित्र है। और यही कारण है कि हम उसे समझ नहीं पाते हैं। यह सबसे गहरी अद्वैतवादी दृष्टि है—यदि इसे दृष्टि कह सकें। पर दृष्टिकोण यह नहीं है; क्योंकि कोई भी दृष्टिकोण द्वैतवादी ही होगा। तंत्र किसी के भी विरुद्ध नहीं है; इसलिए वह दृष्टिकोण नहीं है। वह तो अनुभूत एकता है, जी हुई एकता।

ये दो मार्ग हैं— योग और तंत्र। हमारे अपंग चित्त के कारण तंत्र प्रभावी नहीं हो सका। लेकिन जब कोई भीतर से स्वस्थ होता है, जब वह अराजक नहीं है, तभी तंत्र का सौंदर्य है। और वही समझ सकता है कि तंत्र क्या है। हमारे अशांत चित्त के कारण योग का आकर्षण है। अशांत चित्त का योग आसानी से आकर्षित करता है।

स्मरण रहे कि अंतिम रूप से तुम्हारा चित्त ही किसी चीज को आकर्षक या विकर्षक बनाता है। तुम ही निर्णायक घटक हो।

और ये दोनों मार्ग, योग और तंत्र के मार्ग, एक-दूसरे से अलग हैं। मैं यह नहीं कहता कि कोई योग के द्वारा नहीं पहुंच सकता है। योग के मार्ग से भी पहुंचा जा सकता है, लेकिन प्रचलित योग के मार्ग से नहीं। जो योग प्रचलित है, वह सच्चा योग नहीं है; वह तो तुम्हारे रुग्ण चित्त की व्याख्या है। परम को उपलब्ध होने के लिए योग भी एक प्रामाणिक मार्ग हो सकता है; लेकिन वह तभी संभव है जब कि तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो, जब वह रुग्ण और बीमार न हो; तब योग का रूप ही कुछ और होता है।

उदाहरण के लिए, महावीर योगमार्गी थे; लेकिन वे काम का दमन नहीं करते थे। उन्होंने काम को जाना था, उसे जीया था, उससे भलीभांति परिचय प्राप्त किया था। और तब काम उनके लिए व्यर्थ हो गया और गिर गया। बुद्ध भी योगी थे। लेकिन वे भी संसार से गुजरे थे, उससे भलीभांति परिचित थे। वे संसार से संघर्षरत नहीं थे।

तुम जिसे जान लेते हो उससे मुक्त हो जाते हो। वह फिर वैसे ही छूट जाता है जैसे वृक्ष से पुराने पत्ते झर जाते हैं। वह त्याग नहीं है; उसमें संघर्ष नहीं निहित है। बुद्ध के चेहरे को देखो; वह लड़ाके का चेहरा नहीं है। वे लड़ नहीं रहे हैं। वे कितने शांत हैं; शांति के प्रतीक हैं वे। और फिर अपने योगियों को देखो; संघर्ष उनके चेहरों पर ही अंकित है। गहरे में वहां बहुत शोरगुल है, क्षोभ है, अशांति है; मानो वे ज्वालामुखी पर बैठे हों। उनकी आंखों में झांको; उनके चेहरों में झांको और तुम्हें इसका पता चलेगा कि उन्होंने अपने समस्त रोगों को किसी गहराई में दबा रखा है। वे उनके पार नहीं गए हैं।

एक स्वस्थ संसार में, जहां प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रामाणिक जीवन जीता है, जहां कोई किसी का अनुकरण नहीं करता, वरन अपना जीवन अपने ही ढंग से जीता है, ये दोनों ही मार्ग संभव हैं। वहां वह उस गहरी संवेदनशीलता को उपलब्ध हो सकता है जो वासनाओं का अतिक्रमण करती है; वहां वह उस बिंदु पर पहुंच सकता है जहां कामनाएं व्यर्थ होकर गिर जाती हैं।

योग से भी वह संभव है। लेकिन मेरे देखे, उसी संसार में योग कारगर होगा जहां तंत्र भी कारगर होगा। हमें स्वस्थ और स्वाभाविक चित्त की जरूरत है। जिस संसार में स्वाभाविक मनुष्य होगा वहां योग और तंत्र दोनों कामनाओं के अतिक्रमण में सहयोगी होंगे।

हमारे रुग्ण और बीमार समाज में योग और तंत्र में से कोई भी हमारा मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता। यहां अगर हम योग को चुनते हैं तो इसलिए नहीं कि कामनाएं व्यर्थ हो गई हैं। नहीं, कामनाएं तो अब भी अर्थपूर्ण हैं, वे गिरी नहीं हैं; उन्हें बलपूर्वक हटाना है। और तब यदि हम योग को चुनते हैं तो उसे दमन की विधि के रूप में ही चुनते हैं। और यदि तंत्र को चुनते हैं, तो महज इस चालाकी से कि भोग में उतरने के लिए वह ओट का काम दे, छलावा बने।

इसलिए अस्वस्थ चित्त-दशा में न योग काम दे सकता है और न तंत्र ही। वे दोनों ही हमें छलावे में, धोखे में ले जाएंगे। आरंभ करने के लिए तो स्वस्थ चित्त की, विशेषकर यौन के तल पर स्वस्थ चित्त की जरूरत है। तब तुम्हें अपना मार्ग चुनने में बहुत कठिनाई नहीं है। तब तुम योग को चुन सकते हो, तब तुम तंत्र को चुन सकते हो।

बुनियादी तौर से दो प्रकार के लोग हैं, पुरुष-चित्त और स्त्री-चित्त। यह विभाजन मनोवैज्ञानिक अर्थों में है, जैविक अर्थों में नहीं। योग उनका मार्ग है जो लोग बुनियादी रूप से और मनोवैज्ञानिक अर्थों में पुरुष-चित्त हैं—आक्रामक, हिंसक, बहिर्मुखी। और तंत्र उनका मार्ग है जो बुनियादी रूप से स्त्री-चित्त हैं—ग्रहणशील, निष्क्रिय और अहिंसक। इसे ठीक से ध्यान में रख लो। तंत्र के लिए मां काली, तारा, देवी, भैरवी महत्त्वपूर्ण हैं। योग में कहीं किसी देवी का नाम नहीं मिलेगा। तंत्र में देवियां ही देवियां हैं और योग में देव ही देव। योग बहिर्गामी ऊर्जा है और तंत्र भीतर आने वाली ऊर्जा। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में कह सकते हैं कि योग बहिर्मुखी है और तंत्र अंतर्मुखी।

इसलिए व्यक्तित्व पर निर्भर है। अगर तुम्हारा व्यक्तित्व अंतर्मुखी है तो संघर्ष का मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। और यदि तुम बहिर्मुखी हो तो संघर्ष ही तुम्हारे लिए है।

लेकिन हम तो बुरी तरह उलझे हैं, भ्रांत हैं; हमारा सब कुछ गड्ड-मड्ड है। इसलिए कुछ भी हमें काम नहीं करता; उलटे सब कुछ अशांति पैदा करता है। योग तुम्हें अशांत करेगा; तंत्र भी अशांत करेगा। हर औषधि तुम्हारे लिए नई बीमारी पैदा करेगी, क्योंकि चुनने वाला रुग्ण है और उसका चुनाव रुग्ण है।

तो मैं यह नहीं कहता कि योग से तुम नहीं पहुंचोगे। मैं तो केवल इसलिए तंत्र पर जोर देता हूं, क्योंकि हम तंत्र को समझने चले हैं।

दूसरा प्रश्न :

समर्पण के मार्ग पर चलने वाला साधक अपने लिए इन एक सौ बारह विधियों में से सही विधि कैसे प्राप्त करे ?

संकल्प के मार्ग के लिए ये सारी विधियां हैं—एक सौ बारह विधियां। लेकिन समर्पण के मार्ग पर तो समर्पण ही विधि है। स्मरण रहे कि समर्पण की कोई विधि नहीं होती; सभी विधियां गैर-समर्पण के लिए हैं। क्योंकि उपाय का अर्थ ही है कि तुम अपने पर निर्भर हो। तुम कुछ कर सकते हो, उसके लिए उपाय है, और तुम वह उपाय करते हो। समर्पण के मार्ग पर तुम मिट जाते हो; फिर और क्या कर सकते हो ? तुमने तो आखिरी बात कर दी—परम उपाय—समर्पण। समर्पण के मार्ग पर समर्पण ही उपाय है।

सभी एक सौ बारह उपाय संकल्प का तकाजा करते हैं; वे तुमसे कहते हैं कि कुछ करो। तुम अपनी ऊर्जा को किसी ढंग से नियोजित करते हो, उसमें संतुलन लाते हो; अपनी अराजकता के भीतर एक ठहराव, एक धुरी, एक केंद्र पैदा करते हो। तुम कुछ करते हो। उसमें तुम्हारा प्रयत्न, तुम्हारा प्रयास महत्त्वपूर्ण है, बुनियादी है, जरूरी है।

और समर्पण के मार्ग पर एक ही चीज जरूरी है कि तुम समर्पण कर दो, समर्पित हो जाओ। हम यहां इन एक सौ बारह विधियों में गहरे जाने वाले हैं; इसलिए यहां समर्पण के संबंध में कुछ कहना अच्छा होगा। क्योंकि समर्पण की कोई विधि नहीं है। इन एक सौ बारह विधियों में समर्पण के लिए कुछ भी नहीं है।

और शिव ने समर्पण के संबंध में कुछ भी क्यों नहीं कहा ? इसीलिए क्योंकि कुछ कहा नहीं जा सकता। भैरवी, देवी स्वयं बिना किसी विधि के शिव को उपलब्ध हुईं। उन्होंने मात्र समर्पण किया। इसलिए यहां यह जान लेना ज़रूरी है कि ये प्रश्न देवी अपने लिए नहीं पूछ रही हैं। पूरी मनुष्यता के लिए ये प्रश्न

पूछे गए हैं। देवी तो शिव को उपलब्ध ही हैं। वे शिव की गोद में ही हैं—उनके आलिंगन में। वे शिव के साथ एक हो चुकी हैं; लेकिन फिर भी प्रश्न पूछती हैं। इसलिए ध्यान रहे कि देवी अपने लिए नहीं, पूरी मनुष्य-जाति के लिए प्रश्न पूछती हैं। लेकिन तब प्रश्न उठता है कि अगर देवी आत्मोपलब्ध हैं तो फिर वे शिव से क्यों पूछती हैं ? क्या वे स्वयं मनुष्यता से नहीं बोल सकती हैं ?

क्योंकि देवी स्वयं समर्पण के मार्ग से पहुंची हैं, इसलिए विधियों के विषय में वे कुछ नहीं जानतीं। वे स्वयं तो प्रेम के द्वार से पहुंची हैं। और प्रेम अपने आप में पर्याप्त है। प्रेम को कुछ अधिक की जरूरत ही नहीं है। और वे प्रेम के जरिए ज्ञानोपलब्ध हुईं, इस कारण से विधि और उपाय के बारे में उन्हें कुछ पता नहीं है। शिव से पूछने का यही कारण है।

और शिव सीधे एक सौ बारह विधियों की चर्चा करते हैं। वे भी समर्पण की बात नहीं करेंगे, क्योंकि समर्पण वास्तव में कोई विधि नहीं है। समर्पण तुम तभी करते हो जब सब विधियां व्यर्थ हो जाती हैं; जब किसी भी उपाय से पहुंचना असंभव हो जाता है। तुमने सब प्रयत्न किए, तुमने सभी द्वार खटखटाए, लेकिन कोई भी द्वार नहीं खुलता। तुमने सभी रास्ते चल लिए, लेकिन कोई भी रास्ता मंजिल पर नहीं पहुंचाता। तुमने सब कुछ किया जो कर सकते थे और अब तुम असहाय अनुभव करते हो। उसी समग्र असहायपन में समर्पण घटित होता है।

तो समर्पण के मार्ग पर कोई विधि नहीं है।

लेकिन यह समर्पण क्या है ? और वह कैसे काम करता है ? और अगर समर्पण से ही सब कुछ होता है तो फिर एक सौ बारह विधियों की क्या जरूरत है ? मन पूछ सकता है कि फिर इन विधियों में उलझने की क्या जरूरत है ? तब तो ठीक है, समर्पण से काम होता है तो समर्पण करना ही ठीक। फिर उपायों के पीछे जाने की क्या जरूरत ? और फिर कौन जानता है कि कोई खास विधि तुम्हें रास ही आएगी या रास नहीं आएगी ? उसे खोजने में ही कहीं जन्म-जन्म न लग जाएं। इसलिए समर्पण करना ही अच्छा है।

समर्पण अच्छा तो है, पर कठिन है। संसार में सबसे कठिन समर्पण है। उपाय कठिन नहीं हैं; वे आसान हैं। तुम उनका अभ्यास कर सकते हो। लेकिन समर्पण के लिए कोई अभ्यास नहीं है। तुम तो यह भी नहीं पूछ सकते कि कैसे समर्पण किया जाए। सवाल ही बेतुका है। कैसे तुम पूछ सकते हो कि समर्पण कैसे किया जाए !

क्या तुम पूछ सकते हो कि प्रेम कैसे किया जाए ? या तो प्रेम है या प्रेम

नहीं है। लेकिन तुम यह नहीं पूछ सकते कि प्रेम कैसे करें। और अगर कोई तुम्हें सिखाता है कि प्रेम कैसे करो तो निश्चित जानना कि तुम कभी भी प्रेम करने के योग्य नहीं हो सकोगे। अगर प्रेम करने की कोई विधि तुम्हारे हाथ आ गई तो तुम उस विधि से ही बंध जाओगे।

यही कारण है कि अभिनेता प्रेम नहीं कर पाते। वे इतनी विधियां, इतने उपाय जानते हैं ! और हम सभी अभिनेता हैं। अगर तुम प्रेम करने के दांव-पेंच सीख गए तो तुममें प्रेम का फूल कभी नहीं खिलेगा। क्योंकि तब तुम प्रेम का छलावा ही कर सकते हो, प्रेम का धोखा ही कर सकते हो। और धोखे के कारण तुम प्रेम के बाहर हो गए; तुम प्रेम में आविष्ट नहीं हुए। तब तुम बस सुरक्षित हो, निरापद हो। प्रेम में व्यक्ति पूरी तरह खुला होता है, असुरक्षित होता है। प्रेम खतरनाक है। तुम उसमें असुरक्षित हो जाते हो।

तो यह नहीं पूछा जा सकता कि हम कैसे प्रेम करें, या कि कैसे समर्पण करें। यह बस घटित होता है। प्रेम घटित होता है। गहरे में प्रेम और समर्पण एक ही हैं।

लेकिन आखिर यह है क्या ? और अगर हम यह नहीं जान सकते कि समर्पण कैसे किया जाता है तो कम-से-कम इतना तो जान सकते हैं कि समर्पण करने से हम बचते कैसे हैं, हम समर्पण का प्रतिरोध कैसे करते हैं। वह जाना जा सकता है और वह जानना सहयोगी है। यह कैसे हुआ कि तुमने अब तक समर्पण नहीं किया ? गैर-समर्पण की तुम्हारी युक्ति क्या है ?

यदि तुम अब तक प्रेम में नहीं पड़े हो तो असली समस्या यह नहीं है कि प्रेम कैसे किया जाए। तब असली समस्या गहरे में यह खोज करने की है कि तुम प्रेम के बिना अब तक रहे कैसे ? तुम्हारी युक्ति क्या है ? तुम्हारी विधि क्या है ? तुम्हारा सुरक्षा-कवच क्या है ? तुम प्रेम के बिना जीए कैसे ? वह समझा जा सकता है, और उसे समझना ही चाहिए।

पहली बात, हम अहंकार से जीते हैं, अहंकार में जीते हैं, और अहंकार-केंद्रित होकर जीते हैं। मैं हूं, लेकिन यह जाने बिना ही कि मैं कौन हूं। मैं ऐलान किए चलता हूं कि मैं हूं। यह 'मैं हूं' झूठा है; क्योंकि मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं। और जब तक मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं, मैं 'मैं' कैसे कह सकता हूं। यह मैं झूठा है। यह झूठा मैं ही अहंकार है। और यही हमारी सुरक्षा है।

यह अहंकार समर्पण से तुम्हारा बचाव किए चलता है। तुम समर्पण तो नहीं कर सकते, लेकिन इस सुरक्षा-व्यवस्था को जान सकते हो, उसके प्रति सचेत हो सकते हो। और अगर इसके प्रति सजग हो गए तो यह विसर्जित हो

जाता है। तब धीरे-धीरे तुम उसे बल देना बंद कर देते हो और फिर एक दिन अनुभव करते हो कि मैं नहीं हूं। और जिस क्षण अनुभव करते हो कि मैं नहीं हूं, उसी क्षण समर्पण घटित हो जाता है।

इसलिए यही जानने की कोशिश करो कि तुम हो भी ? क्या यथार्थ में तुम्हारे भीतर कोई केंद्र है जिसे तुम मेरा 'मैं' कह सको ? अपने भीतर गहरे उतरो और खोजते चलो कि यह 'मैं' कहां है ? इस अहंकार का निवास कहां है ?

रिंझाई अपने गुरु के पास पहुंचा और बोला, मुझे मुक्ति दीजिए। गुरु ने कहा, अपने को मेरे पास ले आओ। अगर तुम हो तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा, अगर तुम नहीं हो तो मैं तुम्हें कैसे मुक्त करूंगा ? तब तुम मुक्त ही हो। और फिर गुरु ने कहा, और यह मुक्ति तुम्हारी मुक्ति नहीं है। सच्चाई यह है कि यह मुक्ति तुमसे ही मुक्ति है। इसलिए जाओ और खोजो कि यह मैं कहां है ? तुम कहां हो ? और तब फिर मेरे पास आना। यही ध्यान है। जाओ और ध्यान करो।

शिष्य रिंझाई जाता है और हफ्तों, महीनों ध्यान करता है। फिर लौटकर आता है और गुरु से कहता है कि इतना पता चला है कि मैं यह शरीर नहीं हूं। गुरु ने कहा, इतना भी तुम मुक्त हुए। फिर जाओ और खोजो। रिंझाई जाता है, ध्यान करता है और पाता है कि मैं मन नहीं हूं, क्योंकि मैं मेरे विचारों को देख सकता हूं। द्रष्टा दृश्य से भिन्न है; मैं मन नहीं हूं। और गुरु के पास लौटकर यह बात बताता है। गुरु ने कहा, अब तुम तीन-चौथाई मुक्त हुए। फिर भी वापस जाओ और खोजो कि तुम क्या हो।

रिंझाई विचार करता रहा कि मैं मेरा शरीर नहीं हूं, कि मैं मेरा मन नहीं हूं, उसने पढ़ा था, अध्ययन किया था; वह बहुश्रुत था। उसने सोचा कि क्योंकि मैं शरीर और मन नहीं हूं, इसलिए मैं आत्मा हूं। लेकिन उसने ध्यान किया और पाया कि कोई आत्मा नहीं है। क्योंकि यह आत्मा भी हमारी मानसिक सूचना भर है—महज मतवाद, शब्दावली, मीमांसा। इसलिए एक दिन वह गुरु के पास दौड़ा आया और बोला कि मैं तो अब हूं ही नहीं। तब गुरु ने पूछा कि क्या अब भी मुझे सिखाना होगा कि मुक्ति का उपाय क्या है ? रिंझाई ने कहा, मैं मुक्त हूं, क्योंकि मैं नहीं हूं। अब कोई है ही नहीं जो बंधन में हो। मैं एक विशाल शून्य हूं—एक अभाव, ना-कुछ।

केवल ना-कुछ मुक्त हो सकता है। अगर तुम कुछ हो तो तुम बंधन में रहोगे। अगर तुम हो तो बंधन में हो। केवल शून्य, रिक्त स्थान मुक्त हो सकता है। तुम उसे नहीं बांध सकते हो।

रिंझाई दौड़कर आया और बोला कि मैं अब नहीं हूं, मैं कहीं भी नहीं पाया

जाता हूं। यही मुक्ति है। और पहली बार उसने अपने गुरु के पांव छुए। पहली बार ! यथार्थ में नहीं, क्योंकि वह उन्हें पूर्व में भी कई बार छू चुका था। लेकिन गुरु ने कहा कि पहली बार तुमने मेरे चरण स्पर्श किए हैं। रिंझाई ने पूछा कि आप ऐसा क्यों कहते हैं ? मैंने अनेक बार आपके पांव छुए हैं। गुरु ने कहा, लेकिन तब तुम मौजूद थे। इसलिए मौजूद रहते हुए तुम मेरे पांव कैसे छू सकते थे ? जब तक तुम हो, तुम मेरे पांव कैसे छू सकते हो ? 'मैं' किसी के पैर नहीं छू सकता। यद्यपि ऐसा दिखता है कि वह किसी के पांव स्पर्श कर रहा है, लेकिन वास्तव में वह घूमकर अपने ही पांव छूता है। इसलिए गुरु ने कहा कि तुमने पहली बार मेरे पांव छुए, क्योंकि अब तुम नहीं हो। और गुरु ने कहा कि यही अंतिम बार भी है। प्रथम और अंतिम।

जब तुम नहीं होते तब समर्पण घटित होता है। इसलिए तुम समर्पण नहीं कर सकते। और यही कारण है कि समर्पण विधि नहीं हो सकता। तुम तुम नहीं हो, समर्पण है। इसलिए तुम और समर्पण साथ-साथ नहीं जी सकते; तुम्हारे और समर्पण के बीच सह-अस्तित्व नहीं हो सकता। तुम हो या समर्पण है। इसलिए खोजो कि तुम कहां हो ? तुम कौन हो ?

इस खोज की व्याख्या अनेक ढंग से और अजीब-अजीब ढंग से की गई है। रमण महर्षि कहते थे कि पूछो कि 'मैं कौन हूं' ? उसे गलत समझा गया। उनके नजदीकी से नजदीकी शिष्य भी उसका अर्थ नहीं समझ सके। वे समझते हैं कि यह इस बात की खोज है कि सच में मैं कौन हूं। लेकिन यह बात नहीं है। यदि तुम खोजते चले गए कि मैं कौन हूं, तो तुम इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचोगे कि मैं नहीं हूं। दरअसल यह इस बात की खोज नहीं है कि मैं कौन हूं, यह तो सच में ही मिटने की खोज है।

मैंने अनेक लोगों को यह विधि दी है कि भीतर खोजो कि मैं कौन हूं। महीने, दो महीने के बाद वे आते हैं और कहते हैं कि मैं अब तक यह पता नहीं पा सका हूं कि मैं कौन हूं। प्रश्न प्रश्न ही बना है, उत्तर नहीं आया है। तब मैं उन्हें कहता हूं कि खोज जारी रखो तो किसी दिन उत्तर आ जाएगा। और वे उम्मीद करते हैं कि उत्तर आएगा। लेकिन कोई उत्तर आने को नहीं है। कोई उत्तर नहीं है, यही होगा कि प्रश्न गिर जाएगा। कोई ऐसा उत्तर नहीं आने वाला है कि तुम यह हो या वह हो। केवल प्रश्न समाप्त हो जाने वाला है। तब कोई यह पूछने को भी नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं। और तब तुम जानोगे।

जब मैं नहीं रहता तो सच्चा मैं प्रकट होता है। जब अहंकार मिट जाता है तो पहली बार तुम्हें तुम्हारे अस्तित्व से साक्षात्कार होता है। वह अस्तित्व

शून्य है। और तब तुम समर्पण कर सकते हो। तब तुम समर्पित ही हो। तुम ही अब समर्पण हो।

इसलिए समर्पण के लिए कोई विधि नहीं हो सकती है। या सिर्फ ऐसी नकारात्मक विधि हो सकती है जैसे कि यह खोजना कि मैं कौन हूं।

समर्पण में क्या होता है ? जब तुम समर्पण करते हो तो क्या घटित होता है ? वह कैसे काम करता है ? विधियां कैसे काम करती हैं ? विधियां कैसे काम करती हैं, यह हम आगे समझेंगे। हम विधियों की गहराई में उतरेंगे और जानेंगे कि वे कैसे काम करती हैं। उनके काम का तो वैज्ञानिक आधार है। लेकिन यह समर्पण कैसे काम करता है ?

जब तुम समर्पण करते हो तो तुम घाटी बन जाते हो। अभी तुम अहंकार हो तो शिखर की तरह हो। अहंकार का अर्थ ही है कि तुम सबसे ऊपर हो, तुम कुछ विशिष्ट हो। दूसरे तुम्हें वैसा मानें, न मानें, यह बात दूसरी है; लेकिन तुम तो यही माने बैठे हो कि तुम सबसे ऊपर हो, तुम शिखर हो। और तब कोई तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है।

जब कोई समर्पण करता है तो वह घाटी की तरह हो जाता है। तब वह गहराई बन जाता है, ऊंचाई नहीं। और तब सारा अस्तित्व चारों ओर से उसकी ओर बहने लग जाता है। समूचा अस्तित्व अपने को उसमें उड़ेलने लगता है। वह महज खालीपन रह जाता है—एक गहराई, एक अगाध गर्त। और समस्त अस्तित्व चारों ओर से आकर उसे भरने लगता है। तुम कह सकते हो कि परमात्मा चारों तरफ से उसमें प्रवाहित होने लगता है, रंध्र-रंध्र से उसमें प्रविष्ट होने लगता है, और उसे पूरी तरह भर देता है।

यह समर्पण, यह घाटी, यह अतल हो जाना, समर्पित होना कई-कई ढंग से अनुभव में आता है। छोटा समर्पण होता है, बड़ा समर्पण भी होता है। छोटे समर्पण में भी तुम्हें उसका अनुभव होता है। गुरु के प्रति समर्पण छोटा समर्पण है, लेकिन तुम उसे अनुभव करते हो; क्योंकि गुरु तुरंत ही तुम्हारी ओर प्रवाहित होने लगता है। अगर तुम गुरु के प्रति समर्पित होते हो तो अचानक तुम उसकी ऊर्जा को अपनी तरफ प्रवाहित होते अनुभव करते हो। और यदि तुम्हें ऐसा अनुभव नहीं हो तो समझना कि तुमने अभी छोटा समर्पण भी नहीं किया है। समर्पण ही नहीं किया है।

अनेक कथाएं हैं जो अब हमारे लिए अर्थहीन हो गई हैं, क्योंकि हम उनके घटित होने की प्रक्रिया से नहीं परिचित हैं। महाकाश्यप बुद्ध के पास आया और बुद्ध ने बस अपना हाथ उसके सिर पर धर दिया और घटना घट गई।

महाकाश्यप नाचने लगा। आनंद ने बुद्ध से पूछा कि उसे क्या हुआ है ? मैं तो आपके पास चालीस वर्षों से हूं। क्या वह पागल हो गया है ? या वह दूसरों को बेवकूफ बना रहा है ? उसे क्या हो गया है कि वह नाच रहा है ? मैंने तो हजारों बार आपके पैर छुए हैं !

निस्संदेह आनंद के लिए महाकाश्यप पागल मालूम पड़ेगा, या उसे लगेगा कि वह औरों की आंख में धूल झोंक रहा है। आनंद बुद्ध के पास चालीस साल जरूर था, लेकिन उसकी बड़ी कठिनाई थी। कठिनाई थी कि वह बुद्ध का भाई था, बड़ा भाई। चालीस वर्ष पूर्व जब आनंद बुद्ध के पास पहुंचा था तो उसने बुद्ध से पहली बात यह कही कि मैं आपका बड़ा भाई हूं और जब आप मुझे दीक्षित करेंगे तो मैं आपका शिष्य हो जाऊंगा और फिर आपसे कुछ भी मांग नहीं कर सकूंगा, इसलिए उसके पूर्व ही आप मुझे तीन वचन दे दें।

पहला कि मैं सदा आपके साथ रहूंगा। आप मुझे यह नहीं कहेंगे कि किसी दूसरी जगह जाओ, मैं आपके साथ-साथ चलूंगा। दूसरा कि मैं उसी कमरे में सोऊंगा, जिसमें आप सोएंगे। आप मुझे यह नहीं कहेंगे कि बाहर जाओ, मैं आपके साथ आपकी छाया की तरह रहूंगा। और तीसरा कि अगर मैं किसी व्यक्ति को आधी रात गए भी आपके पास लाऊंगा तो आप उसको समाधान अवश्य देंगे, आप यह नहीं कहेंगे कि यह समय ठीक नहीं है। अभी तो मैं आपका बड़ा भाई हूं, इसलिए ये तीन वचन मुझे दे दें। जब मैं शिष्य हो जाऊंगा तो मुझे ही आपका अनुगमन करना होगा, अभी आप मुझसे छोटे हैं, इसलिए वायदा कर दें।

बुद्ध ने वचन दे दिए। और वही आनंद की समस्या भी। आनंद बुद्ध के साथ चालीस वर्षों तक रहा, लेकिन वह समर्पित नहीं हो सका। क्योंकि यह समर्पण का भाव नहीं है। आनंद ने अनेक बार बुद्ध से पूछा कि मैं कब ज्ञान को उपलब्ध होऊंगा ? और बुद्ध ने कहा कि जब तक मैं नहीं मरूंगा, तुम उपलब्ध नहीं हो सकोगे। और आनंद बुद्ध की मृत्यु के बाद ही ज्ञानोपलब्ध हुआ।

और इस महाकाश्यप को अचानक क्या हो गया था ? और क्या बुद्ध ने उसके प्रति पक्षपात किया था ? नहीं, उन्होंने पक्षपात नहीं किया। बुद्ध तो बह रहे हैं, सतत प्रवाहमान हैं। लेकिन उन्हें पाने के लिए घाटी बनना होगा, गर्भ बनना होगा। अगर तुम उनसे ऊपर रहे तो उन्हें कैसे पा सकोगे ? वह प्रवाहमान ऊर्जा तुम तक नहीं आ पाएगी, तुम उसे चूक जाओगे। इसलिए झुक जाओ। गुरु के प्रति एक छोटे से समर्पण में भी ऊर्जा शिष्य की ओर बहने लगती है। अचानक और तुरंत तुम एक महाशक्ति का वाहन बन जाते हो।

ऐसी हजारों कहानियां हैं कि स्पर्श मात्र से, दृष्टिपात भर से लोग आत्मोपलब्ध हो गए। वे कहानियां हमें बुद्धिगम्य नहीं मालूम होतीं। यह कैसे संभव है ? संभव है। तुम्हारी आंख में गुरु झांक भी दे तो तुम समग्ररूपेण बदल जाओगे। लेकिन तब, जब तुम्हारी आंखें बिलकुल खाली हों, घाटी सदृश हों। अगर गुरु की दृष्टि को तुम पी गए तो तुम तुरंत बदल जाओगे।

ये छोटे-मोटे समर्पण हैं जो पूरी तरह समर्पित होने के पहले घटित होते हैं। और ये छोटे समर्पण ही तुम्हें पूर्ण समर्पण के लिए तैयार करते हैं। एक बार तुमने जान लिया कि समर्पण के जरिए कुछ अज्ञात, कुछ अनपेक्षित, कुछ अविश्वसनीय, कुछ स्वप्नातीत घटित होता है तो तुम्हें महासमर्पण के लिए तैयार होने में कठिनाई नहीं होती। और गुरु वही करता है, तुम्हें छोटे-छोटे समर्पण करने में मदद करता है ताकि तुम समर्पण, पूर्ण समर्पण के लिए साहस बटोर सको।

और आखिरी प्रश्न :

यह जानने के अचूक संकेत क्या हैं कि जिस खास विधि का प्रयोग कर रहे हैं उससे परम को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

कुछ सूचक संकेत हैं। एक कि तुम अपने भीतर एक भिन्न तरह का तादात्म्य अनुभव करते हो। तुम वही नहीं रह जाते हो जो थे। यदि वह विधि तुम्हें रास आ गई तो तुरंत तुम दूसरे आदमी हो जाते हो। अगर पति हो या पत्नी हो तो तुम वही पति या पत्नी नहीं रह जाते जो पहले थे। अगर तुम दुकानदार हो तो वही पुराने दुकानदार नहीं रह जाते। यदि विधि तुम्हारे अनुकूल पड़ जाए तो तुम जो कुछ भी हो उससे भिन्न हो जाते हो। वह पहला संकेत है।

इसलिए अगर तुम अपने बारे में कुछ अजीब अनुभव करो तो समझना कि तुम्हें कुछ घटित हो रहा है। और अगर ज्यों के त्यों रहे, कुछ अजूबापन अनुभव में नहीं आया तो समझना कि कुछ नहीं हुआ। कोई विधि तुम्हारे योग्य है या नहीं, यह जानने का यह पहला चिह्न है। अगर योग्य होगी तो तुम तुरंत दूसरे व्यक्ति में बदल जाओगे। अचानक कुछ होता है कि तुम जगत को दूसरी तरह से देखने लगते हो। आंखें तो वही रहती हैं, लेकिन उनके पीछे से देखने वाला बदल जाता है।

दूसरा संकेत है कि तनाव और द्वंद्व पैदा करने वाली चीजों का लोप होने लगता है। ऐसा नहीं है कि वर्षों की साधना के बाद द्वंद्व, चिंता और तनाव दूर होंगे। नहीं, यदि विधि रास आ गई तो वे जल्दी ही दूर होने लगते हैं। तुम अनुभव

करोगे कि तुममें एक जीवंतता आ रही है और तुम निर्भार हो रहे हो। तुम पाओगे कि गुरुत्वाकर्षण का नियम विपरीत ढंग से काम करने लगा है। अब तुम्हें पृथ्वी अपनी ओर नीचे को नहीं खींचती बल्कि आकाश तुम्हें ऊपर को उठाने लगा है।

जब एक हवाई जहाज जमीन के ऊपर उठता है तो तुम कैसा अनुभव करते हो ? सब कुछ विचलित हो जाता है, अचानक झटका लगता है और गुरुत्व का नियम व्यर्थ हो जाता है। अब धरती तुम्हें नीचे की ओर नहीं खींचती, तुम गुरुत्व से दूर हट रहे हो। वैसा ही झटका तब लगता है जब तक ध्यान की विधि रास आ जाती है। अचानक ऊपर उठने लगते हो। अचानक तुम्हें लगता है कि पृथ्वी व्यर्थ हो गई है, उसमें नीचे की ओर खींचने की शक्ति नहीं रही। वह अब तुम्हें नीचे नहीं खींचती, तुम ऊपर की ओर गति कर रहे हो।

धर्म की शब्दावली में इसे ही प्रसाद कहते हैं। दो शक्तियां हैं, एक गुरुत्व और दूसरी प्रसाद। गुरुत्व का अर्थ है कि तुम नीचे उतारे जा रहे हो, और प्रसाद का अर्थ है कि तुम ऊपर उठाए जा रहे हो। यही कारण है कि ध्यान में कई लोगों को अचानक लगता है कि उनका वजन नहीं रहा, कई लोगों को भीतर से लगता है कि उन्होंने पृथ्वी का संस्पर्श खो दिया। अनेक लोगों ने विधि के रास आने पर मुझे कहा है, आश्चर्य है कि आंख मूंदते ही हमें लगता है कि हम जमीन से ऊपर उठ गए हैं ! एक फीट, दो फीट, यहां तक कि चार फीट ऊपर उठ गए हैं। और आंख खोलते ही हम जमीन पर ही होते हैं, जमीन से ऊपर नहीं।

बात यह है कि शरीर तो जमीन पर ही रहता है, लेकिन तुम ऊपर उठ जाते हो। यह आकाशगामिता दरअसल ऊपर का आकर्षण है। विधि काम कर गई तो तुम ऊपर की ओर खींच लिए जाते हो। विधि की सफलता इसमें है कि वह तुम्हें ऊपर से आरोहण के लिए उपलब्ध कर दे। विधि का काम यह है कि वह तुम्हें उस शक्ति के लिए उपलब्ध कर दे जो ऊपर को उठाती है। इसलिए विधि के अनुकूल होते ही तुम जानते हो कि तुम भार-शून्य हो गए।

और तीसरा संकेत कि तुम जो भी करोगे, चाहे वह कितना ही अदना-सा काम क्यों न हो, वह भिन्न ढंग से करोगे। तुम भिन्न ढंग से चलोगे, भिन्न ढंग से बैठोगे, भिन्न ढंग से भोजन करोगे। हर बात भिन्न होगी। और यह भिन्नता तुम सब जगह अनुभव करोगे।

कभी-कभी तो भिन्नता का यह अजूबा अनुभव भय पैदा करता है। तब आदमी

चाहता है कि वह वापस लौट जाए और वही हो रहे जो पहले था। क्योंकि पुराने का वह बिलकुल आदी था। वह परिचित दुनिया, दिनचर्या की दुनिया थी। यद्यपि ऊबभरी थी तो भी उसमें तुम्हें दक्षता हासिल थी। अब तुम सर्वत्र एक अंतराल पाओगे। तुम्हें लगेगा कि तुम्हारी दक्षता नष्ट हो गई, तुम्हारी उपयोगिता घट गई। तुम्हें लगेगा कि सर्वत्र तुम एक अजनबी हो—बाहरी आदमी।

और इस अवस्था से गुजरना ही पड़ेगा। उसके बाद तो फिर वह भी रास आ जाएगी। तुम बदले हो, संसार नहीं बदला है। इसलिए संसार के साथ अब तुम्हारा तालमेल नहीं बैठेगा।

इसलिए इस तीसरे संकेत को याद रखो कि जब विधि तुम्हें जम जाएगी तब संसार के साथ तुम्हारा तालमेल टूट जाएगा। तुम उसके योग्य नहीं रहे। हर जगह कुछ चीजें ढीली होंगी, कुछ पुर्जे गायब होंगे। सर्वत्र तुम्हें लगेगा कि भूकंप हो गया है। सच तो यह है कि सब चीजें वही की वही हैं, केवल तुम दूसरे हो गए हो। लेकिन एक दूसरे तल पर, ऊंचे तल पर तुम लयबद्ध होओगे।

जब एक बच्चा बड़ा और प्रौढ़ होता है तो उसे ऐसा ही उपद्रव अनुभव में आता है। चौदह या पंद्रह की उम्र में हर बच्चे को महसूस होता है कि वह अजनबी है। क्योंकि अब उसमें एक नई शक्ति अवतरित हुई है—काम-शक्ति। अभी तक वह शक्ति नहीं थी, या थी भी तो छिपी थी। अब पहली बार एक नए ढंग की शक्ति के लिए वह उपलब्ध हुआ है।

यही कारण है कि जब लड़की-लड़के काम के तल पर प्रौढ़ होते हैं, तो वे अपने में कुछ अजीब और बेढंगा अुभव करते हैं। अब वे कहीं के भी नहीं मालूम होते। वे अब बच्चे तो रहे नहीं और अभी वे पूरे मनुष्य भी नहीं हुए हैं; दोनों के बीच में हैं। और इसलिए वे कहीं भी जम नहीं पाते। छोटे बच्चों के बीच खेलते हुए सयाने मालूम होते हैं और सयानों के बीच बच्चे ही रहते हैं। वे कहीं जम नहीं पाते।

वही बात तब घटित होती है जब तुम्हारे साथ विधि का तालमेल बैठ जाता है। तब एक ऐसा ऊर्जा-स्रोत उपलब्ध होता है जो काम-शक्ति से बहुत बड़ा है। तब तुम फिर एक संक्रांति-काल में होते हो। अब तुम दुनियावी लोगों की दुनिया के लायक नहीं रहे, क्योंकि बच्चे नहीं रहे। और तुम संतों की दुनिया में भी प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि पूरा आदमी होना अभी बाकी है। और बीच की स्थिति में आदमी बेढंगा अनुभव करता है।

जब कोई विधि सटीक बैठेगी तब ये तीन बातें घटित होंगी। लेकिन तुमने

मुझसे यह अपेक्षा नहीं की होगी कि मैं ये बातें कहूंगा। तुम तो सोचते होगे कि मैं कहूंगा कि तुम ज्यादा मौन हो जाओगे, ज्यादा शांत हो जाओगे। और मैं उलटी बातें कह रहा हूं कि तुम उपद्रव में पड़ोगे। जब विधि अनुकूल आएगी तब तुम अधिक शांत नहीं, अधिक उपद्रव में पड़ोगे। शांति तो बाद में आएगी। और अगर शांति उपद्रव से पहले आ जाए तो समझना कि विधि विधि नहीं है। यह तो पुराने ढांचे में ही फिर से समायोजित होना है।

यही कारण है कि अधिक लोग ध्यान की बजाय प्रार्थना पसंद करते हैं। प्रार्थना तुम्हें सांत्वना देती है; वह तुम्हारे संसार के साथ तुम्हें समायोजित कर देती है। अतीत में प्रार्थना वही काम करती थी, जो आज मनोचिकित्सक कर रहे हैं। अगर तुम अशांत हो, तो वे तुम्हारी अशांति को कम करके तुम्हें तुम्हारे ढांचे में, परिवार में, समाज में फिर से समाहित कर देंगे। दो-दो साल, तीन-तीन साल तक मनोचिकित्सक के पास जाकर तुम बेहतर तो नहीं होओगे, ज्यादा समायोजित भर होओगे। ठीक वही काम पुरोहित भी करते हैं, वे तुम्हें अधिक समायोजित बनाते हैं।

तुम्हारा बच्चा मर गया है। तुम परेशान हो और पुरोहित के पास पहुंचते हो। पुरोहित कहता है, परेशान मत होओ। जिन बच्चों को परमात्मा प्यार करता है, उन्हें वह पहले ही बुला लेता है। और यह सुनकर तुम संतोष कर लेते हो; सोचते हो कि बच्चा बुला लिया गया, परमात्मा उसे अधिक प्यार करता था। या पुरोहित दूसरी बात कहता है। वह कहता है कि चिंता मत करो, आत्मा तो कभी नहीं मरती है। तुम्हारा बच्चा स्वर्ग में है।

कुछ ही दिन हुए एक स्त्री मेरे पास आई थी। उसके पति का देहांत हो गया; वह बहुत दुखी थी। उसने मुझसे कहा, केवल यही बता दें कि किसी अच्छे स्थान पर उनका पुनर्जन्म हो गया और फिर सब ठीक रहेगा। मुझे इतना निश्चय हो जाए कि वे नरक नहीं गए हैं या वे पशु नहीं हुए हैं कि वे स्वर्ग में हैं या देवयोनि में हैं तो कोई चिंता नहीं रहेगी। मैं सब बर्दाश्त कर लूंगी।

कोई पुरोहित होता तो कहता, ठीक, तुम्हारा पति सातवें स्वर्ग में देवता होकर पैदा हुआ है। और वह बहुत प्रसन्न है और वह तुम्हारा इंतजार कर रहा है।

प्रार्थना तुम्हें उसी ढांचे में समायोजित करती है। तुम बेहतर अनुभव करते हो।

ध्यान विज्ञान है। वह तुम्हें समायोजन में मदद नहीं देगा। वह तुम्हें तुम्हारे रूपांतरण में जरूर सहयोग करेगा। यही कारण है कि मैं कहता हूं कि पहले ये तीन लक्षण, तीन संकेत प्रकट होंगे। शांति भी आएगी, लेकिन किसी समायोजन

की तरह नहीं। शांति आएगी एक आंतरिक खिलावट की तरह। वह शांति समाज और परिवार, संसार और व्यवसाय के साथ एक समायोजन नहीं होगी। वह शांति पूरे ब्रह्मांड के साथ एक, लयबद्धता होगी। तब तुम्हारे और समग्रता के बीच एक गहरी लयबद्धता पैदा होगी। तब शांति होगी—पर वह बाद में आएगी। पहले तो तुम उपद्रव में पड़ोगे, क्योंकि तुम पागल हो।

यदि विधि ठीक है तो वह तुम्हें उस सबका बोध करा देगी जो तुम हो। तुम्हारी अराजकता, तुम्हारा मन, तुम्हारा पागलपन, सब प्रकाश में आ जाएगा। अभी तुम एक अंधेरा भरा घालमेल हो, उपद्रव हो। जब विधि काम करेगी तो अचानक प्रकाश हो जाएगा और सब घालमेल स्पष्ट होने लगेगा। पहली बार तुम्हें अपना ठीक वैसा साक्षात्कार होगा जैसे तुम हो।

तुम तो चाहोगे कि रोशनी गुल करके तुम फिर से सो जाओ—वह स्थिति डरावनी है। और यही वह बिंदु है जब गुरु सहायक होता है। वह कहेगा—डरो मत, यह तो आरंभ भर है। और इससे भागो भी मत। पहले तो यह प्रकाश तुम्हें तुम्हारा सही रूप दिखा देगा—वह यथार्थ जो तुम हो। और फिर जैसे-जैसे तुम गति करोगे, वह तुम्हें उसमें रूपांतरित करेगा जो तुम हो सकते हो।

आज इतना ही।

3

श्वास : शरीर और आत्मा के बीच सेतु

सूत्र

शिव कहते हैं :

1. *हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व श्रेयस है, कल्याण है।*
2. *जब श्वास नीचे से ऊपर की ओर मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की ओर मुड़ती है, इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।*
3. *या जब कभी अंतःश्वास और बहिर्श्वास एक-दूसरे में विलीन होती हैं, उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करो।*
4. *या जब श्वास पूरी तरह बाहर गई है और स्वतः ठहरी है, या पूरी तरह भीतर आई है और ठहरी है, ऐसे जागतिक विराम के क्षण में व्यक्ति का क्षुद्र अहंकार विसर्जित हो जाता है। केवल अशुद्ध के लिए यह कठिन है।*

सत्य सदा यहीं है। वह है; वही है। किसी भविष्य में उसे उपलब्ध नहीं करना है। तुम यहीं और अभी सत्य हो। इसलिए सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे पैदा करना है, या जिसके लिए उपाय करना है, या जिसे खोजना है। इस बात को पूरी स्पष्टता के साथ समझ लो, और तभी इन विधियों को समझने और प्रयोग करने में आसानी होगी।

मन कामना का यंत्र है। मन सदा चाह में है, सदा कुछ चाह रहा है, सदा कुछ मांग रहा है। और उसका विषय, उसका उद्देश्य सदा भविष्य में होता है। मन को वर्तमान से कुछ लेना-देना नहीं है। वर्तमान क्षण में मन गति नहीं कर

सकता; इस क्षण में गति के लिए स्थान नहीं है, गति के लिए मन को भविष्य चाहिए। वह या तो अतीत में गति कर सकता है, या भविष्य में। वर्तमान में वह गतिमान नहीं हो सकता; स्थान ही नहीं है।

सत्य वर्तमान में है और मन सदा भविष्य या अतीत में होता है। इसलिए मन और सत्य के बीच मिलन नहीं हो सकता।

जब मन कोई सांसारिक विषय खोजता है तो कठिनाई नहीं है। तब समस्या लाइलाज नहीं है; वह हल हो सकती है। लेकिन जब वही मन सत्य को खोजने चलता है तो प्रयत्न असंगत हो जाता है। क्योंकि सत्य यहीं और अभी है। और मन सदा वहां और भविष्य में होता है। मिलन संभव नहीं है। इसलिए पहली बात समझ लो—तुम सत्य को नहीं खोज सकते। तुम उसे पा सकते हो, लेकिन खोज नहीं सकते। यह खोज ही बाधा है।

जिस क्षण तुम खोजना शुरू करते हो उसी क्षण तुम वर्तमान से, अपने से दूर निकल जाते हो। क्योंकि तुम तो सदा वर्तमान में हो। खोजने वाला सदा वर्तमान में है और खोज सदा भविष्य में है। इसलिए खोजी और खोज में मिलन नहीं हो सकता, चाहे तुम कुछ भी खोजो। लाओत्से कहता है, खोजो और खो दोगे। खोजो मत और पा लोगे। मत खोजो और पा लो।

शिव की ये सारी विधियां मन को भविष्य या अतीत से वर्तमान की तरफ मोड़ने के लिए हैं। तुम जिसे खोज रहे थे वह उपलब्ध ही है। वह है ही, वही है। सिर्फ मन को खोज से अखोज की तरफ, चाह से अचाह की तरफ मोड़ना है।

यह कठिन है। इसके बारे में बुद्धि से सोचो तो यह बहुत कठिन है। मन को चाह से अचाह की ओर कैसे मोड़ा जाए ? क्योंकि तब मन अखोज को ही खोज का, चाह को ही अचाह का विषय बना लेता है। तब मन कहता है—मुझे खोजना नहीं चाहिए। तब मन कहता है—अब अचाह मेरा उद्देश्य है। तब मन कहता है—अब मैं अकाम की अवस्था की कामना करता हूं। चाह फिर प्रवेश कर गई, पिछले दरवाजे से कामना फिर वापस आ गई।

ऐसे लोग हैं जो सांसारिक विषयों की कामना करते हैं और ऐसे लोग भी हैं जो गैर-सांसारिक विषयों की कामना करते हैं। लेकिन सब विषय सांसारिक हैं; क्योंकि कामना ही संसार है, चाह ही संसार है। इसलिए तुम किसी गैर-सांसारिक या अलौकिक की कामना नहीं कर सकते। तुम्हारे चाहने से ही वह संसार हो जाता है।

अगर तुम परमात्मा को चाह रहे हो तो परमात्मा भी तुम्हारे संसार का हिस्सा हो गया। अगर तुम मोक्ष या निर्वाण खोजते हो तो खोजने से ही तुम्हारा मोक्ष

संसार हो गया। तुम्हारा मोक्ष तब संसार का अतिक्रमण नहीं करता है। क्योंकि खोजना ही संसार है, कामना ही संसार है। इसलिए तुम निर्वाण की कामना नहीं कर सकते, अचाह की चाहना नहीं कर सकते। और अगर तुम बुद्धि से इसे समझने चलो तो यह एक पहेली बन जाती है।

शिव इसके संबंध में कुछ नहीं कहते हैं। वे झटपट विधियों की बात शुरू कर देते हैं। विधियां बौद्धिक नहीं हैं। वे देवी से यह नहीं कहते कि सत्य यहीं है; उसे खोजो मत और उसे पा लोगी। वे तुरंत विधि बताने लगते हैं।

और ये विधियां गैर-बौद्धिक हैं। उन्हें प्रयोग करो और मन मुड़ जाता है, पलट जाता है। यह मुड़ना उसका मात्र परिणाम है, उप-उत्पत्ति है। वह कोई विषय नहीं है, महज उप-उत्पत्ति है। अगर तुम किसी विधि को प्रयोग में लाए तो तुम्हारा मन भविष्य या अतीत की यात्रा से मुड़ जाएगा और तुम अचानक अपने को वर्तमान में पाओगे।

यही कारण है कि बुद्ध ने विधि दी है, लाओत्से ने विधि दी है, कृष्ण ने विधि दी है। लेकिन उन्होंने हमेशा ही अपनी विधियों को बौद्धिक सिद्धांतों से सजाकर पेश किया है। केवल शिव का ढंग दूसरा है। वे झटपट और सीधे विधि ही बताते हैं; उसके साथ कोई बौद्धिक समझ या बौद्धिक भूमिका नहीं बताते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि मनुष्य का मन चालाक है, सर्वाधिक चालाक है। वह किसी भी चीज को समस्या में बदल सकता है। अचाह की समस्या बन जाएगी।

लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं कि कैसे अचाह हो जाऊं ? वे अचाह की चाहना कर रहे हैं। किसी ने उनसे कहा है, या उन्होंने कहीं सुना है, या कोई आध्यात्मिक गप सुनी है कि अगर तुम इच्छा न करो तो तुम आनंद को प्राप्त हो जाओगे, इच्छा न करो तो मुक्त हो जाओगे, इच्छा न करो तो दुख नहीं रहेगा। अब उनका मन उस अवस्था को पाने के लिए लालायित हो उठता है जिसमें दुख नहीं है और वे पूछते हैं कि कैसे इच्छा न करें।

उनका मन चालबाजी कर रहा है। वे अब भी इच्छा कर रहे हैं, चाह कर रहे हैं। अब सिर्फ इच्छा का विषय बदल गया है। पहले वे धन चाहते थे, यश चाहते थे, पद-प्रतिष्ठा चाहते थे। अब वे अचाह को चाह रहे हैं। केवल विषय बदल गया है, वे तो वही हैं, उनका चाहना भी वही है। लेकिन अब वही चाह अधिक कपटपूर्ण हो गई है।

यही कारण है कि शिव किसी भूमिका के बिना ही शुरू करते हैं, वे तुरंत विधियों की बात शुरू कर देते हैं। वे विधियां, अगर उनका प्रयोग किया जाए,

मन को मोड़ देती हैं। वह वर्तमान में आ जाता है। और जब मन वर्तमान में होता है तो वह ठहर जाता है। वर्तमान में तुम मन नहीं हो सकते। यह असंभव है।

इस क्षण भी अगर तुम यहीं और अभी हो तो तुम मन कैसे रह सकते हो ? विचार विसर्जित हो जाते हैं, क्योंकि वे गति नहीं कर सकते। वर्तमान में गति के लिए स्थान नहीं है। वर्तमान में तुम सोच नहीं सकते। अगर तुम इसी क्षण में हो तो गति कैसे करोगे ? मन ठहर जाता है और तुम अ-मन को, मन-शून्यता को उपलब्ध हो जाते हो।

इसलिए असली बात यह है कि अभी और यहीं कैसे हुआ जाए। तुम चेष्टा कर सकते हो, लेकिन चेष्टा व्यर्थ होगी। क्योंकि अगर तुम वर्तमान में होने का निश्चय करते हो तो वह निश्चय ही भविष्य में खिसक जाना हुआ। जब तुम पूछते हो कि वर्तमान में कैसे हुआ जाए तो फिर तुम भविष्य के लिए ही पूछ रहे हो। यह क्षण तो इस जांच-पड़ताल में बीत रहा है कि कैसे वर्तमान में, अभी और यहीं हुआ जाए। वर्तमान क्षण पूछताछ में जा रहा है और तुम्हारा मन भविष्य के लिए सपने बुन रहा है कि किसी दिन तुम उस अवस्था में होओगे जहां कोई गति नहीं होगी, कोई चाह नहीं होगी और तब आनंद ही आनंद होगा।

तो वर्तमान में कैसे हुआ जाए ? शिव इसके संबंध में कुछ नहीं कहते हैं। वे सिर्फ विधि देते हैं। इसे तुम करते हो, और अपने को अभी और यहीं पाते हो। और तुम्हारा अभी और यहीं होना सत्य है, तुम्हारा अभी और यहीं होना स्वतंत्रता है, तुम्हारा अभी और यहीं होना निर्वाण है।

आरंभ की नौ विधियां श्वास-क्रिया से संबंध रखती हैं। इसलिए पहले हम श्वास-क्रिया के संबंध में थोड़ा समझ लें और फिर विधियों में प्रवेश करेंगे।

हम जन्म के क्षण से मृत्यु के क्षण तक निरंतर श्वास लेते रहते हैं। इन दो बिंदुओं के बीच सब कुछ बदल जाता है, सब चीज बदल जाती है, कुछ भी बदले बिना नहीं रहता, लेकिन जन्म और मृत्यु के बीच श्वास-क्रिया अचल रहती है। बच्चा जवान होगा, जवान बूढ़ा होगा। वह बीमार होगा, उसका शरीर रुग्ण और कुरूप होगा, सब कुछ बदल जाएगा। वह सुखी होगा, दुखी होगा, पीड़ा में होगा, सब कुछ बदलता रहेगा। लेकिन इन दो बिंदुओं के बीच आदमी श्वास भर सतत लेता रहेगा, चाहे और कुछ भी हो। तुम सुखी हो कि दुखी, जवान हो कि बूढ़े, सफल कि असफल—जो भी हो, वह अप्रासंगिक है—लेकिन एक बात निश्चित है कि इन दो बिंदुओं के बीच तुम्हें श्वास लेते ही रहना है।

श्वास-क्रिया एक सतत प्रवाह है, उसमें अंतराल संभव नहीं है। अगर तुम एक क्षण के लिए भी श्वास लेना भूल जाओ तो तुम समाप्त हो जाओगे। यही कारण है कि श्वास लेने का जिम्मा तुम्हारा नहीं है, नहीं तो मुश्किल हो जाए। कोई एक क्षण को भी श्वास लेना भूल जाए तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता।

इसलिए यथार्थ में तुम श्वास नहीं लेते हो, क्योंकि उसमें तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम गहरी नींद में हो और श्वास चल रही है। तुम गहरी मूर्च्छा में हो और श्वास चल रही है। तुम जरूरी नहीं हो। तुम्हारे बावजूद श्वास-क्रिया जारी रहती है।

श्वसन तुम्हारे व्यक्तित्व का एक अचल तत्त्व है, यह पहली बात हुई। और दूसरी बात कि वह जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक और आधारभूत है। श्वास के बिना तुम जीवित नहीं रह सकते। इसलिए श्वास और जीवन पर्यायवाची हो गए हैं। श्वास-क्रिया जीवन की यांत्रिकी है और जीवन गहरे रूप में उससे जुड़ा है। इसलिए भारत में उसे प्राण कहते हैं। श्वास और जीवन दोनों के लिए हमने यह शब्द प्राण रखा है। प्राण का अर्थ है, जीवन-शक्ति, जीवंतता। तुम्हारा जीवन तुम्हारी श्वास है।

और तीसरी बात कि श्वास तुम्हारे और शरीर के बीच सेतु है। सतत श्वास तुम्हें तुम्हारे शरीर से जोड़ रही है, संबंधित कर रही है। और श्वास न सिर्फ तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है, वह तुम्हारे और विश्व के बीच भी सेतु है। शरीर वह विश्व है जो तुम्हारे पास आया है, जो तुम्हारे पास है। तुम्हारा शरीर विश्व का ही अंग है। शरीर की हरेक चीज, हरेक कण, हरेक कोश विश्व का अंश है। यह विश्व के साथ निकटतम संबंध है। और श्वास सेतु है। अगर सेतु टूट जाए तो तुम शरीर में नहीं रह सकोगे; तुम किसी अज्ञात आयाम में चले जाओगे। तब तुम समय और स्थान में नहीं पाए जाओगे। इसलिए श्वास तुम्हारे और देश-काल के बीच का सेतु है।

श्वास इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। यही कारण है कि आरंभ की नौ विधियां श्वास से संबंधित हैं। अगर तुम श्वास के साथ कुछ कर सको तो तुम अचानक वर्तमान में लौट आओगे। अगर तुम श्वास के साथ कुछ कर सको तो तुम जीवन-स्रोत को उपलब्ध हो जाओगे। अगर तुम श्वास के साथ कुछ कर सको तो तुम समय और स्थान का अतिक्रमण कर जाओगे। अगर तुम श्वास के साथ कुछ कर सको तो तुम संसार में भी होओगे और उसके पार भी।

श्वास के दो बिंदु हैं, दो छोर हैं। एक छोर है, जहां पर वह शरीर और विश्व को छूती है और दूसरा छोर है, जहां वह तुम्हें और विश्वातीत को छूती है। और हम श्वास के एक ही हिस्से से परिचित हैं। जब वह विश्व में, शरीर में गति करती है, तभी हम उसे जानते हैं। लेकिन वह सदा ही शरीर से अशरीर में और अशरीर से शरीर में संक्रमण कर रही है। इस दूसरे बिंदु को हम नहीं जानते हैं। और अगर तुम दूसरे बिंदु को, जो सेतु का दूसरा ध्रुव है, जान जाओ—तुम एकाएक रूपांतरित होकर एक दूसरे ही आयाम में प्रवेश कर जाओगे।

लेकिन याद रखो, शिव जो कहने जा रहे हैं, वह योग नहीं है; वह तंत्र है। योग भी श्वास पर काम करता है, लेकिन योग और तंत्र के काम में बुनियादी फर्क है। योग श्वास-क्रिया को व्यवस्थित करने की चेष्टा करता है। अगर तुम अपनी श्वास को व्यवस्था दो तो तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाएगा। अगर तुम श्वास-क्रिया को व्यवस्थित करो, उसके रहस्यों को समझो, तो तुम्हें स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन मिलेगा। तुम ज्यादा बली, ज्यादा ओजस्वी, ज्यादा जीवंत, ज्यादा युवा और ज्यादा ताजा हो जाओगे।

लेकिन तंत्र को उससे कुछ लेना-देना नहीं है। तंत्र श्वास की व्यवस्था की चिंता नहीं लेता, भीतर की ओर मुड़ने के लिए वह श्वास-क्रिया का उपयोग भर करता है। तंत्र में साधक को किसी विशेष ढंग की श्वास का अभ्यास नहीं करना है, कोई विशेष प्राणायाम नहीं साधना है, प्राण को लयबद्ध नहीं बनाना है; बस, उसके कुछ विशेष बिंदुओं के प्रति बोधपूर्ण रहना है।

श्वास-प्रश्वास के कुछ बिंदु हैं जिन्हें हम नहीं जानते। हम सदा श्वास लेते रहे हैं, लेते रहेंगे; हम श्वास के साथ जन्मते हैं, श्वास के साथ मरते हैं। लेकिन हमें उसके कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं का बोध नहीं है। और यह हैरानी की बात है। मनुष्य अंतरिक्ष की गहराइयों में उतर रहा है, खोज कर रहा है। वह चांद पर पहुंच रहा है, वह पृथ्वी से निकलकर सुदूर अंतरिक्ष में पहुंचने की चेष्टा कर रहा है। लेकिन वह अपने जीवन के इस निकटतम अंग को नहीं समझ सका है। श्वास के कुछ बिंदु हैं जिन्हें तुमने कभी देखा ही नहीं। वे बिंदु द्वार हैं, तुम्हारे निकटतम द्वार, जिनसे होकर तुम एक दूसरे ही संसार में, एक दूसरे ही अस्तित्व में, एक दूसरी ही चेतना में प्रवेश कर सकते हो।

लेकिन वे बिंदु बहुत सूक्ष्म हैं। चांद का निरीक्षण बहुत कठिन नहीं है। चांद पर पहुंचना भी बहुत कठिन नहीं है। वह एक स्थूल यात्रा है। यंत्रीकरण हो, प्राविधि हो, ढेर-सी सूचनाएं हों, और तुम चांद पर पहुंच जाओगे। श्वास-क्रिया

तुम्हारी निकटतम चीज है। लेकिन जो चीज जितनी ही निकट होती है उसे देखना उतना ही कठिन हो जाता है। जो चीज जितनी निकट हो वह उतनी ही कठिन मालूम देती है, जो चीज जितनी ही प्रकट हो उतनी ही कठिन लगती है। श्वास तुम्हारे इतनी करीब है कि तुम्हारे और उसके बीच स्थान ही नहीं रहता। या इतना अल्प स्थान है कि उसे देखने के लिए बहुत सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। तभी तुम उन बिंदुओं के प्रति बोधपूर्ण हो सकोगे। और ये बिंदु इन विषयों के आधार हैं।

अब मैं एक-एक विधि को लूंगा।

दो श्वासों के बीच के अंतराल को अनुभव करो

1. शिव उत्तर में कहते हैं : हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व—श्रेयस है, कल्याण है।

यह विधि है : 'हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है।' जब श्वास भीतर अथवा नीचे को आती है उसके बाद, और फिर श्वास के बाहर लौटने के ठीक पूर्व—'श्रेयस है।' इन दो बिंदुओं के बीच होशपूर्ण होने से घटना घटती है।

जब तुम्हारी श्वास भीतर आए तो उसका निरीक्षण करो। उसके फिर बाहर या ऊपर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण के लिए, या क्षण के हजारवें भाग के लिए श्वास बंद हो जाती है। श्वास भीतर आती है और वहां एक बिंदु है जहां वह ठहर जाती है। फिर श्वास बाहर आती है। और जब श्वास बाहर जाती है तो फिर वहां भी एक क्षण के लिए या क्षणांश के लिए ठहर जाती है। और फिर वह भीतर के लिए लौटती है।

श्वास के भीतर या बाहर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण है जब तुम श्वास नहीं लेते हो। उसी क्षण में घटना घटनी संभव है; क्योंकि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तो तुम संसार में नहीं होते हो। समझ लो कि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तब तुम मृत हो; तुम तो हो, लेकिन मृत। लेकिन यह क्षण इतना छोटा है कि तुम उसे कभी देख नहीं पाते।

तंत्र के लिए प्रत्येक बहिर्गामी श्वास मृत्यु है और प्रत्येक नई श्वास पुनर्जन्म है। भीतर आने वाली श्वास पुनर्जन्म है; बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु का पर्याय है; अंदर आने वाली जीवन का। इसलिए प्रत्येक

श्वास के साथ तुम मरते हो और फिर जन्म लेते हो। दोनों के बीच का अंतराल बहुत क्षणिक है, लेकिन पैनी दृष्टि, शुद्ध निरीक्षण और अवधान से उसे अनुभव किया जा सकता है। और यदि तुम उस अंतराल को अनुभव कर सको तो शिव कहते हैं कि श्रेयस उपलब्ध है। तब और किसी चीज की जरूरत नहीं है। तब तुम आप्तकाम हो गए। तुमने जान लिया; घटना घट गई।

श्वास को प्रशिक्षित नहीं करना है। वह जैसी है उसे वैसी ही रहने दो। फिर इतनी सरल विधि क्यों ? सत्य को जानने की ऐसी सरल विधि ? सत्य को जानना उसको जानना है जिसका न जन्म है न मरण, उस शाश्वत को जानना है जो सदा है। तुम बाहर जाती श्वास को जान सकते हो, तुम भीतर आती श्वास को भी जान सकते हो; लेकिन तुम दोनों के अंतराल को कभी नहीं जानते।

प्रयोग करो और तुम उस बिंदु को पा लोगे। उसे अवश्य पा सकते हो; वह है। तुम्हें या तुम्हारी संरचना में कुछ जोड़ना नहीं है; वह है ही। सब कुछ है; सिर्फ बोध नहीं है। कैसे प्रयोग करो ? पहले भीतर आने वाली श्वास के प्रति होशपूर्ण बनो। उसे देखो। सब कुछ भूल जाओ और आने वाली श्वास को, उसके यात्रा-पथ को देखो। जब श्वास नासापुटों को स्पर्श करे तो उसको महसूस करो। श्वास को गति करने दो और पूरी सजगता से उसके साथ यात्रा करो। श्वास के साथ ठीक कदम से कदम मिलाकर नीचे उतरो; न आगे जाओ और न पीछे पड़ो। उसका साथ न छूटे; बिलकुल साथ-साथ चलो।

स्मरण रहे, न आगे जाना है और न छाया की तरह पीछे चलना है—समांतर चलो, युगपत। श्वास और सजगता को एक हो जाने दो। श्वास नीचे जाती है तो तुम भी नीचे जाओ। और तभी उस बिंदु को पा सकते हो जो दो श्वासों के बीच में है। यह आसान नहीं है। श्वास के साथ अंदर जाओ; श्वास के साथ बाहर जाओ।

बुद्ध ने इसी विधि का प्रयोग विशेष रूप से किया; इसलिए यह बौद्ध विधि बन गई। बौद्ध शब्दावली में इसे अनापानसती योग कहते हैं। और स्वयं बुद्ध की आत्मोपलब्धि इस विधि पर ही आधारित थी। संसार के सभी धर्म, संसार के सभी द्रष्टा किसी-न-किसी विधि के जरिए मंजिल पर पहुंचे हैं। और वे सब विधियां इन एक सौ बारह विधियों में सम्मिलित हैं। यह पहली विधि बौद्ध विधि है। दुनिया इसे बौद्ध विधि के रूप में जानती है, क्योंकि बुद्ध इसके द्वारा ही निर्वाण को उपलब्ध हुए थे।

बुद्ध ने कहा है— अपनी श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग रहो; अंदर आती-जाती श्वास के प्रति होश रखो। बुद्ध अंतराल की चर्चा नहीं करते, क्योंकि

उसकी जरूरत नहीं है। बुद्ध ने सोचा और समझा कि अगर तुम अंतराल की, दो श्वासों के बीच के विराम की फिक्र करने लगे, तो उससे तुम्हारी सजगता खंडित होगी। इसलिए उन्होंने सिर्फ यह कहा कि होश रखो; जब श्वास भीतर आए तो तुम भी उसके साथ भीतर आओ और जब श्वास बाहर जाए तो तुम भी उसके साथ ही बाहर जाओ। इतना ही करो, श्वास के साथ-साथ तुम भी भीतर-बाहर चलते रहो। विधि के दूसरे हिस्से के संबंध में बुद्ध कुछ भी नहीं कहते हैं।

इसका कारण है। कारण यह है कि बुद्ध बहुत साधारण लोगों से, सीधे-सादे लोगों से बोल रहे थे। वे उनसे अंतराल की बात करते तो उससे लोगों में अंतराल को पाने की एक अलग कामना निर्मित हो जाती। और यह अंतराल को पाने की कामना बोध में बाधा बन जाती। क्योंकि अगर तुम अंतराल को पाना चाहते हो तो तुम आगे बढ़ जाओगे; श्वास भीतर आती रहेगी और तुम उसके आगे निकल जाओगे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि अंतराल पर है जो भविष्य में है। बुद्ध कभी इसकी चर्चा नहीं करते; इसलिए बुद्ध की विधि आधी है।

लेकिन दूसरा हिस्सा अपने आप ही चला आता है। अगर तुम श्वास के प्रति सजगता का, बोध का अभ्यास करते गए तो एक दिन अनजाने ही तुम अंतराल को पा जाओगे। क्योंकि जैसे-जैसे तुम्हारा बोध तीव्र, गहरा और सघन होगा, जैसे-जैसे तुम्हारा बोध स्पष्ट आकार लेगा—जब सारा संसार भूल जाएगा, बस श्वास का आना-जाना ही एकमात्र बोध रह जाएगा—तब अचानक तुम उस अंतराल को अनुभव करोगे जिसमें श्वास नहीं है।

अगर तुम सूक्ष्मता से श्वास-प्रश्वास के साथ यात्रा कर रहे हो तो उस स्थिति के प्रति अबोध कैसे रह सकते हो जहां श्वास नहीं है। वह क्षण आ ही जाएगा, जब तुम महसूस करोगे कि अब श्वास न आती है, न जाती है। श्वास-क्रिया बिलकुल ठहर गई है। और उसी ठहराव में श्रेयस का वास है।

यह एक विधि लाखों-करोड़ों लोगों के लिए पर्याप्त है। सदियों तक समूचा एशिया इस एक विधि के साथ जीया और उसका प्रयोग करता रहा। तिब्बत, चीन, जापान, बर्मा, श्याम, श्रीलंका—भारत को छोड़कर समस्त एशिया सदियों तक इस एक विधि का उपयोग करता रहा। और इस एक विधि के द्वारा हजारों-हजारों व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हुए। और यह पहली ही विधि है। दुर्भाग्य की बात कि चूंकि यह विधि बुद्ध के नाम से संबद्ध हो गई, इसलिए हिंदू इस विधि से बचने की चेष्टा में लगे रहे। क्योंकि यह बौद्ध विधि की तरह बहुत प्रसिद्ध हुई, हिंदू इसे बिलकुल भूल ही बैठे। इतना ही नहीं, उन्होंने और एक

कारण से उसकी अवहेलना की। क्योंकि शिव ने सबसे पहले इस विधि का उल्लेख किया, अनेक बौद्धों ने इस विज्ञान भैरव तंत्र के बौद्ध ग्रंथ होने का दावा किया है। वे इसे हिंदू ग्रंथ नहीं मानते।

यह न हिंदू है न बौद्ध, और विधि मात्र विधि है। बुद्ध ने इसका उपयोग किया, लेकिन यह उपयोग के लिए मौजूद ही थी। और इस विधि के चलते बुद्ध बुद्ध हुए। विधि बुद्ध से भी पहले थी; वह मौजूद ही थी। इसको प्रयोग में लाओ। यह सरलतम विधियों में से है—अन्य विधियों की तुलना में; मैं यह नहीं कहता कि यह विधि तुम्हारे लिए सरल है। अन्य विधियां अधिक कठिन होंगी। यही कारण है कि पहली विधि की तरह इसका उल्लेख हुआ है।

दो श्वासों के बीच संक्रांति-बिंदु को देखो

2. दूसरी विधि—आरंभ की सब नौ विधियां श्वास से संबंधित हैं—इस प्रकार है —

जब श्वास नीचे से ऊपर की ओर मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की ओर मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।

थोड़े फर्क के साथ यह वही विधि है, जोर अब अंतराल पर न होकर मोड़ पर है। बाहर जाने वाली और अंदर आने वाली श्वास एक वर्तुल बनाती हैं। याद रहे, वे समांतर रेखाओं की तरह नहीं हैं। हम सदा सोचते हैं कि आने वाली श्वास और जाने वाली श्वास दो समांतर रेखाओं की तरह हैं। मगर वे ऐसी हैं नहीं। भीतर आने वाली श्वास आधा वर्तुल बनाती है और शेष आधा वर्तुल बाहर जाने वाली श्वास बनाती है।

इसलिए पहले यह समझ लो कि श्वास और प्रश्वास मिलकर एक वर्तुल बनाती हैं। और वे समांतर रेखाएं नहीं हैं; क्योंकि समांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलती हैं। दूसरा यह कि आने वाली और जाने वाली श्वास दो नहीं हैं, वे एक हैं। वही श्वास जो भीतर आती है, बाहर भी जाती है। इसलिए भीतर उसका कोई मोड़ अवश्य होगा; वह कहीं जरूर मुड़ती होगी। कोई बिंदु होगा, जहां आने वाली श्वास जाने वाली श्वास बन जाती होगी।

लेकिन मोड़ पर इतना जोर क्यों है ?

क्योंकि शिव कहते हैं, 'जब श्वास नीचे से ऊपर की ओर मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की ओर मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।'

बहुत सरल है। लेकिन शिव कहते हैं कि मोड़ों को प्राप्त कर लो और आत्मा को उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन मोड़ क्यों ?

अगर तुम कार चलाना जानते हो तो तुम्हें गियर का पता होगा। हर बार जब तुम गियर बदलते हो तो तुम्हें न्यूट्रल गियर से गुजरना पड़ता है जो कि गियर बिलकुल नहीं है। तुम पहले गियर से दूसरे गियर में जाते हो और दूसरे से तीसरे गियर में। लेकिन सदा तुम्हें न्यूट्रल गियर से होकर जाना पड़ता है। वह न्यूट्रल गियर घुमाव का बिंदु है, मोड़ है। उस मोड़ पर पहला गियर दूसरा बन जाता है और दूसरा तीसरा बन जाता है।

वैसे ही जब तुम्हारी श्वास भीतर जाती है और घूमने लगती है तो उस वक्त वह न्यूट्रल गियर में होती है; नहीं तो वह नहीं घूम सकती। उसे तटस्थ क्षेत्र से गुजरना पड़ता है।

उस तटस्थ क्षेत्र में तुम न तो शरीर हो और न मन ही हो; न शारीरिक हो, न मानसिक हो। क्योंकि शरीर तुम्हारे अस्तित्व का एक गियर है और मन उसका दूसरा गियर है। तुम एक गियर से दूसरे गियर में गति करते हो, इसलिए तुम्हें एक न्यूट्रल गियर की जरूरत है जो न शरीर हो और न मन हो। उस तटस्थ क्षेत्र में तुम मात्र हो, मात्र अस्तित्व—शुद्ध, सरल, अशरीरी और मन से मुक्त। यही कारण है कि घुमाव-बिंदु पर, मोड़ पर इतना जोर है।

मनुष्य एक यंत्र है—बड़ा और बहुत जटिल यंत्र है। तुम्हारे शरीर और मन में भी अनेक गियर हैं। तुम्हें उस महान यंत्र-रचना का बोध नहीं है, लेकिन तुम एक महान यंत्र हो। और अच्छा है कि तुम्हें उसका बोध नहीं है, अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। शरीर ऐसा विशाल यंत्र है कि वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर हमें शरीर के समांतर एक कारखाना निर्मित करना पड़े तो उसे चार वर्गमील जमीन की जरूरत होगी। और उसका शोरगुल इतना भारी होगा कि उससे सौ वर्गमील भूमि प्रभावित होगी।

शरीर एक विशाल यांत्रिक रचना है—विशालतम। उसमें लाखों-लाखों कोशिकाएं हैं, और प्रत्येक कोशिका जीवित है। तुम सात करोड़ कोशिकाओं के एक विशाल नगर हो; तुम्हारे भीतर सात करोड़ नागरिक बसते हैं, और सारा नगर बहुत शांति और व्यवस्था से चल रहा है। प्रतिक्षण यंत्र-रचना काम कर रही है, और वह बहुत जटिल है।

कई स्थलों पर इन विधियों का तुम्हारे शरीर और मन की इस यंत्र-रचना के साथ वास्ता पड़ेगा। लेकिन याद रखो कि सदा ही जोर उन बिंदुओं पर रहेगा जहां तुम अचानक यंत्र-रचना के अंग नहीं रह जाते हो। जब एकाएक तुम

यंत्र-रचना के अंग नहीं रहे तो ये ही क्षण हैं जब तुम गियर बदलते हो।

उदाहरण के लिए, रात जब तुम नींद में उतरते हो तो तुम्हें गियर बदलना पड़ता है। कारण यह है कि दिन में जागी हुई चेतना के लिए दूसरे ढंग की यंत्र-रचना की जरूरत रहती है। तब मन का भी एक दूसरा भाग काम करता है। और जब तुम नींद में उतरते हो तो वह भाग निष्क्रिय हो जाता है और अन्य भाग सक्रिय होता है। उस क्षण वहां एक अंतराल, एक मोड़ आता है। एक गियर बदला। फिर सुबह जब तुम जागते हो तो गियर बदलता है।

तुम चुपचाप बैठे हो और अचानक कोई कुछ कह देता है और तुम क्रुद्ध हो जाते हो। तब तुम भिन्न गियर में चले गए। यही कारण है कि सब कुछ बदल जाता है। तुम क्रोध में हुए कि तुम्हारी श्वास-क्रिया बदल जाएंगी, वह अस्तव्यस्त, अराजक हो जाएगी। तुम्हारी श्वास-क्रिया में कंपन आ जाएगा, तुम्हारा दम घुटने लगेगा। उस समय तुम्हारा सारा शरीर कुछ करना चाहेगा, किसी चीज को चूर-चूर कर देना चाहेगा, ताकि यह घुटन जाए। तुम्हारी श्वास-क्रिया बदल जाएगी, तुम्हारे खून की लय दूसरी होगी, चाल दूसरी होगी। शरीर में और ही तरह का रस-द्रव्य सक्रिय होगा। पूरी ग्रंथि-व्यवस्था ही बदल जाएगी। क्रोध में तुम दूसरे ही आदमी हो जाते हो।

एक कार खड़ी है, तुम उसे स्टार्ट करो। उसे किसी गियर में न डालकर न्यूट्रल गियर में छोड़ दो। गाड़ी हिलेगी, कांपेगी, लेकिन चल तो सकती नहीं। वह गरम हो जाएगी। इसी तरह क्रोध में नहीं कुछ कर पाने के कारण तुम गरम हो जाते हो। यंत्र-रचना तो कुछ करने के लिए सक्रिय है और तुम उसे कुछ करने नहीं देते तो उसका गरम हो जाना स्वाभाविक है। तुम एक यंत्र-रचना हो, लेकिन मात्र यंत्र-रचना नहीं हो। उससे कुछ अधिक हो। उस अधिक को खोजना है। जब तुम गियर बदलते हो तो भीतर सब कुछ बदल जाता है। जब तुम गियर बदलते हो तो एक मोड़ आता है।

शिव कहते हैं, 'जब श्वास नीचे से ऊपर की ओर मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की ओर मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।'

मोड़ पर सावधान हो जाओ, सजग हो जाओ। लेकिन यह मोड़ बहुत सूक्ष्म है और उसके लिए बहुत सूक्ष्म निरीक्षण की जरूरत पड़ेगी। हमारी निरीक्षण की क्षमता नहीं के बराबर है; हम कुछ देख ही नहीं सकते। अगर मैं तुम्हें कहूं कि इस फूल को देखो—इस फूल को जो तुम्हें मैं देता हूं—तो तुम उसे नहीं देख पाओगे। एक क्षण को तुम उसे देखोगे और फिर किसी और चीज के संबंध

में सोचने लगोगे। वह सोचना फूल के विषय में हो सकता है, लेकिन वह फूल नहीं होगा। तुम फूल के बारे में सोच सकते हो कि वह कितना सुंदर है, लेकिन तब तुम फूल से दूर हट गए। अब फूल तुम्हारे निरीक्षण-क्षेत्र में नहीं रहा; क्षेत्र बदल गया। तुम कहोगे कि यह लाल है, नीला है, लेकिन तुम उस फूल से दूर चले गए।

निरीक्षण का अर्थ होता है— किसी शब्द या शाब्दिकता के साथ, भीतर की बदलाहट के साथ न रहकर मात्र फूल के साथ रहना। अगर तुम फूल के साथ ऐसे तीन मिनट रह जाओ, जिसमें मन कोई गति न करे, तो श्रेयस घट जाएगा, तुम उपलब्ध हो जाओगे।

लेकिन हम निरीक्षण बिलकुल नहीं जानते हैं। हम सावधान नहीं हैं, सतर्क नहीं हैं। हम किसी भी चीज को अपना अवधान नहीं दे पाते हैं। हम तो यहां-वहां उछलते रहते हैं। वह हमारी वंशगत विरासत है, बंदर-वंश की विरासत। बंदर के मन से ही मनुष्य का मन विकसित हुआ है। बंदर शांत नहीं बैठ सकता। इसीलिए बुद्ध बिना हलन-चलन के बैठने पर, मात्र बैठने पर इतना जोर देते थे। क्योंकि तब बंदर-मन का अपनी राह चलना बंद हो जाता है।

जापान में एक खास तरह का ध्यान चलता है जिसे वे झाझेन कहते हैं। झाझेन शब्द का जापानी में अर्थ होता है, मात्र बैठना और कुछ भी नहीं करना। कुछ भी हलचल नहीं करनी है, मूर्ति की तरह वर्षों बैठे रहना है—मृतवत, अचल। लेकिन मूर्ति की तरह वर्षों बैठने की जरूरत क्या है ? अगर तुम अपने श्वास के घुमाव को अचल मन से देख सको तो तुम प्रवेश पा जाओगे। तुम स्वयं में प्रवेश पा जाओगे, अंतर के भी पार प्रवेश पा जाओगे। लेकिन ये मोड़ इतने महत्त्वपूर्ण क्यों हैं ?

वे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि मोड़ पर दूसरी दिशा में घूमने के लिए श्वास तुम्हें छोड़ देती है। जब वह भीतर आ रही थी तो तुम्हारे साथ थी; फिर जब वह बाहर जाएगी तो तुम्हारे साथ होगी। लेकिन घुमाव-बिंदु पर न वह तुम्हारे साथ है और न तुम उसके साथ हो। उस क्षण में श्वास तुमसे भिन्न है और तुम उससे भिन्न हो। अगर श्वास-क्रिया ही जीवन है तो तब तुम मृत हो। अगर श्वास-क्रिया तुम्हारा मन है तो उस क्षण तुम अ-मन हो।

तुम्हें पता हो या नहीं, अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो मन अचानक ठहर जाता है। अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो तुम्हारा मन अभी और अचानक ठहर जाएगा; मन चल नहीं सकता। श्वास का अचानक ठहरना मन को ठहरा देता है। क्यों ? क्योंकि वे पृथक हो जाते हैं। केवल चलती हुई श्वास

मन से, शरीर से जुड़ी होती है। अचल श्वास अलग हो जाती है। और तब तुम न्यूट्रल गियर में होते हो।

कार चालू है, ऊर्जा भाग रही है। कार शोर मचा रही है, वह आगे जाने को तैयार है। लेकिन वह गियर में ही नहीं है। इसलिए कार का शरीर और कार की यंत्र-रचना, दोनों अलग-अलग हैं। कार दो हिस्सों में बंटी है। वह चलने को तैयार है, लेकिन गति का यंत्र उससे अलग है।

वही बात तब होती है जब श्वास मोड़ लेती है। उस समय तुम उससे नहीं जुड़े हो। और उस क्षण तुम आसानी से जान सकते हो कि मैं कौन हूं, यह होना क्या है। उस समय तुम जान सकते हो कि शरीर रूपी घर के भीतर कौन है, इस घर का स्वामी कौन है। मैं मात्र घर हूं या वहां कोई स्वामी भी है। मैं मात्र यंत्र-रचना हूं या उसके परे भी कुछ है। और शिव कहते हैं कि उस घुमाव-बिंदु पर उपलब्ध हो। वे कहते हैं, उस मोड़ के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ और तुम आत्मोपलब्ध हो।

दो श्वासों के विलय-बिंदु को देखो

तीसरी श्वास विधि :

3. या जब कभी अंतःश्वास और बहिर्श्वास एक-दूसरे में विलीन होती हैं, उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र का स्पर्श करो।

हम केंद्र और परिधि में विभाजित हैं। शरीर परिधि है। हम शरीर को, परिधि को जानते हैं। लेकिन हम यह नहीं जानते कि कहां केंद्र है। जब बहिर्श्वास अंतःश्वास में विलीन होती है, जब वे एक हो जाती हैं, जब तुम यह नहीं कह सकते कि यह अंतःश्वास है कि बहिर्श्वास, जब यह बताना कठिन हो कि श्वास भीतर जा रही है कि बाहर जा रही है, जब श्वास भीतर प्रवेश कर बाहर की तरफ मुड़ने लगती है, तभी विलय का क्षण है। तब श्वास न बाहर जाती है और न भीतर आती है। श्वास गतिहीन है। जब वह बाहर जाती है, गतिमान है; जब वह भीतर आती है, गतिमान है। और जब वह दोनों में कुछ भी नहीं करती है, तब वह मौन है, अचल है। और तब तुम केंद्र के निकट हो। आने वाली और जाने वाली श्वासों का यह विलय-बिंदु तुम्हारा केंद्र है।

इसे इस तरह देखो। जब श्वास भीतर जाती है तो कहां जाती है ? वह तुम्हारे केंद्र को जाती है। और जब वह बाहर जाती है तो कहां से जाती है ? केंद्र से बाहर जाती है। इसी केंद्र को स्पर्श करना है। यही कारण है कि

ताओवादी संत और झेन संत कहते हैं कि सिर तुम्हारा केंद्र नहीं है, नाभि तुम्हारा केंद्र है। श्वास नाभि-केंद्र को जाती है, फिर वहां से लौटती है, फिर-फिर उसकी यात्रा करती है।

जैसा मैंने कहा, श्वास तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है। तुम शरीर को तो जानते हो, लेकिन यह नहीं जानते कि केंद्र कहां है। श्वास निरंतर केंद्र को जा रही है और वहां से लौट रही है। लेकिन हम पर्याप्त श्वास नहीं लेते हैं। इस कारण से साधारणत: वह केंद्र तक नहीं पहुंच पाती है। खासकर आधुनिक समय में तो वह केंद्र तक नहीं जाती। और नतीजा यह है कि हरेक व्यक्ति विकेंद्रित अनुभव करता है, अपने को केंद्र से च्युत महसूस करता है। पूरे आधुनिक संसार में जो लोग भी थोड़ा सोच-विचार करते हैं, वे महसूस करते हैं कि उनका केंद्र खो गया है।

एक सोए हुए बच्चे को देखो, उसकी श्वास का निरीक्षण करो। जब उसकी श्वास भीतर जाती है तो उसका पेट ऊपर उठता है; उसकी छाती अप्रभावित रहती है। यही वजह है कि बच्चों के छाती नहीं होती, उनके केवल पेट होते हैं—जीवंत पेट। श्वास-प्रश्वास के साथ उनका पेट ऊपर-नीचे होता है। उनका पेट ऊपर-नीचे होता है और बच्चे अपने केंद्र पर होते हैं, केंद्र में होते हैं। और यही कारण है कि बच्चे इतने सुखी हैं, इतने आनंदमग्न हैं, इतनी ऊर्जा से भरे हैं कि कभी थकते नहीं और ओवरफ्लोइंग हैं। वे सदा वर्तमान क्षण में होते हैं; न उनका अतीत है न भविष्य।

एक बच्चा क्रोध कर सकता है। जब वह क्रोध करता है तो समग्रता से क्रोध करता है। वह क्रोध ही हो जाता है। और तब उसका क्रोध भी कितना सुंदर लगता है। जब कोई समग्रता से क्रोध करता है तो उसके क्रोध का अपना ही सौंदर्य है। क्योंकि समग्रता सदा सुंदर होती है।

तुम क्रोधी और सुंदर नहीं हो सकते। क्रोध में तुम कुरूप लगोगे, क्योंकि खंड सदा कुरूप होता है। क्रोध के साथ ही ऐसा नहीं है; तुम प्रेम भी करते हो तो कुरूप लगते हो। क्योंकि उसमें भी तुम खंडित हो, बंटे-बंटे हो। जब तुम किसी को प्रेम कर रहे हो, जब तुम संभोग में उतर रहे हो तो अपने चेहरे को देखो। आईने के सामने प्रेम करो और अपना चेहरा देखो। वह कुरूप और पशुवत होगा।

प्रेम में भी तुम्हारा रूप कुरूप हो जाता है। क्यों ? तुम्हारे प्रेम में भी द्वंद्व है; तुम कुछ बचाकर रख रहे हो, कुछ रोक रहे हो; तुम बहुत कंजूसी से दे रहे हो। तुम अपने प्रेम में भी समग्र नहीं हो। तुम समग्रता से, पूरे-पूरे दे भी

नहीं पाते।

और बच्चा क्रोध और हिंसा में भी समग्र होता है; उसका मुखड़ा दीप्त और सुंदर हो उठता है; वह यहां और अभी होता है। उसके क्रोध को न किसी अतीत से कुछ लेना-देना है और न किसी भविष्य से; वह हिसाब नहीं रखता है। वह मात्र क्रुद्ध है। बच्चा अपने केंद्र पर है। और जब तुम केंद्र पर होते हो तो सदा समग्र होते हो। तब तुम जो कुछ करते हो वह समग्र होता है। भला या बुरा, वह समग्र होता है। और जब खंडित होते हो, केंद्र से च्युत होते हो तो तुम्हारा हरेक काम भी खंडित होता है; क्योंकि उसमें तुम्हारा खंड ही होता है, उसमें तुम्हारा समग्र संवेदित नहीं होता है। खंड समग्र के खिलाफ जाता है। और वही कुरूपता पैदा करता है।

कभी हम सब बच्चे थे। क्या बात है कि जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं हमारी श्वास-क्रिया उथली हो जाती है ? तब श्वास पेट तक कभी नहीं जाती है, नाभि-केंद्र को नहीं छूती है। अगर वह ज्यादा से ज्यादा नीचे जाएगी तो वह कम-से-कम उथली रहेगी। लेकिन वह तो सीने को छूकर लौट आती है। वह केंद्र तक नहीं जाती है। तुम केंद्र से डरते हो, क्योंकि केंद्र पर जाने से तुम समग्र हो जाओगे। अगर तुम खंडित रहना चाहो तो खंडित रहने की यही प्रक्रिया है।

तुम प्रेम करते हो। अगर तुम केंद्र से श्वास लो तो तुम प्रेम में पूरे बहोगे। तुम डरे हुए हो। तुम दूसरे के प्रति, किसी के भी प्रति खुले होने से, असुरक्षित और संवेदनशील होने से डरते हो। तुम उसे अपना प्रेमी कहो कि प्रेमिका कहो, तुम डरे हुए हो। वह दूसरा है, और अगर तुम पूरी तरह खुले हो, असुरक्षित हो तो तुम नहीं जानते कि क्या होने जा रहा है। तब तुम हो, समग्रता से हो—दूसरे अर्थों में। तुम पूरी तरह दूसरे में खो जाने से डरते हो। इसलिए तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते। तुम अपनी श्वास को शिथिल और ढीला नहीं कर सकते कि वह केंद्र तक चली जाए। क्योंकि जिस क्षण श्वास केंद्र पर पहुंचेगी, तुम्हारा कृत्य अधिकाधिक समग्र होने लगेगा।

क्योंकि तुम समग्र होने से डरते हो, तुम उथली श्वास लेते हो। तुम अल्पतम श्वास लेते हो, अधिकतम नहीं। यही कारण है कि जीवन इतना जीवनहीन लगता है। अगर तुम न्यूनतम श्वास लोगे तो जीवन जीवनहीन ही होगा। तुम जीते भी न्यूनतम हो, अधिकतम नहीं। तुम अधिकतम जीयो तो जीवन अतिशय हो जाए। लेकिन तब कठिनाई होगी। यदि जीवन अतिशय हो तो तुम न पति हो सकते हो और न पत्नी। सब कुछ कठिन हो जाएगा। अगर जीवन अतिशय हो तो

लेकिन तब कठिनाई होगी। यदि जीवन अतिशय हो तो तुम न पति हो सकते हो और न पत्नी। सब कुछ कठिन हो जाएगा। अगर जीवन अतिशय हो तो प्रेम अतिशय होगा। तब तुम एक से ही बंधे नहीं रह सकते। तब तुम सब तरफ प्रवाहित होने लगोगे, सभी आयाम में तुम भर जाओगे। और उस हालत में मन खतरा महसूस करता है; इसलिए जीवित ही नहीं रहना उसे मंजूर है।

तुम जितने मृत होगे उतने सुरक्षित होगे। जितने मृत होगे उतना ही सब कुछ नियंत्रण में होगा। तुम नियंत्रण करते हो तो तुम मालिक हो। क्योंकि नियंत्रण कर सकते हो, इसलिए अपने को मालिक समझते हो। तुम अपने क्रोध पर, अपने प्रेम पर, सब कुछ पर नियंत्रण कर सकते हो। लेकिन यह नियंत्रण ऊर्जा के न्यूनतम तल पर ही संभव है।

कभी-न-कभी हर आदमी ने यह अनुभव किया है कि वह अचानक न्यूनतम से अधिकतम तल पर पहुंच गया। तुम किसी पहाड़ पर चले जाओ। अचानक तुम शहर से, उसकी कैद से बाहर हो जाओ। अब तुम मुक्त हो। विराट आकाश है, हरा जंगल है, बादलों को छूता शिखर है। अचानक तुम गहरी श्वास लेते हो। हो सकता है, उस पर तुम्हारा ध्यान न गया हो। अब जब पहाड़ जाओ तो इसका खयाल रखना। केवल पहाड़ के कारण बदलाहट नहीं मालूम होती, श्वास के कारण मालूम होती है। तुम गहरी श्वास लेते हो और कहते हो, अहा ! तुमने केंद्र छू लिया; क्षणभर के लिए तुम समग्र हो गए। और सब कुछ आनंदपूर्ण है। वह आनंद पहाड़ से नहीं, तुम्हारे केंद्र से आ रहा है। तुमने अचानक उसे छू जो लिया।

शहर में तुम भयभीत थे। सर्वत्र दूसरा मौजूद था और तुम अपने को काबू में किए रहते थे। न रो सकते थे, न हंस सकते थे। कैसा दुर्भाग्य, तुम सड़क पर गा नहीं सकते थे, नाच नहीं सकते थे। तुम डरे-डरे थे। कहीं सिपाही खड़ा था, कहीं पुरोहित, कहीं जज खड़ा था, कहीं राजनीतिज्ञ, कहीं नीतिवादी। कोई-न-कोई था कि तुम नाच नहीं सकते थे।

बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं कहा है कि मैं सभ्यता से प्रेम करता हूं, लेकिन हमने यह सभ्यता भारी कीमत चुकाकर हासिल की है।

तुम सड़क पर नहीं नाच सकते, लेकिन पहाड़ चले जाओ और वहां अचानक नाच सकते हो। तुम आकाश के साथ अकेले हो और आकाश कारागृह नहीं है। वह खुलता ही जाता है, खुलता ही जाता है, अनंत तक खुलता ही जाता है। एकाएक तुम एक गहरी श्वास लेते हो; केंद्र छू जाता है; और तब आनंद ही आनंद है।

लेकिन वह लंबे समय तक टिकने वाला नहीं है। घंटे-दो घंटे में पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम वहां रह सकते हो, लेकिन पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम्हारी चिंताएं लौट आएंगी। तुम शहर देखना चाहोगे, पत्नी को पत्र लिखने की सोचोगे या सोचोगे कि तीन दिन बाद वापस जाना है तो उसकी तैयारी शुरू करें। अभी तुम आए हो और जाने की तैयारी होने लगी ! फिर तुम वापस आ गए। वह गहरी श्वास सच में तुमसे नहीं आई थी। वह अचानक घटित हुई थी, बदली परिस्थिति के कारण गियर बदल गया था। नई परिस्थिति में तुम पुराने ढंग से श्वास नहीं ले सकते थे, इसलिए क्षणभर को एक नयी श्वास आ गई, उसने केंद्र छू लिया और तुम आनंदित थे।

शिव कहते हैं, तुम प्रत्येक क्षण केंद्र को स्पर्श कर रहे हो, या यदि नहीं स्पर्श कर रहे तो कर सकते हो। गहरी, धीमी श्वास लो और केंद्र को स्पर्श करो। छाती से श्वास मत लो। वह एक चाल है; सभ्यता, शिक्षा और नैतिकता ने हमें उथली श्वास सिखा दी है। केंद्र में गहरे उतरना जरूरी है, अन्यथा तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते।

जब तक मनुष्य समाज कामवासना के प्रति गैर-दमन की दृष्टि नहीं अपनाता, तब तक वह सच में श्वास नहीं ले सकता। अगर श्वास पेट तक गहरी जाए तो वह काम-केंद्र को ऊर्जा देती है, वह काम-केंद्र को छूती है, उसकी भीतर से मालिश करती है। तब काम-केंद्र अधिक सक्रिय, अधिक जीवंत हो उठता है। और सभ्यता कामवासना से भयभीत है।

हम अपने बच्चों को जननेंद्रिय छूने नहीं देते हैं। हम कहते हैं, रुको, उन्हें छुओ मत। जब बच्चा पहली बार जननेंद्रिय छूता है तो उसे देखो; और कहो, रुको; और तब उसकी श्वास-क्रिया को देखो। जब तुम कहते हो, रुको, जननेंद्रिय मत छुओ; तो उसकी श्वास तुरंत उथली हो जाती है। क्योंकि उसका हाथ ही काम-केंद्र को नहीं छू रहा है, गहरे में उसकी श्वास भी उसे छू रही है। अगर श्वास उसे छूती रहे तो हाथ को रोकना कठिन होगा। और अगर हाथ रुकता है तो बुनियादी तौर से जरूरी हो जाता है कि श्वास गहरी न होकर उथली रहे।

हम काम से भयभीत हैं। शरीर का निचला हिस्सा शारीरिक तल पर ही नहीं, मूल्य के तल पर भी निचला हो गया है। वह निचला कहाकर निंदित है। इसलिए गहरी श्वास नहीं, उथली श्वास लो। दुर्भाग्य की बात है कि श्वास नीचे को ही जाती है। अगर उपदेशक की चलती तो वह पूरी यंत्र-रचना को बदल देता। वह सिर्फ ऊपर की ओर, सिर में श्वास लेने की इजाजत देता।

बदल देना होगा। तब श्वास को सिर में, सहस्रार में भेजना होगा। और वहां से मुंह में वापस लाना होगा। मुंह से सहस्रार उसका मार्ग होगा। उसे नीचे गहरे में नहीं जाने देना होगा, क्योंकि वहां खतरा है। जितने गहरे उतरोगे उतने ही जैविकी के गहरे तलों पर पहुंचोगे। तब तुम केंद्र पर पहुंचोगे और वह केंद्र काम-केंद्र के पास ही है। ठीक भी है, क्योंकि काम ही जीवन है।

इसे इस तरह देखो। श्वास ऊपर से नीचे को जाने वाला जीवन है, काम ठीक दूसरी दिशा से, नीचे से ऊपर को जाने वाला जीवन है। काम-ऊर्जा बह रही है और श्वास-ऊर्जा बह रही है। श्वास का रास्ता ऊपर शरीर में है और काम का रास्ता निम्न शरीर में है। और जब श्वास और काम मिलते हैं तो जीवन को जन्म देते हैं; जब वे मिलते हैं तो जैविकी को, जीव-ऊर्जा को जन्म देते हैं। इसलिए अगर तुम काम से डरते हो तो दोनों के बीच दूरी बनाओ, उन्हें मिलने मत दो। सच तो यह है कि सभ्य आदमी बधिया किया हुआ आदमी है। यही कारण है कि हम श्वास के संबंध में नहीं जानते, और हमें यह सूत्र समझना कठिन होगा।

शिव कहते हैं— 'जब कभी अंतःश्वास और बहिर्श्वास एक-दूसरे में विलीन होती हैं, उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करो।'

शिव परस्पर विरोधी शब्दावली का उपयोग करते हैं— ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित। वह ऊर्जारहित है, क्योंकि तुम्हारे शरीर, तुम्हारे मन उसे ऊर्जा नहीं दे सकते। तुम्हारे शरीर की ऊर्जा और मन की ऊर्जा वहां नहीं है, इसलिए जहां तक तुम्हारे तादात्म्य का संबंध है, वह ऊर्जारहित है। लेकिन वह ऊर्जापूरित है; क्योंकि उसे ऊर्जा का जागतिक स्रोत उपलब्ध है।

तुम्हारे शरीर की ऊर्जा तो ईंधन है—पेट्रोल जैसी। तुम कुछ खाते-पीते हो उससे ऊर्जा बनती है। खाना-पीना बंद कर दो और शरीर मृत हो जाएगा। तुरंत नहीं, कम-से-कम तीन महीने लगेंगे, क्योंकि तुम्हारे पास पेट्रोल का एक खजाना भी है। तुमने बहुत ऊर्जा जमा की हुई है, जो कम-से-कम तीन महीने काम दे सकती है। शरीर चलेगा, उसके पास जमा ऊर्जा थी। और किसी आपातकाल में उसका उपयोग हो सकता है। इसलिए शरीर-ऊर्जा ईंधन-ऊर्जा है।

केंद्र को ईंधन-ऊर्जा नहीं मिलती है। यही कारण है कि शिव उसे ऊर्जारहित कहते हैं। वह तुम्हारे खाने-पीने पर निर्भर नहीं है। वह जागतिक स्रोत से जुड़ा हुआ है, वह जागतिक ऊर्जा है। इसलिए शिव उसे 'ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र' कहते हैं। जिस क्षण तुम उस केंद्र को अनुभव करोगे जहां से श्वास आती-जाती है, जहां श्वास विलीन होती है, उस क्षण तुम आत्मोपलब्ध हुए।

श्वास के ठहरने के क्षण में सजग रहो

चौथी श्वास विधि :

4. या जब श्वास पूरी तरह बाहर गई है और स्वतः ठहरी है, या पूरी तरह भीतर आई है और ठहरी है—ऐसे जागतिक विराम के क्षण में व्यक्ति का क्षुद्र अहंकार विसर्जित हो जाता है। केवल अशुद्ध के लिए यह कठिन है।

लेकिन तब तो यह विधि सबके लिए कठिन है, क्योंकि शिव कहते हैं कि 'केवल अशुद्ध के लिए यह कठिन है।'

लेकिन कौन शुद्ध है ? तुम्हारे लिए यह कठिन है; तुम इसका अभ्यास नहीं कर सकते। लेकिन कभी अचानक इसका अनुभव तुम्हें हो सकता है। तुम कार चला रहे हो और अचानक तुम्हें लगता है कि दुर्घटना होने जा रही है। श्वास बंद हो जाएगी। अगर वह बाहर है तो बाहर ही रह जाएगी, भीतर है तो भीतर ही रह जाएगी। ऐसे संकटकाल में तुम श्वास नहीं ले सकते; तुम्हारे बस में नहीं है। सब कुछ ठहर जाता है, विदा हो जाता है।

'या जब श्वास पूरी तरह बाहर गई है और स्वतः ठहरी है, या पूरी तरह भीतर आई है और ठहरी है—ऐसे जागतिक विराम के क्षण में व्यक्ति का क्षुद्र अहंकार विसर्जित हो जाता है।'

तुम्हारा क्षुद्र अहंकार दैनिक उपयोगिता की चीज है। संकट की घड़ी में तुम उसे नहीं याद रख सकते। तुम जो भी हो, नाम, बैंक बैलेंस, प्रतिष्ठा, सब काफूर हो जाता है। तुम्हारी कार दूसरी कार से टकराने जा रही है; एक क्षण, और मृत्यु हो जाएगी। इस क्षण में एक विराम होगा, अशुद्ध के लिए भी विराम होगा। ऐसे क्षण में अचानक श्वास बंद हो जाती है। और उस क्षण में अगर तुम बोधपूर्ण हो सके तो तुम उपलब्ध हो जाओगे।

जापान में झेन संतों ने इस विधि का बहुत उपयोग किया है। इसीलिए उनके उपाय अनूठे, बेतुके और चकित करने वाले होते हैं। उन्होंने बहुत से ऐसे काम किए हैं, जिन्हें तुम सोच भी नहीं सकते। एक गुरु किसी को घर के बाहर फेंक देगा। अचानक और अकारण गुरु शिष्य को चाँटे मारने लगेगा। तुम गुरु के साथ बैठे थे और सब कुछ ठीक था। तुम गपशप कर रहे थे और वह तुम्हें मारने लगा ताकि विराम पैदा हो।

अगर गुरु सकारण ऐसा करे तो विराम नहीं पैदा होगा। अगर तुमने गुरु को गाली दी होती और गुरु तुम्हें पीटता तो पीटना अकारण होता। तुम्हारा मन समझ जाता कि मेरी गाली के लिए मुझे मार लगी। असल में तुम्हारा मन उसकी

अपेक्षा करता। इसलिए विराम नहीं पैदा होगा। लेकिन याद रहे, झेन गुरु गाली देने पर तुम्हें नहीं मारेगा। वह हंसेगा, क्योंकि तब हंसी विराम पैदा कर सकती है। तुम गाली दे रहे थे, अनाप-शनाप बक रहे थे, और क्रोध का इंतजार कर रहे थे। लेकिन गुरु हंसना या नाचना शुरू कर देता है। यह अचानक है और इससे विराम पैदा होगा। तुम उसे नहीं समझ पाओगे। और अगर नहीं समझ सके तो मन ठहर जाएगा। और जब मन ठहरता है तो श्वास भी ठहर जाती है।

दोनों ढंग से घटना घटती है। अगर श्वास रुकती है तो मन रुक जाता है, या अगर मन रुकता है तो श्वास रुक जाती है। तुम गुरु की प्रशंसा कर रहे थे, तुम अच्छी मुद्रा में थे और सोचते थे कि गुरु प्रसन्न ही होगा। और गुरु अचानक डंडा उठा लेता है और तुम्हें मारने लगता है, वह भी बेरहमी से, क्योंकि झेन गुरु बेरहम होते हैं। वह तुम्हें पीटने लगता है और तुम समझ नहीं पाते हो कि क्या हो रहा है। उस क्षण मन ठहर जाता है, विराम घटित होता है। और अगर तुम्हें विधि मालूम है तो तुम आत्मोपलब्ध हो सकते हो।

अनेक कथाएं हैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया जब गुरु अचानक उसे मारने लगा था। तुम नहीं समझोगे। क्या नासमझी है ! किसी से पिटने पर या खिड़की से बाहर फेंक दिए जाने पर कोई बुद्धत्व को कैसे उपलब्ध हो सकता है ? अगर तुम्हें कोई मार भी डाले तो भी तुम बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हो सकते ! लेकिन अगर इस विधि को तुम समझते हो तो इस तरह की घटनाओं को समझना आसान होगा।

पश्चिम में पिछले तीस-चालीस वर्षों के दरम्यान झेन बहुत फैला है—फैशन की तरह। लेकिन जब तक वे इस विधि को नहीं जानेंगे, वे झेन को नहीं समझ सकते। वे इसका अनुकरण कर सकते हैं, लेकिन अनुकरण किसी काम का नहीं होता। बल्कि वह खतरनाक है। यह चीज अनुकरण करने की नहीं है।

समूची झेन विधि शिव की चौथी विधि पर आधारित है। लेकिन कैसा दुर्भाग्य कि अब हमें जापान से झेन का आयात करना होगा; क्योंकि हमने पूरी परंपरा खो दी है, हम उसे नहीं जानते। शिव इस विधि के बेजोड़ विशेषज्ञ थे। जब वे अपनी बरात लेकर देवी को ब्याहने पहुंचे थे, समूचे नगर ने विराम अनुभव किया होगा।

देवी के पिता अपनी बेटी को इस हिप्पी के साथ ब्याहने को बिलकुल राजी नहीं थे। शिव मौलिक हिप्पी थे। देवी के पिता उनके बिलकुल खिलाफ थे। कोई भी पिता ऐसे विवाह की अनुमति नहीं दे सकता है। इसलिए हम देवी

के पिता के खिलाफ कुछ नहीं कह सकते। कौन पिता शिव से विवाह की अनुमति देगा ? और तब देवी हठ कर बैठीं। और उन्हें अनिच्छा से, खेदपूर्वक अनुमति देनी पड़ी।

और फिर बारात आई। कहा जाता है कि शिव और उनकी बारात देखकर लोग भागने लगे। समूची बारात मानो एल॰ एस॰ डी॰, मारिजुआना, भंग और गांजा जैसी चीजें खाकर आई हो। लोग नशे में चूर थे। सच तो यह है कि एल॰ एस॰ डी॰ और मारिजुआना आरंभिक चीजें हैं। शिव और उनके दोस्तों और शिष्यों को उस परम मनोमद्य का पता था जिसे वे सोमरस कहते थे। एलडुअस हक्सले ने शिव के कारण ही परम मनोमद्य को सोमा नाम दिया है। वे मतवाले थे, नाचते, गाते, चीखते-चिल्लाते थे। समूचा नगर भाग खड़ा हुआ। अवश्य ही विराम का अनुभव हुआ होगा।

अशुद्ध के लिए कोई भी आकस्मिक, अप्रत्याशित, अविश्वसनीय चीज विराम पैदा कर सकती है। लेकिन शुद्ध के लिए ऐसी चीजों की जरूरत नहीं है। शुद्ध के लिए तो हमेशा विराम उपलब्ध है। विराम ही विराम है। कई बार शुद्ध चित्त के लिए श्वास अपने आप ही रुक जाती है। अगर तुम्हारा चित्त शुद्ध है—शुद्ध का अर्थ है कि तुम किसी चीज की चाहना नहीं करते, किसी के पीछे भागते नहीं—मौन और शुद्ध है, सरल और शुद्ध है, तो तुम बैठे रहोगे और अचानक तुम्हारी श्वास रुक जाएगी।

याद रखो कि मन की गति के लिए श्वास की गति आवश्यक है; मन के तेज चलने के लिए श्वास का तेज चलना आवश्यक है। यही कारण है कि जब तुम क्रोध में होते हो तुम्हारी श्वास तेज चलती है। और यही कारण है कि आयुर्वेद में कहा गया है कि मैथुन अतिशय होगा तो तुम्हारी आयु कम हो जाएगी। आयुर्वेद श्वास से आयु का हिसाब रखता है। अगर तुम्हारी श्वास-क्रिया बहुत तीव्र है तो तुम चिरायु नहीं हो सकते।

आधुनिक चिकित्सा कहती है कि काम-भोग रक्त-प्रवाह में और विश्राम में जाने में सहयोगी होता है। और जो लोग कामवासना का दमन करते हैं, वे मुसीबत में पड़ते हैं, खासकर हृदय-रोग के शिकार होते हैं।

आधुनिक चिकित्सा ठीक कहती है। अपनी-अपनी जगह आयुर्वेद भी सही है और आधुनिक चिकित्सा भी; यद्यपि दोनों परस्पर विरोधी मालूम होते हैं।

आयुर्वेद का आविष्कार आज से पांच हजार वर्ष पहले हुआ था। तब आदमी काफी श्रम करता था; जीवन ही श्रम था। इसलिए विश्राम की जरूरत नहीं थी। और रक्त-प्रवाह के लिए कृत्रिम उपायों की भी जरूरत नहीं थी। लेकिन अब

जिन लोगों को बहुत शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता है उनके लिए काम-भोग ही श्रम है।

इसलिए आधुनिक आदमी के बाबत आधुनिक चिकित्सा सही है। वह शारीरिक श्रम नहीं करता है, उसके लिए काम-भोग ही श्रम है। काम-भोग में उसकी हृदय की धड़कन तेज हो जाती है, उसका रक्त-प्रवाह बढ़ जाता है और उसकी श्वास-क्रिया गहरी होकर केंद्र तक पहुंच जाती है। इसलिए संभोग के बाद तुम शिथिल अनुभव करते हो और आसानी से नींद में उतर जाते हो। फ्रायड कहता है कि संभोग सब से बढ़िया नींद की दवा, ट्रैंक्वेलाइजर है। और आधुनिक आदमी के लिए फ्रायड सही भी है।

काम-भोग में, क्रोध में श्वास-क्रिया तेज हो जाती है। काम-भोग में मन वासना से, लोभ से, अशुद्धियों से भरा होता है। जब मन शुद्ध होता है, मन में कोई वासना नहीं होती है, कोई चाह, कोई दौड़, कोई प्रयोजन नहीं होता है, तुम कहीं जा नहीं रहे होते हो, तुम निर्दोष जलाशय की तरह अभी और यहीं ठहरे हुए होते हो, कोई लहर भी नहीं होती, तब श्वास अपने आप ही ठहर जाती है—अकारण।

इस मार्ग पर क्षुद्र अहंकार विसर्जित हो जाता है, और तुम उच्चात्मा को, परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हो।

आज इतना ही।

4

मन के धोखों से सावधान

प्रश्न-सार

1. ऐसी आसान विधियों से क्या ज्ञान-उपलब्धि संभव है ?

2. काम करते हुए क्या श्वास-बोध का प्रयोग किया जा सकता है ?

प्रश्न :

यह कैसे संभव है कि कोई व्यक्ति बस श्वास-क्रिया के एक विशेष बिंदु पर होश साधकर ज्ञान को उपलब्ध हो जाए ? श्वास-प्रश्वास के ऐसे छोटे और क्षणिक अंतराल के प्रति सजग होकर अचेतन से मुक्त होना कैसे संभव है ?

यह प्रश्न अर्थपूर्ण है, और यह प्रश्न अनेक के मन में उठा होगा। कई चीजें यहां समझने की हैं। समझा जाता है कि अध्यात्म एक कठिन उपलब्धि है। यह दोनों में कुछ नहीं है; न यह कठिन है और न उपलब्धि ही। तुम जो भी हो तुम आध्यात्मिक ही हो। तुम्हारे अस्तित्व में कुछ जोड़ा जाने को नहीं है; न उससे कुछ हटाया जाने को है। तुम उतने पूर्ण हो जितने पूर्ण हो सकते हो। ऐसा नहीं है कि तुम किसी भविष्य में पूर्ण होने जा रहे हो; ऐसा भी नहीं कि तुम्हें पूर्ण होने के लिए कुछ दुष्कर करना होगा। यह अन्यत्र और कहीं पहुंचने की यात्रा भी नहीं है, तुम कहीं और नहीं जा रहे हो। तुम अभी भी वहीं हो। जो उपलब्ध किया जा सकता है, वह उपलब्ध ही है।

इस भाव को अपने में गहराने दो। तभी समझोगे कि ऐसी विधियां कैसे सहयोगी होती हैं। अगर अध्यात्म कोई उपलब्धि है तो सचमुच वह कठिन होगा; कठिन ही नहीं, दरअसल असंभव होगा। अगर तुम पहले से ही आध्यात्मिक नहीं हो तो फिर आध्यात्मिक नहीं हो सकते। कभी नहीं होओगे। क्योंकि वह

आध्यात्मिक कैसे होगा जो आध्यात्मिक नहीं है ? अगर तुम अभी दिव्य नहीं हो तो फिर कोई संभावना नहीं है, उपाय नहीं है। तुम जो भी चेष्टा करो, लेकिन अगर तुम दिव्य नहीं हो तो उस चेष्टा से दिव्यता नहीं पैदा हो सकती। तुम भागवत नहीं हो तो तुम्हारी चेष्टा से भगवत्ता नहीं पैदा की जा सकती है। तब वह असंभव चेष्टा है।

लेकिन सारा मामला उलटा है। तुम अभी वही हो जो होना चाहते हो। तुम्हारी कामना का लक्ष्य तुममें अभी ही उपस्थित है। यहां और अभी, इसी क्षण तुम वह हो जिसे भगवत्ता कहते हैं। परमात्मा यहीं है; वही है। यही कारण है कि आसान विधियां काम आ सकती हैं। वह उपलब्धि नहीं है, अनावरण है, आविष्कार है। मगर वह छिपा है, और बहुत छोटी-छोटी चीजों में छिपा है। जैसे तुम्हारा शरीर वस्त्रों में छिपा रहता है, वैसे ही अध्यात्म भी कुछ वस्त्रों में छिपा है। उन्हीं वस्त्रों को हम व्यक्तित्व कहते हैं। तुम यहां और अभी नग्न हो सकते हो; वैसे ही तुम्हारा अध्यात्म भी अनावृत, आविष्कृत हो सकता है।

लेकिन तुम नहीं जानते हो कि वे वस्त्र क्या हैं। तुम नहीं जानते कि तुम कैसे उनके भीतर छिपे हो। और तुम नहीं जानते कि कैसे नग्न हुआ जाता है। इतने समय से तुम वस्त्रों के भीतर रहते आए हो, जन्मों-जन्मों से तुम वस्त्रों के साथ ही जीए हो। और तुमने उनके साथ ऐसा तादात्म्य साध लिया है कि अब तुम भी नहीं सोचते कि ये वस्त्र हैं। तुम तो सोचते हो कि ये वस्त्र ही मैं हूं। वही बाधा है।

उदाहरण के लिए, तुम्हारे पास खजाना है जिसे तुम भूल गए हो या तुम्हें जिसकी अभी तक पहचान नहीं हुई है कि यह खजाना है और तुम सड़कों पर भीख मांग रहे हो। तुम भिखारी हो। अगर कोई तुमसे कहे कि जाओ और अपने घर के भीतर देखो; तुम्हें भिखारी होने की जरूरत नहीं है, तुम इसी क्षण सम्राट हो सकते हो ! तो तुम्हारे भीतर का भिखारी उससे अवश्य कहेगा, कैसी मूर्खता की बातें करते हो ? मैं इसी क्षण सम्राट कैसे हो सकता है ? वर्षों से भीख मांग रहा हूं और अभी तक भिखारी का भिखारी हूं। और अगर जन्मों तक भी भीख मांगूं, तो भी मैं सम्राट नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारा यह वक्तव्य बिलकुल अनर्गल और तर्कशून्य है कि तुम इसी क्षण सम्राट हो सकते हो।

असंभव है यह। भिखारी को इसका भरोसा नहीं हो सकता। क्यों ? क्योंकि भीख मांगने वाला मन एक लंबी आदत है। लेकिन अगर खजाना घर में गड़ा है तो मामूली खुदाई से, थोड़ी मिट्टी हटाने से वह पाया जा सकता है। और फिर तुरंत वह भिखारी नहीं रहेगा, वह सम्राट हो जाएगा।

यही बात अध्यात्म के साथ है। वह छिपा हुआ खजाना है। किसी भविष्य में कहीं कुछ उपलब्ध करने को नहीं है। तुमने अभी तक उसे पहचाना नहीं है; लेकिन वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। तुम ही खजाना हो। और कैसी विडंबना है कि तुम भीख मांगते हो !

इसलिए आसान विधियां भी काम कर सकती हैं। जमीन खोदना, थोड़ी मिट्टी हटाना बड़ा प्रयत्न नहीं है; और तुम सम्राट हो सकते हो। तुम्हें मिट्टी हटाने के लिए थोड़ी खुदाई करनी है। और जब मैं मिट्टी हटाने की बात कहता हूं तो सिर्फ प्रतीक के लिए नहीं कहता हूं। अक्षरशः तुम्हारा शरीर मिट्टी का अंश है, और तुमने उससे तादात्म्य कर लिया है। इस मिट्टी को जरा हटाओ, जरा-सा गड्ढा बनाओ और तुम्हें खजाने का पता मिल जाएगा।

यही कारण है कि यह प्रश्न बहुतों को उठेगा। सच में हरेक व्यक्ति यह प्रश्न पूछेगा— ऐसी छोटी-सी विधि, श्वास-क्रिया के प्रति सजग होना, आने वाली और जाने वाली श्वास के प्रति होशपूर्ण होना और दोनों के बीच अंतराल को प्राप्त करना, क्या यह काफी है ? क्या ऐसी सरल चीज ज्ञानोपलब्धि के लिए काफी है ? क्या तुम्हारे और बुद्ध के बीच इतना ही फर्क है कि तुमने दो श्वासों के बीच के अंतराल को नहीं प्राप्त किया है और बुद्ध ने प्राप्त कर लिया है ? बस इतना ही ?

बात अतर्क्य लगती है, बुद्ध के और तुम्हारे बीच की दूरी विशाल है। यह दूरी अनंत मालूम होती है। भिखारी और सम्राट के बीच अनंत फासला है; लेकिन अगर छिपे खजाने की बात है तो भिखारी शीघ्र ही सम्राट भी हो सकता है। बुद्ध भी तुम्हारी तरह कभी भिखारी थे। वे सदा से सम्राट नहीं थे। एक खास बिंदु पर भिखारी मर गया और वे स्वामी हो गए।

यह कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध धीरे-धीरे संग्रह किए चलते हैं और किसी दिन भिखारी न रहकर सम्राट हो जाते हैं। नहीं, अगर संग्रह की ही बात है तो भिखारी सम्राट नहीं हो सकता, तब भी वह भिखारी ही रहेगा। वह समृद्ध भिखारी हो सकता है, लेकिन भिखारी ही रहेगा। और समृद्ध भिखारी गरीब भिखारी से बड़ा भिखारी है। बुद्ध एक दिन अचानक आंतरिक खजाने को पा लेते हैं। तब वे भिखारी नहीं हैं, स्वामी हैं। गौतम सिद्धार्थ और गौतम बुद्ध के बीच का फासला अंतहीन है। और वही फासला तुम्हारे और बुद्ध के बीच भी है। लेकिन वह खजाना तुम्हारे भीतर भी उतना ही छिपा है, जितना बुद्ध के भीतर छिपा था। इसलिए एक छोटी, बहुत छोटी विधि सहयोगी हो सकती है।

एक दूसरा उदाहरण लें। एक आदमी अंधी, बीमार आंख लिए पैदा होता है। एक अंधे के लिए संसार बिलकुल दूसरी चीज है। लेकिन एक छोटा-सा आपरेशन, छोटी-सी शल्य-चिकित्सा पूरी बात चीज को बदल दे सकती है। क्योंकि सिर्फ आंखों को दुरुस्त करना है। और जिस क्षण आंखें तैयार हुईं कि वह देखने लगेगा, क्योंकि देखने वाला तो उसके भीतर ही छिपा है। द्रष्टा तो मौजूद ही है, केवल खिड़की की कमी है। तुम किसी घर में हो जिसमें खिड़की नहीं है। दीवार में एक छेद बना लो और अचानक तुम बाहर देखने लगोगे।

हम वही हैं जो हम होंगे, जो हमें होना चाहिए, जो हम होने वाले हैं। भविष्य वर्तमान में ही छिपा है। समस्त संभावना बीज में छिपी है। केवल खिड़की खोलनी है; केवल छोटा-सा आपरेशन करना है। अगर तुम यह समझ सको, यह कि अध्यात्म है ही, वही है, तो फिर यह समस्या नहीं है कि छोटी-सी विधि से कैसे काम चलेगा ?

असल में बड़े प्रयत्न की जरूरत नहीं है। छोटे प्रयत्न ही चाहिए। प्रयत्न जितना छोटा हो उतना अच्छा। यही कारण है कि कई बार ऐसा होता है कि तुम जितनी ही चेष्टा करते हो, उपलब्धि उतनी ही कठिन हो जाती है। तुम्हारा प्रयास, तुम्हारा तनाव, तुम्हारी व्यस्तता, तुम्हारी कामना, तुम्हारी अपेक्षा, सब बाधा बन जाता है। लेकिन एक छोटे से प्रयत्न से जिसे वे झेन में प्रयत्नहीन प्रयत्न कहते हैं—ऐसा करना कि न करने जैसा हो—घटना आसानी से घट जाती है। तुम उसके पीछे जितना अधिक पागल होते हो संभावना उतनी ही कम हो जाती है। क्योंकि जहां सूई से काम चल जाता है, वहां तुम तलवार चला रहे हो। तलवार काम नहीं देगी। वह बड़ी हो सकती है, लेकिन जहां सुई की जरूरत है वहां तलवार क्या करेगी ?

किसी कसाई के पास जाओ; वहां बड़े-बड़े औजार मिलेंगे। और किसी मस्तिष्क के सर्जन के पास जाओ; वहां बड़े-बड़े औजार नहीं मिलेंगे। और अगर मिलें तो वहां से झटपट खिसक जाना। मस्तिष्क का सर्जन कसाई नहीं है। उसे बहुत छोटे-छोटे औजारों की जरूरत है। वे जितने छोटे हों उतना अच्छा।

आध्यात्मिक विधियां अति सूक्ष्म हैं; वे स्थूल नहीं हैं। वे स्थूल नहीं हो सकतीं, क्योंकि अध्यात्म की शल्य-चिकित्सा और भी सूक्ष्म है। सर्जन को मस्तिष्क के भीतर स्थूल पदार्थ के साथ ही काम करना है, लेकिन जब तुम आध्यात्मिक तल पर काम करते हो, तो बात बहुत सूक्ष्म हो जाती है। वहां शल्य-चिकित्सा, ज्यादा, और ज्यादा सौंदर्यपरक हो जाती है। वहां स्थूल पदार्थ नहीं है। सब कुछ सूक्ष्म हो जाता है वहां। यह एक बात हुई।

और दूसरी बात प्रश्न में पूछी गई है कि 'छोटी बात से बड़ा परिणाम कैसे संभव है ?'

यह धारणा अबुद्धिपूर्ण और अवैज्ञानिक है। विज्ञान अब जानता है कि कण जितना छोटा होगा, उतना आणविक होगा, उतना ही विस्फोटक होगा। वह जितना छोटा होगा उतना ही बड़ा उसका परिणाम होगा। क्या तुम 1945 के पहले सोच सकते थे, क्या कोई भी कल्पनाशील कवि या स्वप्नद्रष्टा सोच सकता था कि दो आणविक विस्फोट जापान के दो बड़े नगरों को, हिरोशिमा और नागासाकी को पूरी तरह मिटा डालेंगे ? क्षणों में दो लाख लोगों का जीवन समाप्त हो गया। और कौन-सी विस्फोटक शक्ति इस्तेमाल की गई थी ? एक अणु ! सबसे छोटे कण ने दो नगर ध्वस्त कर दिए।

उस अणु को तुम नहीं देख सकते हो। न केवल आंख से उसे नहीं देख सकते, किसी उपाय से भी उसे नहीं देख सकते हो। किसी भी यंत्र से अणु को नहीं देखा जा सकता है। हम उसके परिणाम भर देख सकते हैं। इसलिए मत सोचो कि हिमालय बड़ा है, क्योंकि उसका शरीर इतना बड़ा है। एक आणविक विस्फोट के सामने हिमालय नपुंसक है। एक छोटा परमाणु पूरे हिमालय को नष्ट कर सकता है। जरूरी नहीं है कि स्थूल पदार्थ के बड़े होने से उसकी शक्ति भी बड़ी हो। सच्चाई उलटी है कि इकाई जितनी छोटी होगी वह उतनी ही बेधक होगी। इकाई जितनी छोटी होगी उतनी ही घनी शक्ति से वह भरी होगी।

ये छोटी-छोटी विधियां आणविक हैं। जो लोग बड़ी चीजें कर रहे हैं उन्हें परमाणु-विज्ञान का पता नहीं है। तुम सोचोगे कि जो आदमी छोटे परमाणुओं के साथ काम करता है वह छोटा है और जो हिमालय के साथ काम करता है वह बड़ा है। हिटलर विशाल भीड़ के साथ काम करता था; माओ भी विशाल भीड़ के साथ काम करता है। और आइंस्टीन और प्लांक अपनी-अपनी प्रयोगशालाओं में पदार्थ की छोटी इकाइयों के साथ, ऊर्जा-कणों के साथ काम करते थे। लेकिन अंततः आइंस्टीन की शोध के सामने राजनीतिज्ञ नपुंसक सिद्ध हुए। वे बड़े पैमाने पर काम करते थे, लेकिन उन्हें छोटी इकाई के रहस्य का ज्ञान नहीं था।

नीतिवादी भी सदा बड़े तलों पर काम करते हैं। लेकिन ये स्थूल तल हैं। चीज बहुत बड़ी दिखाई पड़ती है। वे अपना जीवन सदाचार सिखाने में, यह-वह साधने में, संयम में लगा देते हैं। उनका पूरा ढांचा बड़ा मालूम होता है।

लेकिन तंत्र इस बात की चिंता नहीं लेता। तंत्र मनुष्य के आणविक रहस्यों

का, मनुष्य के मन का, मनुष्य की चेतना की चिंता करता है। और तंत्र ने आणविक रहस्यों को प्राप्त कर लिया है। ये विधियां आणविक विधियां हैं। अगर तुम उन्हें साध लो तो परिणाम विस्फोटक होगा, परिणाम जागतिक होगा।

एक दूसरी बात को भी ख्याल में ले लेना है। तुम कहते हो कि ऐसे छोटे से सरल प्रयोग से कोई ज्ञानोपलब्ध कैसे हो सकता है ? तो तुम यह बात उसको प्रयोग में लाए बिना ही कहते हो। अगर प्रयोग करोगे तो कभी नहीं कहोगे कि वह छोटा-सा सरल प्रयोग है। वैसा वह इसलिए मालूम देता है कि दो-तीन वाक्यों से पूरे प्रयोग को रख दिया गया है। क्या तुम जानते हो कि अणु-विज्ञान का सूत्र क्या है ? पूरा सूत्र दो या तीन शब्दों में है। और उन्हीं दो-तीन शब्दों से, जो समझते हैं और प्रयोग करना जानते हैं, वे पूरी पृथ्वी को नष्ट कर सकते हैं। लेकिन सूत्र बहुत छोटा है।

ये विधियां भी सूत्र हैं। अगर तुम सूत्र को देखोगे तो वह बहुत छोटा, आसान दिखाई पड़ेगा। लेकिन वह छोटा, आसान है नहीं। उसे प्रयोग करने की कोशिश करो। प्रयोग करोगे तो समझोगे कि वह आसान नहीं है। वह सरल दिखाई पड़ती है, लेकिन बहुत गहनतम चीज है। हम प्रक्रिया का विश्लेषण करेंगे तो तुम समझोगे।

जब तुम श्वास लेते हो तो श्वास को अनुभव नहीं करते। तुमने श्वास को कभी नहीं अनुभव किया है, यद्यपि तुम यह बात मानने को राजी नहीं होओगे। तुम कहोगे, यह बात सही नहीं है। हो सकता है हम सतत जागरूक न हों, लेकिन उसे अनुभव अवश्य करते हैं।

नहीं, तुमने श्वास को कभी नहीं जाना है; तुमने श्वास के मार्ग को जाना है। समुद्र को देखो, उसमें लहरें हैं। तुम लहरों को देखते हो। लेकिन वे लहरें हवा द्वारा पैदा होती हैं। और तुम हवा को नहीं देखते, हवा द्वारा पैदा की गई लहरों को देखते हो। वैसे ही जब तुम श्वास भीतर ले जाते हो तो वह नथुनों को छूती है। और तुम नथुनों को अनुभव करते हो, श्वास को अनुभव नहीं करते। श्वास नीचे जाती है और तुम उसके जाने के मार्ग को महसूस करते हो। तुम स्पर्श और मार्ग को अनुभव करते हो।

जब शिव कहते हैं, बोधपूर्ण हो, तो वे क्या कहना चाहते हैं ? पहले तो तुम मार्ग के प्रति बोधपूर्ण होओगे। और जब मार्ग के प्रति पूरी तरह बोधपूर्ण हो जाओगे तो फिर धीरे-धीरे स्वयं श्वास के प्रति बोधपूर्ण होओगे। और जब श्वास को भी जान लोगे तब फिर अंतराल को भी जान जाओगे।

यह बात उतनी आसान नहीं है जितनी आसान मालूम देती है। उतनी आसान

नहीं है। तंत्र के लिए, समस्त भारतीय खोज के लिए बोध के अनेक तल हैं। अगर मैं तुम्हें आलिंगन करूं तो पहले तुम अपने शरीर पर मेरे स्पर्श को अनुभव करोगे। पहले ही मेरे प्रेम को अनुभव नहीं करोगे, क्योंकि प्रेम इतना स्थूल नहीं है।

साधारणतः हम प्रेम के प्रति कभी बोधपूर्ण नहीं होते, हम शरीर की गति को ही महसूस करते हैं। हम प्रेमपूर्ण गति को जानते हैं और प्रेम-शून्य गति को जानते हैं, लेकिन हम कभी स्वयं प्रेम को नहीं जानते। अगर मैं तुम्हें चूमूं तो तुम उसके स्पर्श को जानोगे, मेरे प्रेम को नहीं जानोगे। वह प्रेम बहुत सूक्ष्म बात है। और जब तक तुम प्रेम को नहीं जान लेते तब तक वह चुंबन मृत है, उसका कुछ मतलब नहीं है। अगर तुम मेरे प्रेम को जानो तो ही तुम मुझे जान पाओगे। क्योंकि वह और भी गहरी बात है।

श्वास भीतर जाती है; तुम स्पर्श को ही जानते हो, श्वास को नहीं जानते। लेकिन साधारणतः तो तुम स्पर्श को भी नहीं महसूस करते हो। जब कुछ अड़चन आती है तो ही उसे जानते हो, अन्यथा नहीं। तो पहले चरण में तुम मार्ग को ही जानोगे जहां श्वास छूती मालूम देगी। तब धीरे-धीरे तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी, और वर्षों लग जाएंगे जब स्पर्श ही नहीं, श्वास की गति के प्रति भी बोधपूर्ण हो सकोगे। तब तंत्र कहता है, तुम प्राण को जान लोगे। और उसके बाद ही वह अंतराल मिलता है जहां श्वास ठहर जाती है, वह केंद्र मिलता है जहां श्वास स्पर्श करती है, या वह विलय बिंदु या मोड़ मिलता है जहां अंतःश्वास बहिर्श्वास बनती है।

यह चरण बहुत कठिन है; उतना आसान यह नहीं है। जब साधना में उतरोगे, जब इस केंद्र के पास जाओगे, तब पता चलेगा कि यह कितना कठिन है। श्वास के पार इस केंद्र तक पहुंचने के लिए बुद्ध को छह वर्ष लग गए थे। इस मोड़ पर आने के लिए उन्हें छह वर्षों की लंबी, कठिन यात्रा करनी पड़ी थी। तब घटना घट पाई। महावीर इस पर बारह वर्षों तक श्रम करते रहे, तब घटना घटी। लेकिन सूत्र सरल है और सिद्धांततः कोई बाधा नहीं है कि इसी क्षण न घटे। लेकिन तुम वह बाधा हो; तुम्हें हटा दिया जाए तो इसी क्षण घट सकता है।

खजाना है, और उपाय भी पता है। तुम खोद सकते हो, लेकिन नहीं खोदोगे। आसानी का यह प्रश्न उठाना भी खुदाई से बचने की चाल है। क्योंकि तुम्हारा मन कहता है, कैसी आसान बात है ! मूर्ख मत बनो; इतनी आसान चीज से तुम बुद्ध कैसे हो सकते हो ? यह होने वाली बात नहीं है। और तब तुम कुछ भी नहीं करोगे।

मन बहुत चालाक है। अगर मैं कहूं कि यह कठिन है तो मन कहेगा कि यह कठिन बात तुम्हारे बस की नहीं है। और अगर कहूं कि आसान है तो मन कहेगा कि यह इतना आसान है कि केवल मूर्ख इस पर विश्वास करेंगे। मन चीजों की बुद्धि-संगत व्याख्या किए जाता है और करने से बचता रहता है।

मन बाधाएं खड़ी करता है। इसे आसान सोचना भी कठिनाई बनेगा और कठिन सोचना भी। अगर यह कठिन है तो तुम क्या करोगे ? तुम न आसान चीज कर सकते हो, न कठिन चीज कर सकते हो। तो बताओ कि क्या कर सकते हो। अगर तुम कठिन चीज कर सकते हो तो मैं इसे कठिन बना दूंगा। और अगर आसान चीज ही कर सकते हो तो मैं इसे आसान बना दूंगा। यह दोनों है और यह इस पर निर्भर है कि इसकी व्याख्या कैसे की जाती है। एक चीज जरूरी है कि तुम कुछ करो। अगर कुछ नहीं करना है तो मन तुम्हें हमेशा दलीलें दे देगा।

सिद्धांततः यह यहां और अभी संभव है, कोई वास्तविक बाधा नहीं है। लेकिन बाधाएं हैं। वे वास्तविक न हों, वे महज मानसिक हों, वे तुम्हारे भ्रम ही हों, लेकिन वे हैं। अगर मैं कहूं कि मत डरो, आगे बढ़ो; जिस चीज को तुम सांप समझते हो वह सांप नहीं है, महज रस्सी है, तो भी तुम्हारा डर कायम रह सकता है। तुम्हें तो वह सांप ही मालूम पड़ता है।

इसलिए मैं कुछ भी कहूं, उससे बात नहीं बनने को है। तुम तो कांप रहे हो, तुम बचना चाहते हो, तुम भागना चाहते हो। मैं कहता हूं कि रस्सी है और तुम्हारा मन कहेगा कि यह आदमी सांप के साथ साजिश में सम्मिलित हो सकता है। कुछ गड़बड़ जरूर है, अन्यथा यह आदमी क्यों मुझे सांप के मुंह में भेज रहा है ? यह हो सकता है मेरी मृत्यु में उत्सुक हो या किसी और बात में उत्सुक हो। अगर मैं तुम्हें बहुत विश्वास दिलाने की कोशिश करूं कि रस्सी ही है तो उसका मतलब होगा कि किसी-न-किसी तरह तुम्हें सांप के पास भेजने में लगा हूं। अगर मैं कहूं कि सिद्धांततः रस्सी को इसी क्षण रस्सी के रूप में देखा जा सकता है तो भी तुम्हारा मन अनेक सवाल उठा सकता है।

यथार्थ में कोई संकट नहीं है; यथार्थ में कोई समस्या नहीं है। न कभी रही है; न कभी रहेगी। जो भी समस्या है वह मन में है। और तुम यथार्थ को मन के द्वारा देखते हो, इस तरह यथार्थ समस्यामूलक बन जाता है। तुम्हारा मन प्रिज़्म की भांति काम करता है; वह यथार्थ को बांट देता है और तब समस्याएं पैदा करता है। इतना ही नहीं, वह समाधान भी पैदा करता है जो कि और गहरी समस्याओं को जन्म देता है। सच तो यह है कि कोई समस्या ही नहीं है जिसको

हल किया जाए। सत्य बिलकुल समस्यामुक्त है; कोई समस्या ही नहीं है।

लेकिन तुम समस्या के बिना देख ही नहीं सकते; तुम जहां देखते हो वहीं समस्या खड़ी कर देते हो। तुम्हारी दृष्टि समस्यामूलक है। मैंने तुम्हें यह श्वास की विधि बताई। अब मन कहता है, यह तो इतना आसान है ! क्यों, मन इसे आसान क्यों कहता है ?

जब पहली बार भाप के इंजन का आविष्कार हुआ था तो किसी को उस पर विश्वास नहीं हुआ। वह इतना आसान दिखाई दिया कि विश्वास कैसे हो ? वही भाप जो तुम्हारे रसोईघर में, तुम्हारी चाय की केतली में तुम्हें रोज दिखाई देती है, उससे एक इंजन चलेगा, उससे सैकड़ों लोग ढोए जाएंगे, यह किसी को विश्वास नहीं हुआ।

तुम्हें मालूम है कि इंग्लैंड में क्या हुआ ? जब पहली रेलगाड़ी रवाना हुई तो कोई उसमें बैठने को राजी नहीं हुआ। अनेक लोगों को फुसलाया गया, घूस तक दी गई। गाड़ी में बैठने के लिए उन्हें रुपए दिए गए। लेकिन आखिरी क्षण में वे भाग खड़े हुए। उन्होंने कहा कि पहली बात तो यह है कि भाप यह चमत्कार नहीं कर सकती। भाप जैसी सरल चीज यह चमत्कार कैसे कर सकती है ? और अगर इंजन चलता है तो उसका मतलब साफ है कि उसमें कहीं शैतान काम कर रहा है। भाप नहीं, शैतान का काम है यह। और दूसरी बात कि गाड़ी चल पड़ी, तो कौन जिम्मा लेगा कि वह रुक भी सकेगी ?

कोई आदमी जिम्मा नहीं ले सकता था, क्योंकि यह पहली गाड़ी थी। इसके पहले वह कभी नहीं रुकी थी; रुकने की संभावना भर थी। अनुभव तो था नहीं कि विज्ञान कहता कि हां; रुकेगी। सिद्धांततः वह रुकने वाली थी। लेकिन लोग सिद्धांत में उत्सुक नहीं थे। वे जानना चाहते थे कि गाड़ी को रोकने का यथार्थ अनुभव था या नहीं था। कहीं यह नहीं रुकी तो चढ़ने वालों का क्या होगा ?

तो जेल से बारह कैदी उस पर चढ़ने के लिए लाए गए। उन्हें मरना ही था; उन्हें मृत्युदंड मिला हुआ था; इसलिए गाड़ी के रुकने की समस्या नहीं रही। उसमें गाड़ी का पागल चालक बैठा जो समझता था कि गाड़ी रुकेगी। वह वैज्ञानिक बैठा जिसने उसका आविष्कार किया था और वे बारह यात्री बैठे जिन्हें किसी तरह मरना ही था।

उस समय उन्होंने भी यही कहा था कि भाप जैसी सरल चीज क्या करेगी ! लेकिन अब यह बात कोई नहीं कहता है, क्योंकि अब भाप काम कर रही है और तुम जानते हो।

सब कुछ सरल है; सत्य सरल है। अज्ञान के कारण वह जटिल मालूम देता है, अन्यथा सब कुछ सरल है। एक बार इसे जान गए तो वह सरल ही है। लेकिन जानना जरूर कठिन होगा। याद रहे, सत्य के कारण नहीं, तुम्हारे मन के कारण जानना कठिन होगा। यह विधि सरल है, लेकिन यह तुम्हारे लिए सरल नहीं होगी। तुम्हारा मन कठिनाई पैदा करेगा; इसलिए प्रयोग करके देखो।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है :
अगर मैं श्वास के प्रति सजग होने की इस विधि का प्रयोग करूं, अगर मैं श्वास-प्रश्वास को अवधान दूं, तो मैं कोई दूसरा काम नहीं कर सकता। सारा अवधान तो सजग होने में लग जाता है। अगर और कुछ करूं तो श्वास के प्रति बोधपूर्ण नहीं रह सकता।

यह होगा। इसलिए आरंभ में सुबह या शाम को, या कभी भी, एक निश्चित समय चुन लो और घंटेभर यह प्रयोग करो। उस समय कोई दूसरा काम मत करो। प्रतिदिन घंटेभर सिर्फ इसका प्रयोग करो। एक बार इससे परिचित हो गए, इसके साथ लयबद्ध हो गए, तो फिर समस्या नहीं रहेगी। तब तुम सड़क पर चलते हुए भी बोधपूर्ण रह सकते हो।

बोध और अवधान में फर्क है। जब तुम किसी चीज को अवधान देते हो तो वह ऐकांतिक है, अनन्य है। वह अवधान केवल एक के प्रति है; उस समय तुम्हें अन्य सभी चीजों से अपना अवधान हटा लेना पड़ता है। इसलिए अवधान एक तनाव बन जाता है। अगर तुम अपनी श्वास को अवधान देते हो, श्वास को देख रहे होते हो, तो साथ ही राह चलने या ड्राइविंग को अवधान नहीं दे सकते। इसलिए ड्राइविंग करते समय इसका प्रयोग मत करना, क्योंकि तुम दोनों को एक साथ अवधान नहीं दे सकते। अवधान का अर्थ ही है कि एक समय में एक चीज को ही दिया जा सकता है।

बोध बहुत भिन्न चीज है। वह ऐकांतिक नहीं है। बोध में अवधान देना नहीं है, अवधानपूर्ण होना है। ध्यान देना नहीं है, ध्यानपूर्ण होना है। यह मात्र सजग होना है, होशपूर्ण होना है। तुम सजग तब होते हो जब सब कुछ के प्रति सजग होते हो। तुम अपनी श्वास के प्रति सजग हो और राह चलते राही के प्रति भी सजग हो। सड़क पर कोई शोर मचा रहा है, रेलगाड़ी निकल रही है, ऊपर कोई वायुयान उड़ा जाता है; सब कुछ उस सजगता में, जाग में सम्मिलित है। बोध सर्वग्राही है, अवधान ऐकांतिक।

लेकिन आरंभ अवधान से करना है। इसलिए रोज निश्चित समय पर प्रयोग करो। घंटेभर के लिए अपनी श्वास को अवधान दो, उसे देखा करो। धीरे-धीरे तुम्हारा अवधान बोध में बदल जाएगा। उसके बाद दूसरा सरल प्रयोग करो। उदाहरण के लिए जब चल रहे हो तो अवधानपूर्वक चलो और चलने और श्वास-क्रिया दोनों के प्रति होश रखो। दोनों क्रियाओं के बीच, चलने और श्वास लेने के बीच विरोध मत पैदा करो। दोनों के ही द्रष्टा बनो। और यह कठिन नहीं है।

उदाहरण के लिए देखो। यहां मैं एक चेहरे को अवधान दे सकता हूं। जब मैं एक चेहरे को देख रहा हूं तो अन्य सभी चेहरे मेरे लिए नहीं होंगे। अगर एक ही चेहरे के प्रति मेरा अवधान है तो बाकी सब चेहरे खो गए, अवधान के बाहर हो गए। और अगर मैं उस चेहरे की सिर्फ नाक पर ही अवधान को केंद्रित करूं तो फिर पूरा चेहरा, बाकी चेहरा अवधान के दायरे से बाहर हो गया। इस तरह मैं अपने अवधान को संकुचित किए जाता हूं।

विपरीत भी संभव है। मैं पूरे चेहरे को अवधान देता हूं। तब आंख, नाक, सब उसमें सम्मिलित है। फिर मैं अपनी दृष्टि को और फैलाता हूं, मैं अब तुम्हें व्यक्ति की तरह नहीं, समूह की तरह देखता हूं, तब सब समूह मेरे अवधान में सम्मिलित है। फिर सामने सड़क है और उसका शोरगुल है। अगर मैं तुम्हें सड़क और उसके शोरगुल से भिन्न समझूं तो मैं सड़क और शोरगुल को अपने अवधान से बाहर करता हूं। लेकिन मैं तुम्हें और सड़क दोनों को एक साथ भी देख सकता हूं। तब मैं दोनों के प्रति, तुम्हारे और सड़क के प्रति बोधपूर्ण हो सकता हूं। इस तरह मैं पूरे ब्रह्मांड के प्रति बोधपूर्ण हो सकता हूं।

यह बात तुम्हारी दृष्टि पर, तुम्हारे दृष्टि-क्षेत्र पर निर्भर है। वह बड़े से बड़ा हो सकता है। लेकिन पहले अवधान से शुरू करो और याद रखो कि तुम्हें बोध को उपलब्ध होना है। इसलिए निश्चित समय रख लो। सुबह का समय अच्छा रहेगा, क्योंकि तब तुम ताजा होते हो। उस समय ऊर्जा प्रबल रहती है; सब कुछ जाग रहा है। सबेरे तुम ज्यादा जीवंत होते हो।

शरीर-शास्त्री कहते हैं कि सुबह में तुम अधिक जीवंत ही नहीं होते, उस समय तुम्हारे शरीर की ऊंचाई भी बढ़ जाती है। शाम की बजाय सुबह तुम्हारी ऊंचाई भी अधिक होती है। अगर तुम छह फीट ऊंचे हो तो सुबह आधा इंच अधिक ऊंचे हो जाते हो। शाम होते-होते फिर छह फीट हो जाते हो। क्योंकि थकावट के कारण तुम्हारी रीढ़ संकुचित हो जाती है। इसलिए सुबह के वक्त तुम ताजा, युवा और जीवंत रहते हो।

इसे करो—ध्यान को अपने कार्यक्रम में अंतिम मत रखो, उसे प्रथम स्थान दो। जब तुम्हें लगे कि अब यह प्रयत्न न रहा, जब तुम पूरे घंटेभर अवधानपूर्वक श्वास लेते रहे और उसे ही जानते रहे, जब तुमने अनायास श्वास के अवधान को हासिल कर लिया, जब तुम आराम के साथ और किसी बल प्रयोग के बिना इस अवधान का आनंद लेने लगे, तभी समझना कि उपलब्धि हुई।

और तब उसमें और कुछ जोड़ो, जैसे कि चलने को जोड़ दो। अब श्वास के साथ चलने को भी याद रखो। और इसी तरह जोड़ते चले जाओ। कुछ समय के बाद तुम अपनी श्वास-क्रिया के प्रति सतत सजग बने रहोगे—यहां तक कि नींद में भी सजग रहने लगोगे। और जब तक नींद में सजगता नहीं रहती तब तक गहराई को नहीं जान सकोगे। और ऐसी सजगता आती है, धीरे-धीरे आती है।

इसके लिए धैर्य की जरूरत है और साथ ही सही ढंग से आरंभ करने की। इसे जान लो, क्योंकि मनुष्य का चालाक मन सदा गलत ढंग से आरंभ करने को कहता है। तब तुम दो-तीन दिन में ही इसे यह कहकर छोड़ दोगे कि यह असंभव प्रयास है। मन गलत ढंग से आरंभ करा देगा। इसलिए सदा ध्यान रखो कि सही ढंग से आरंभ किया जाए, क्योंकि सही शुरुआत का मतलब है कि आधा काम तो हो ही गया।

लेकिन हम गलत ढंग से शुरू करते हैं। तुम भलीभांति जानते हो कि अवधान कठिन चीज है। यह इसलिए कठिन है कि तुम बिलकुल सोए हुए हो। अगर तुमने किसी और जरूरी काम के साथ-साथ श्वास को अवधान देना शुरू किया तो तुम सफल नहीं हो सकोगे। और तुम अपने जरूरी काम को तो नहीं छोड़ोगे, श्वास को अवधान देना जरूर बंद कर दोगे। इसलिए अपने लिए अनावश्यक समस्याएं मत पैदा करो। चौबीस घंटे में थोड़ा-सा समय तो निकाल ही सकते हो; चालीस मिनट से चल जाएगा। इसलिए प्रयोग करो।

मन बहुत बहाने करेगा। वह कहेगा — समय कहां है ? पहले से ही कितने काम करने को पड़े हैं। या कहेगा — अभी तो संभव नहीं है; अभी स्थगित रखो। भविष्य में जब स्थिति अच्छी होगी तब करना। मन क्या कहता है, उससे सावधान रहो। मन का बहुत भरोसा मत करो। लेकिन मन पर हम संदेह नहीं करते हैं। हम सब कुछ पर संदेह करते हैं, अपने मन पर नहीं करते। वे लोग भी, जो संदेहवाद की, संदेह की, बुद्धि की ढेरों चर्चा करते हैं, वे भी अपने मन पर संदेह नहीं करते।

लेकिन यह तुम्हारा मन है जिसने तुम्हें उस हालत में ला रखा है जिसमें

तुम हो। अगर तुम नरक में हो तो तुम्हारा मन तुम्हें इस नरक में लाया है। लेकिन तुम्हें इस मार्गदर्शक पर कभी संदेह नहीं होता। तुम किसी भी गुरु पर संदेह कर सकते हो, अपने मन पर नहीं करते। अटूट श्रद्धा के साथ तुम अपने मन के गुरु का अनुगमन करते हो। और इसी मन ने तुम्हें इस उपद्रव में, इस संताप में ला खड़ा किया है जो तुम हो।

इसलिए अगर किसी पर संदेह करना है, तो पहले अपने मन पर ही संदेह करो। और जब भी मन कुछ कहे तो उस पर दो बार विचार करो। क्या यह सच है कि तुम्हें समय नहीं है ? क्या सच ही तुम्हारे पास ध्यान करने के लिए, ध्यान को देने के लिए घंटेभर का भी समय नहीं है ? इस बात पर फिर से विचार करो। एक बार फिर मन से पूछो— क्या दरअसल मेरे पास समय नहीं है ?

मुझे तो यह बात सच नहीं लगती। मैंने तो ऐसा आदमी नहीं देखा है जिसके पास पर्याप्त से ज्यादा समय न रहता हो। मैंने लोगों को यह कहकर ताश खेलते देखा है कि हम समय काट रहे हैं। वे सिनेमा जाते हैं और कहते हैं, और क्या किया जाए ! समय काटने को वे गपशप कर रहे हैं, एक ही अखबार को बार-बार पढ़ रहे हैं, उन्हीं बातों पर चर्चा कर रहे हैं जिन पर जिंदगीभर चर्चा करते रहे हैं। और वे ही लोग कहते हैं— समय नहीं है। अनावश्यक कामों के लिए उन्हें काफी समय है। क्यों ?

अनावश्यक काम में लगे रहने से मन को कोई खतरा नहीं है। लेकिन जिस क्षण तुम ध्यान की सोचते हो, मन सचेत हो जाता है। अब तुम खतरनाक आयाम में जा रहे हो। क्योंकि ध्यान का अर्थ मन की मृत्यु है। अगर तुम ध्यान में गए तो देर-अबेर तुम्हारे मन को विदा लेनी पड़ेगी, वह पूरी तरह समाप्त होगा। तब मन चौकस हो जाता है और अनेक बातें कहता है— समय कहां है ? समय भी है तो और महत्त्व के काम पड़े हैं। अभी रुको, ध्यान तो किसी भी समय कर सकते हो। धन ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। पहले धन इकट्ठा कर लो; फिर आराम से ध्यान करना। धन के बिना ध्यान कैसे होगा ? पहले धन पर ध्यान दो, तब ध्यान पर।

ध्यान को आसानी से टाला जा सकता है; ऐसा तुम्हें लगता है। क्योंकि ध्यान तुम्हारे अभी जीवित रहने के लिए जरूरी नहीं है। रोटी नहीं स्थगित की जा सकती; रोटी के बिना तुम मर जाओगे। धन को भी स्थगित नहीं किया जा सकता, क्योंकि तुम्हारी बुनियादी जरूरतों के लिए वह जरूरी है। ध्यान स्थगित किया जा सकता है। तुम्हारे जीवित रहने से इसका कोई संबंध नहीं है; तुम इसके

बिना भी जीवित रह सकते हो। दरअसल इसके बिना तुम आसानी से जीवित रह सकते हो।

जिस क्षण तुम ध्यान में गहरे उतरोगे, तुम कम-से-कम इस जमीन पर जीवित नहीं रहोगे। तुम विदा हो जाओगे। इस जीवन के वर्तुल से, चक्र से निकल ही जाओगे। ध्यान मृत्यु की तरह है; इसलिए मन भयभीत हो जाता है। ध्यान प्रेम की तरह है; इसलिए मन डर जाता है। और तब कहता है— इसे स्थगित करो। और तुम अनंत काल तक इसे स्थगित किए जा सकते हो। तुम्हारा मन सदा ही इस तरह की बातें कहे चला जाता है।

और यह मत सोचो कि मैं यह बात दूसरों के बाबत कह रहा हूं। मैं यह बात तुम्हारे बाबत कह रहा हूं। मैं ऐसे अनेक बुद्धिमान लोगों से मिला हूं जो ध्यान के संबंध में बहुत बुद्धिहीन बातें करते हैं।

एक सज्जन दिल्ली से आए। वे बड़े सरकारी अधिकारी हैं। वे यहां ध्यान सीखने के लिए ही आए थे। दिल्ली से आए थे और सात दिन यहां टिके। मैंने उनसे कहा कि सुबह ध्यान के लिए बंबई के चौपाटी समुद्रतट जाया करें। उन्होंने कहा कि यह कठिन है, मैं इतने सबेरे न उठ सकूंगा। और इस बात पर वे कभी विचार नहीं करेंगे कि उनके मन ने उनसे क्या कहा। क्या यह इतना कठिन है ? अब तुम समझो कि प्रयोग सरल हो सकता है, लेकिन तुम्हारा मन सरल नहीं है। मन कहता है— मैं सुबह छह बजे कैसे उठ सकूंगा ?

मैं एक बड़े नगर में था, और वहां के कलेक्टर रात के ग्यारह बजे मुझे मिलने आए। मैं सोने ही जा रहा था कि वे आए और बोले— बहुत जरूरी बात है। मैं अशांत हूं; मेरे लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है। मुझे कम-से-कम आधा घंटा दें और ध्यान सिखाएं। अन्यथा मुझे आत्महत्या करने की नौबत आ सकती है। मैं अत्यंत अशांत हूं और मैं इतना हताश हो चुका हूं कि मेरे आंतरिक संसार में कुछ घटना जरूरी है। मेरा बाह्य संसार तो उजड़ ही चुका है। मैंने उनसे कहा कि तब कल पांच बजे सुबह यहां आएं। लेकिन उन्होंने कहा, यह संभव नहीं है।

जीवन-मरण का सवाल है और वे पांच बजे नहीं उठ सकते ! उन्होंने कहा कि यह संभव नहीं है, क्योंकि मैं इतना सबेरे कभी नहीं उठता। इस पर मैंने कहा, अच्छा तब दस बजे दिन में आइए। पर उन्होंने कहा, यह कठिन है, क्योंकि साढ़े दस बजे तो मुझे दफ्तर जाना है।

वे एक दिन की छुट्टी नहीं ले सकते। और यह उनके जीवन-मरण का प्रश्न है ! तब मैंने उनसे पूछा, यह आपके जीवन-मरण का प्रश्न है या मेरे जीवन-मरण

का ? और वे कोई बुद्धिहीन व्यक्ति नहीं थे। काफी बुद्धिमान थे। ये चालाकियां ही बुद्धि की थीं।

इसलिए ऐसा मत सोचो कि तुम्हारा मन भी वैसी ही चालाकियां नहीं कर रहा है, वह बहुत बुद्धिमान है। और चूंकि तुम सोचते हो कि यह मेरा मन है, इसलिए तुम उस पर संदेह नहीं करते। यह तुम्हारा नहीं है; यह महज एक सामाजिक उपज है। यह तुम्हें दिया गया है; तुम पर लाद दिया गया है। बचपन से ही तुम किसी खास ढंग से शिक्षित और संस्कारित किए गए हो। तुम्हारा मन दूसरों द्वारा निर्मित हुआ है; मां-बाप, शिक्षक और समाज के द्वारा निर्मित हुआ है। यह अतीत है जो तुम्हारे मन को बनाता है और प्रभावित करता है। मुर्दा अतीत जीवित वर्तमान पर अपने को निरंतर आरोपित किए जाता है। और ये शिक्षक मृत अतीत के मात्र एजेंट हैं। और वे जीवित के विरोध में हैं। वे चीजों को जबरदस्ती तुम्हारे मन पर लादे जा रहे हैं।

लेकिन इस मन की तुम्हारे साथ ऐसी घनिष्ठता है कि अंतर करीब-करीब खो गया है और तुम्हारा उसके साथ तादात्म्य हो गया है। तुम कहते हो कि मैं हिंदू हूं। फिर सोचो, इस पर पुनर्विचार करो। तुम हिंदू नहीं हो, तुम्हें हिंदू मन दिया गया है। तुम तो मात्र एक सरल, निर्दोष मनुष्य पैदा हुए थे। न हिंदू, न मुसलमान। लेकिन फिर तुम्हें मुसलमान का या हिंदू का चित्त दिया गया। और तुम्हें एक खास ढंग में जबरदस्ती संस्कारित किया गया। और फिर जिंदगीभर इस मन में कुछ-न-कुछ जुड़ता ही गया। इस तरह मन भारी हो गया। तुम पर भारी हो गया है। तुम कुछ नहीं कह पाते, तुम पर मन की मनमानी चल रही है। तुम्हारे अनुभव भी तुम्हारे मन से ही जुड़ते रहे हैं। और तुम्हारा अतीत तुम्हारे एक-एक वर्तमान क्षण को निरंतर संस्कारित कर रहा है। अगर मैं तुमसे कुछ कहूं तो तुम उस पर ताजा ढंग से, खुले ढंग से विचार नहीं करोगे। तुम्हारा पुराना मन, तुम्हारा अतीत बीच में आ जाएगा और पक्ष या विपक्ष में बोलने लगेगा।

याद रखो कि तुम्हारा मन तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं है, वह तुम्हें तुम्हारे मां-बाप से मिला है। वैसे ही तुम्हारा मन तुम्हारा नहीं है, वह भी मां-बाप से मिला है। फिर तुम कौन हो ? कोई या तो शरीर से तादात्म्य किए बैठा है या मन से। तुम सोचते हो कि मैं युवा हूं, कि मैं बूढ़ा हूं; तुम सोचते हो कि मैं हिंदू हूं, कि जैन हूं, कि पारसी हूं। तुम नहीं हो। तुम तो शुद्ध चेतना की तरह पैदा हुए थे। ये सब कारागृह हैं।

ये विधियां तुम्हें आसान मालूम पड़ती हैं, वे आसान नहीं हैं। क्योंकि तुम्हारा

मन निरंतर अनेक जटिलताएं और समस्याएं पैदा करेगा।

अभी कुछ दिन पहले एक व्यक्ति मेरे पास आए। और बोले कि मैं आपके ध्यान का प्रयोग कर रहा हूं, लेकिन कृपया बताएं कि किस धर्मशास्त्र में उसका उल्लेख है ? अगर आप मुझे विश्वास दिला दें कि वह मेरे धर्मशास्त्र में है तो मेरे लिए आसान हो जाएगा।

लेकिन शास्त्र में उसके होने से ध्यान आसान कैसे हो जाएगा ? क्योंकि मन तब समस्या नहीं खड़ी करेगा। मन कहेगा कि ठीक है, यह हमारा है; हमें करना चाहिए। और अगर किसी और शास्त्र में लिखा है, तो मन उसके विरोध में हो जाएगा।

मैंने उनको पूछा, आप तो यह ध्यान तीन महीने से कर रहे हैं, आप कैसा अनुभव करते हैं ? उन्होंने कहा, अद्‌भुत। मुझे आश्चर्यजनक अनुभव हुआ है। लेकिन मुझे शास्त्र से कुछ प्रमाण दें।

उनका अपना अनुभव अपने लिए प्रमाण नहीं है। वे कहते हैं, मुझे आश्चर्यजनक अनुभव हुआ है; मैं अधिक शांत, अधिक प्रेमपूर्ण हो चला हूं। अद्‌भुत अनुभव हुए हैं। लेकिन अपना ही अनुभव उनके लिए प्रमाण नहीं है। मन अतीत में प्रमाण खोजता है।

मैंने उनसे कहा कि यह तो आपके किसी शास्त्र में नहीं लिखा है, उलटे शास्त्र में अनेक ऐसी बातें लिखी हैं, जो इस ध्यान विधि के प्रतिकूल पड़ती हैं। उनका चेहरा उदास हो गया और उन्होंने कहा कि तब मेरे लिए यह ध्यान करना, इसे जारी रखना कठिन होगा।

लेकिन उनका अपना ही अनुभव किसी काम का क्यों नहीं है ?

तुम्हारा अतीत—संस्कार, मन—सतत तुम्हें अपने सांचे में कस रहा है और तुम्हारे वर्तमान को नष्ट कर रहा है। इसे याद रखो, इससे सावधान रहो। अपने मन के प्रति संदेहपूर्ण बनो। उस पर भरोसा मत करो। अगर तुम इस प्रौढ़ता को उपलब्ध हो सके कि मन पर भरोसा न करो तो ही ये विधियां सरल, सहयोगी और क्रियात्मक हो सकती हैं। वे चमत्कार कर सकती हैं, वे चमत्कार करेंगी।

ये विधियां, ये उपाय बुद्धि से बिलकुल नहीं समझे जा सकते हैं। मैं एक असंभव प्रयास कर रहा हूं। लेकिन क्यों कर रहा हूं ? यदि वे बुद्धि से नहीं समझे जा सकते तो क्यों मैं तुमसे बोल रहा हूं ? वे बुद्धि से तो नहीं समझी जा सकतीं, लेकिन ये वे विधियां हैं जो तुम्हारे जीवन के रूपांतरित कर सकती हैं, और उन्हें बताने का दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। तुम केवल बुद्धि से समझ सकते हो, और यह एक समस्या है। तुम कोई दूसरी चीज नहीं समझ सकते,

केवल बुद्धि से समझ सकते हो। और यह भी सही है कि ये विधियां बुद्धि से नहीं समझी जा सकतीं। तो फिर कैसे समझा और समझाया जाए ?

या तो तुम बुद्धि को बीच में लाए बिना समझने की क्षमता हासिल करो या और कोई उपाय खोजा जाए जिससे कि वे तुम्हें बुद्धि द्वारा बोधगम्य हो सकें। दूसरा विकल्प संभव नहीं है; पहला संभव है।

तुम्हें बुद्धि से ही शुरू करना होगा। लेकिन बुद्धि से चिपके मत रहो। जब मैं कहता हूं कि करो; तो करना शुरू करो। जब तुम्हारे भीतर कुछ घटित होने लगेगा तब तुम अपनी बुद्धि को हटाकर बिना किसी बीच बचाव के, सीधे मेरे करीब पहुंचने लगोगे। लेकिन कुछ करना शुरू करो। हम वर्षों चर्चा किए जा सकते हैं। तुम्हारे मन में बहुत-सी बातें भर जाएंगी, लेकिन उससे कुछ लाभ होने वाला नहीं है। उलटे उससे तुम्हारी हानि हो सकती है, क्योंकि तब तुम बहुत जानने लगोगे। और अगर तुम बहुत जानने लगे, तो तुम भ्रांत हो जाओगे, उलझन में पड़ोगे। बहुत बातें जानना अच्छा नहीं है। अच्छा है कि थोड़ा ही जानो और प्रयोग करो। अकेली एक विधि सहयोगी हो सकती है; कुछ करना सदा सहयोगी होता है।

और करने में कठिनाई क्या है ? कहीं बहुत गहरे में भय छिपा है। भय यह है कि अगर यह करोगे तो कुछ होना बंद हो जाएगा। यही भय है। यह विरोधाभासी बात मालूम पड़ती है; लेकिन मैं अनेक-अनेक लोगों से मिला हूं जो बदलना चाहते हैं, जो कहते हैं कि हमें ध्यान की जरूरत है, हमें गहरे रूपांतरण की जरूरत है; लेकिन किसी गहरे तल पर वे भयभीत भी हैं। वे दोहरे हैं, दो मन वाले हैं। वे पूछते रहते हैं कि हम क्या करें; लेकिन वे कभी कुछ नहीं करते। फिर वे क्यों पूछते रहते हैं ?

वे पूछते हैं सिर्फ अपने आपको यह भ्रम देने के लिए कि हम भी अपने को बदलने में उत्सुक हैं। इसलिए वे पूछते हैं। इस और उस गुरु के पास जाते हैं, खोजते हैं, लेकिन कभी कुछ नहीं करते। गहरे में वे भयभीत हैं।

एरिक फ्राम ने एक किताब लिखी है— फियर आफ फ्रीडम—स्वतंत्रता का भय। किताब का नाम विरोधाभासी है। सभी लोग सोचते हैं कि हम स्वतंत्रता चाहते हैं, सभी सोचते हैं कि हम इस लोक और परलोक में भी, मुक्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं। वे कहते हैं, हम मोक्ष चाहते हैं, हम सब सीमाओं से, सब दासताओं से छुटकारा चाहते हैं, हम पूर्ण रूप से मुक्त होना चाहते हैं। लेकिन एरिक फ्राम कहता है कि मनुष्य मुक्ति से भयभीत है, डरा हुआ है। हम चाहते हैं, हम कहे जाते हैं कि हम चाहते हैं, लेकिन कहीं गहरे मन में हम स्वतंत्रता

से डरते हैं। हम नहीं चाहते हैं। क्यों ? यह द्वैत, यह दोहरापन क्यों है ?

स्वतंत्रता भय पैदा करती है। और ध्यान गहरी से गहरी स्वतंत्रता है। तुम बाहरी घेरों से ही मुक्त नहीं होते, भीतरी दासता से भी, दासता की जड़ मन से भी मुक्त हो जाते हो। तुम पूरे अतीत से मुक्त हो जाते हो। मन गया कि अतीत गया। अब तुम इतिहास का अतिक्रमण कर गए। अब कोई समाज नहीं रहा; कोई धर्म, कोई शास्त्र, कोई परंपरा नहीं रही; क्योंकि उनका आवास मन ही है। अब कोई अतीत नहीं है, अब कोई भविष्य भी नहीं है, क्योंकि अतीत और भविष्य मन के अंग हैं, स्मृति और कल्पना भर हैं। अब तुम अभी और यहीं हो, वर्तमान में हो। अब कोई भविष्य नहीं होगा। अब केवल वर्तमान और वर्तमान होगा—शाश्वत वर्तमान। तब तुम पूर्णरूप से मुक्त हो। तब तुम सब परंपरा का, सब इतिहास का, शरीर, मन, सबका अतिक्रमण कर गए। भय से भी मुक्त।

लेकिन ऐसी मुक्ति, ऐसी स्वतंत्रता में तुम कहां होओगे ? ऐसी मुक्ति में क्या तुम बचोगे ? इस मुक्ति में, इस विराटता में तुम्हारा छोटा-सा मैं, तुम्हारा अहंकार कहां टिकेगा ? क्या तब तुम कह सकोगे कि मैं हूं ? तुम कहते हो कि मैं बंधन में हूं, क्योंकि तुम अपनी सीमा को जान सकते हो। जब बंधन नहीं रहा तब सीमा भी नहीं रही। तब तुम एक उपस्थिति की तरह हो, कुछ ज्यादा नहीं। परिपूर्ण शून्य, परिपूर्ण खालीपन। और वही भय पैदा करता है। और वही कारण है कि आदमी ध्यान की बातें तो करता है, लेकिन कुछ करता नहीं।

सभी प्रश्न इसी भय से पैदा होते हैं। इस भय को अनुभव करो। अगर इसे जान लोगे तो यह विदा हो जाएगा। और अगर नहीं जानोगे तो जारी रहेगा। क्या तुम आध्यात्मिक अर्थों में मरने को राजी हो ? क्या तुम नहीं होने के लिए तैयार हो ?

जब कोई बुद्ध के पास आता था तो वे कहते, बुनियादी सत्य यह है कि तुम नहीं हो। और क्योंकि तुम नहीं हो, तुम न मर सकते हो और न जन्म ले सकते हो। क्योंकि तुम नहीं हो, तुम दुख में और बंधन में नहीं हो सकते। क्या तुम इसे स्वीकार करने को राजी हो ? बुद्ध पूछते, क्या तुम यह मानने को तैयार हो ? अगर तुम यह मानने को राजी नहीं हो तो तुम अभी ध्यान का प्रयोग मत करो। पहले पता कर लो कि तुम सचमुच हो या नहीं हो। पहले इसी पर ध्यान करो। कोई आत्मा है ? भीतर कोई तत्त्व है या तुम एक संयोग भर हो ?

अगर तुम खोजो तो पता चलेगा कि तुम्हारा शरीर एक संयोग है, जोड़ है।

कुछ चीज तुम्हारी मां से मिली है, कुछ चीज पिता से मिली है और शेष सब भोजन से मिला है। यही तुम्हारा शरीर है। इस शरीर में तुम नहीं हो, कोई आत्मा नहीं है। फिर मन पर ध्यान करो। कुछ यहां से आया है, कुछ वहां से आया है। मन में कुछ भी ऐसा नहीं है जो मौलिक हो। वह भी एक संग्रह है। खोजो कि मन में कोई आत्मा है।

अगर गहरे खोजते चले गए तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा व्यक्तित्व एक प्याज जैसा है। एक पर्त को हटाओ कि दूसरी पर्त सामने आ जाती है। दूसरी को हटाओ, तीसरी आ जाती है। पर्त पर पर्त हटाते जाओ और अंत में तुम्हारे हाथ शून्य बचेगा। जब सारी पर्तें हट गईं तो भीतर कुछ भी नहीं है।

शरीर और मन प्याज जैसे हैं। अगर तुम शरीर और मन के छिलकों को हटा दो तो तुम्हें जिसका साक्षात्कार होगा, उसे बुद्ध ने शून्य कहा है। इस शून्य का साक्षात्कार डर पैदा करता है। वही डर है। यही कारण है कि हम कभी ध्यान नहीं करते हैं। हम उसके बारे में बातें करते हैं, लेकिन हम उसे करते नहीं। वही भय है, गहरे में तुम जानते हो कि शून्य है। लेकिन तुम इस भय से बच नहीं सकते हो। जो भी करो, भय बना रहेगा। जब तक उसका साक्षात्कार न कर लो, वह बना रहेगा। साक्षात्कार मात्र उपाय है।

एक बार अपने शून्य का साक्षात्कार कर लो, एक बार जान लो कि भीतर तुम आकाश की तरह हो, शून्य हो, तो फिर भय नहीं रहेगा। तब कोई भय नहीं रह सकता, क्योंकि यह शून्य नष्ट नहीं किया जा सकता है। यह शून्य मरने वाला नहीं है। जो मर सकता था, वह नहीं रहा; वह तो प्याज के छिलकों जैसा था।

यही कारण है कि कई बार गहरे ध्यान में आदमी इस शून्य के करीब पहुंचता है तो डर जाता है, घबराकर कांपने लगता है। उसे लगता है कि मैं तो मरा। और तब वह इस शून्य से भागकर संसार में लौट जाना चाहता है। और अनेक सचमुच लौट जाते हैं; वे फिर भीतर की तरफ झांकने का नाम नहीं लेते।

जैसा मैं देखता हूं, तुम लोगों में से प्रत्येक ने किसी-न-किसी जन्म में ध्यान का प्रयोग किया है। और उस शून्य के निकट पहुंचने पर भय ने तुम्हें पकड़ा और तुम भाग निकले। तुम्हारे गहरे अचेतन में उसकी स्मृति बसी है। और अब वही स्मृति बाधा बन जाती है। फिर जब भी तुम ध्यान का प्रयोग करने की सोचते हो तो तुम्हारे गहरे अचेतन में बसी यह स्मृति तुम्हें विचलित करती है और कहती है, सोचो मत, करो मत; एक बार करके तुम देख चुके हो।

ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है—मैंने अनेक लोगों में झांककर देखा

है—जिसने किसी-न-किसी जीवन में ध्यान का प्रयोग न किया हो। वह याद कायम है, यद्यपि तुम्हें इसका बोध नहीं है कि वह याद कहां है। वह है। जब भी तुम कुछ करते हो, वह याद अवरोध बनकर खड़ी हो जाती है और किसी-न-किसी ढंग से तुम्हें रोक देती है।

इसलिए अगर तुम ध्यान में सचमुच उत्सुक हो तो उसके संबंध में अपने भय को खोज निकालो। इसके बाबत ईमानदार बनो कि तुम डरे हो कि नहीं। और अगर डरे हो तो सबसे पहले ध्यान के लिए नहीं, भय के लिए कुछ करना जरूरी होगा।

बुद्ध कई उपाय प्रयोग में लाते थे। कभी कोई उनसे कहता था कि मुझे ध्यान से डर लगता है। और यह जरूरी है; गुरु को अवश्य बताना चाहिए कि मैं डरता हूं। तुम गुरु को धोखा नहीं दे सकते, और उसकी जरूरत भी नहीं है। तो जब कोई उनसे कहता कि मैं ध्यान से डरता हूं, तो बुद्ध कहते, तुम पहली शर्त पूरी कर रहे हो। जब तुम स्वयं को कहते हो कि मैं ध्यान से डरता हूं, तो संभावना खुलती है। तब कुछ किया जा सकता है। क्योंकि तुमने एक गहरे घाव को उघाड़ा है। वह भय क्या है ? उसी पर ध्यान करो। आओ और खोदकर देखो कि वह भय कहां से आता है, उसका स्रोत क्या है।

सब डर अंततः मृत्यु पर आधारित है। सब डर ! उसका जो भी रूप-रंग हो, जो भी नाम हो, सब डर मृत्यु पर खड़ा है। यदि थोड़ा गहरे जाओ तो पाओगे कि तुम मृत्यु से डरे हो।

जब कोई व्यक्ति बुद्ध को आकर कहता कि मैं मृत्यु से भयभीत हूं, मुझे इसका पता चल गया है, तो बुद्ध उससे कहते कि मरघट जाओ और वहां बैठकर जलती चिता पर ध्यान करो। लोग रोज मर रहे हैं, वे वहां जलाए जाएंगे। उस मरघट में रहो और चिता पर ध्यान करो। जब मरने वाले के परिवार के लोग भी वहां से विदा हो जाएं तब भी तुम वहां रुके रहो। बस आग को, उसमें जलती लाश को देखो। जब सब कुछ धुआं ही धुआं हो रहे तो उसको भी गहराई में देखते रहो। कुछ सोचो मत, तीन महीने, छह महीने या नौ महीने तक बस ध्यान करो। और जब तुम्हें निश्चय हो जाए कि मृत्यु से बचा नहीं जा सकता, जब परम निश्चय हो जाए कि मृत्यु जीवन का एक ढंग है, कि मृत्यु जीवन में ही निहित है, कि मृत्यु होने ही वाली है, कि उससे बचने का कोई उपाय नहीं है, कि तुम मृत्यु में ही हो, तब लौटकर मेरे पास आना।

मृत्यु पर महीनों ध्यान करने के बाद, दिन-रात लाशों को जलते और राख होते देखने के बाद, बचे हुए धुओं को भी अंततः विलीन होते देखने के बाद,

एक निश्चय घनीभूत हो जाता है कि मृत्यु निश्चित है। असल में यही एक चीज निश्चित है; शेष सब चीजें अनिश्चित हैं। जीवन में जो एक चीज निश्चित है वह मृत्यु है। दूसरी किसी भी चीज के लिए तुम कह सकते हो कि वह हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है, लेकिन मृत्यु के लिए यह बात नहीं कह सकते। मृत्यु है; वह होने वाली है; वह हो ही चुकी है। जिस क्षण तुम जीवन में प्रविष्ट हुए, उसी क्षण मृत्यु में भी प्रविष्ट हो गए। अब उसके बाबत कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

और जब मृत्यु निश्चित ही है तो उसका डर भी नहीं रहता है। भय तो उन चीजों के साथ है जो बदली जा सकती हैं। जब मरना ही है तो भय क्या ? यदि तुम मृत्यु के बाबत कुछ कर सको, उसे बदल सको, तो भय बना रहेगा। और अगर जान लिया कि कुछ नहीं किया जा सकता, कि तुम मृत्यु में ही हो, कि वह अटल है, तो भय भी विदा हो जाता है।

और जब मृत्यु का भय जाता रहता है तो बुद्ध तुम्हें ध्यान करने की इजाजत देंगे। वे कहेंगे, अब ध्यान कर सकते हो।

तो तुम भी अपने मन की गहराइयों में उतरो। इन विधियों को सुनना तभी सार्थक होगा जब तुम्हारी आंतरिक रुकावटें टूट गई हों, जब तुम्हारे भीतरी भय विलीन हो गए हों और जब तुमने निश्चित जान लिया हो कि मृत्यु ही यथार्थ है; इसलिए अगर ध्यान में मैं मर भी जाऊं तो डर नहीं है, ध्यान में मृत्यु भी घटित हो जाए तो उसके लिए भी मैं तैयार हूं। केवल तभी तुम गति कर सकते हो। और वह गति राकेट की गति होगी, क्योंकि कोई अवरोध न रहे।

दूरी समय नहीं लेती, अवरोध समय लेते हैं। तुम इसी क्षण गति कर सकते हो यदि अवरोध न हों। तुम तो वहीं हो, पर बाधाएं हैं। यह बाधा-दौड़, हर्डल रेस है। और तुम अधिकाधिक रुकावटें पार करते हो तो तुम्हें अच्छा लगता है। तुम्हें अच्छा लगता है कि तुम रुकावटों को पार कर गए। लेकिन कैसी मूढ़ता है कि तुमने ही ये रुकावटें राह में रखी थीं। वे वहां थीं ही नहीं। तुम ही रुकावटें रखते हो, तुम ही उन्हें पार करते हो और तुम ही अच्छा भी अनुभव करते हो। फिर-फिर रुकावटें रखना, फिर-फिर उन्हें पार करना—इस तरह तुम एक वर्तुल में घूमते हो और कभी केंद्र पर नहीं पहुंचते।

मन रुकावटें पैदा करता है, क्योंकि मन भयभीत है। वह तुमको बहुत तरह की दलीलें देगा कि तुम ध्यान क्यों करते हो। मन का भरोसा मत करो। गहरे उतरो और बुनियादी कारण को खोज निकालो।

क्यों कोई आदमी सतत भोजन की चर्चा करता है, लेकिन कभी भोजन नहीं

करता ? पागल मालूम पड़ता है। कोई दूसरा आदमी प्रेम की बातें किए जाता है, लेकिन प्रेम कभी नहीं करता। तीसरा आदमी किसी और चीज की बातें करता रहता है, लेकिन कुछ करता नहीं। यह बातचीत एक ग्रस्तता बन जाती है—एक मजबूरी । ऐसा व्यक्ति बातचीत को ही कृत्य मान बैठता है। बातचीत करने से तुम्हें लगता है कि मैं कुछ कर रहा हूं। और तब तुम चैन महसूस करते हो। तुम कुछ कर रहे हो, बात ही कर रहे हो, पढ़ रहे हो, सुन रहे हो। लेकिन यह करना नहीं है। यह धोखा है। इस धोखे में मत पड़ो।

मैं यहां इन एक सौ बारह विधियों के संबंध में चर्चा करूंगा; यह इसलिए नहीं कि तुम्हारे मन को भोजन दूं, ज्यादा ज्ञान दूं, सूचनाएं दूं। मैं तुम्हें पंडित बनाने की चेष्टा में नहीं हूं। मैं इसलिए बोलता हूं कि तुम्हें ऐसी विधि दे सकूं जो तुम्हारे जीवन को बदल दे। इसलिए जो विधि तुम्हें अनुकूल मालूम पड़े उसे बातचीत का विषय न बनाकर सीधे प्रयोग करो। उसके बारे में चुप हो जाओ और उसे करो। तुम्हारा मन अनेक प्रश्न खड़े करेगा। मुझसे पूछने के पहले खुद खोजबीन करो कि ये प्रश्न सच में कुछ अर्थ रखते हैं या वे तुम्हें सिर्फ धोखा दे रहे हैं।

पहले प्रयोग करो और तब प्रश्न पूछो। तब तुम्हारे प्रश्न व्यावहारिक होंगे। और मुझे पता है कि कौन प्रश्न प्रयोग करने पर पूछा गया है और कौन मात्र जिज्ञासा से, बुद्धि से। इसलिए मैं धीरे-धीरे तुम्हारे बुद्धिगत प्रश्नों के उत्तर देना बंद कर दूंगा। कुछ करो। और तब तुम्हारा प्रश्न सार्थक होगा। ये प्रश्न, जो कहते हैं कि प्रयोग बहुत सरल है, कुछ करने के बाद नहीं पूछे गए हैं। यह उतना सरल नहीं है।

अंत में मैं फिर दोहरा दूं — तुम सत्य ही हो; केवल जागरण की जरूरत है। तुम्हें कहीं अन्यत्र नहीं जाना है; बस स्वयं के भीतर प्रवेश करना है। और वह प्रवेश इसी क्षण संभव है। यदि तुम अपने मन को हटाकर अलग रख सको तो तुम अभी और यहीं प्रविष्ट हो। और ये विधियां तुम्हारे मन को हटाकर अलग रखने की विधियां हैं।

एक बार मन हटा कि तुम सत्य हो।

आज इतना ही।

5

अवधान, शिव-नेत्र और आत्मोपलब्धि

सूत्र

5. *भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो। फिर सहस्त्रार तक रूप को श्वास-तत्त्व से, प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।*
6. *सांसारिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से थोड़े ही दिनों में नया जन्म होगा।*
7. *ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास, प्राण को टिकाओ। जब वह सोने के क्षण में हृदय तक पहुंचेगा तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।*
8. *आत्यंतिक भक्तिपूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।*
9. *मृतवत लेट रहो। क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो। या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चूसो और चूसना बन जाओ।*

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक पाइथागोरस जब अध्यात्म के एक गुह्य विद्यालय में प्रवेश पाने के लिए मिस्र गए, तब उन्हें प्रवेश नहीं मिला। और पाइथागोरस किसी भी समय में पैदा हुए सर्वश्रेष्ठ मनीषियों में एक थे। वे यह बात समझ न सके; उन्हें बहुत हैरानी हुई। बार-बार उन्होंने प्रवेश के लिए कोशिश की। और हर बार उन्हें कहा गया कि जब तक आप उपवास और प्राणायाम के एक विशेष प्रशिक्षण से नहीं गुजरेंगे, प्रवेश नहीं मिलेगा।

कहते हैं कि पाइथागोरस ने कहा कि मैं यहां ज्ञान के लिए आया हूं, किसी प्रशिक्षण के लिए नहीं !

लेकिन विद्यालय के अधिकारियों ने कहा कि जब तक आप बदलेंगे नहीं,

हम ज्ञान नहीं दे सकते। असल में हम ज्ञान में नहीं, वास्तविक अनुभव में उत्सुक हैं। और वह ज्ञान नहीं है जो जीया और अनुभव नहीं किया गया है। इसलिए आपको चालीस दिनों के उपवास से गुजरना ही होगा, जिसके दरम्यान एक खास ढंग से श्वास लेनी होगी।

कोई और रास्ता न था, इसलिए पाइथागोरस को इस प्रशिक्षण से गुजरना ही पड़ा। चालीस दिन के उपवास, प्राणायाम और सजगता के बाद उन्हें प्रवेश मिला।

कहते हैं कि पाइथागोरस ने कहा, आप पाइथागोरस को प्रवेश नहीं दे रहे हैं। मैं अब दूसरा ही आदमी हूं। दोबारा मेरा जन्म हुआ है। और आप सही थे और मैं गलत था; क्योंकि मेरा पूरा दृष्टिकोण बौद्धिक था। अब वह बुद्धि से हृदय में उतर आया है। अब मैं चीजों को अनुभव कर सकता हूं। इस प्रशिक्षण के पहले मैं सिर्फ बुद्धि से, मस्तिष्क से समझता था; अब मैं भाव से, हृदय से समझता हूं। सत्य सब मेरे लिए धारणा नहीं, जीवन है। सत्य अब तत्त्व-मीमांसा नहीं रहेगा, बल्कि अस्तित्वगत अनुभव होगा।

वह क्या प्रशिक्षण था जिससे वे गुजरे ?

यही पांचवीं विधि थी जो पाइथागोरस को दी गई थी। दी तो गई थी मिस्र में, लेकिन विधि भारतीय है।

अपना ध्यान तृतीय नेत्र पर एकाग्र करो

पांचवीं श्वास विधि :

5. भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो। फिर सहस्रार तक रूप को श्वास-तत्त्व से, प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।

यही विधि थी जो पाइथागोरस को दी गई थी। पाइथागोरस इसे लेकर यूनान वापस गए, और वे पश्चिम के समस्त रहस्यवाद के आधार बन गए। पश्चिम में अध्यात्मवाद के वे पिता हैं। यह विधि बहुत गहरी विधियों में से एक है। इसे समझने की कोशिश करो।

'भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर ...।'

आधुनिक शरीर-शास्त्र कहता है, वैज्ञानिक शोध कहती है कि दो भृकुटियों के बीच जो ग्रंथि है वह शरीर का सबसे रहस्यपूर्ण भाग है। जिसका नाम पाइनिअल ग्रंथि है। यही तिब्बतियों की तीसरी आंख है और यही शिवनेत्र

है—तंत्र के शिव का त्रिनेत्र। दो आंखों के बीच एक तीसरी आंख भी है, लेकिन यह सक्रिय नहीं है। यह है, और यह किसी भी समय सक्रिय हो सकती है। निसर्गतः यह सक्रिय नहीं है। इसको सक्रिय करने के लिए इसके संबंध में तुमको कुछ करना पड़ेगा। यह अंधी नहीं है, सिर्फ बंद है। यह विधि तीसरी आंख को खोलने की विधि है।

'भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर ...।'

आंखें बंद कर लो और फिर दोनों आंखों को बंद रखते हुए भौंहों के बीच में दृष्टि को स्थिर करो—मानो कि दोनों आंखों से तुम देख रहे हो। और समग्र अवधान को वहीं लगा दो।

यह विधि एकाग्र होने की सबसे सरल विधियों में से है। शरीर के किसी दूसरे भाग में इतनी आसानी से तुम अवधान को नहीं उपलब्ध हो सकते। यह ग्रंथि अवधान को अपने में समाहित करने में कुशल है। यदि तुम इस पर अवधान दोगे तो तुम्हारी दोनों आंखें तीसरी आंख से सम्मोहित हो जाएंगी। वे थिर हो जाएंगी, वे वहां से नहीं हिल सकेंगी। यदि तुम शरीर के किसी दूसरे हिस्से पर अवधान दो तो वहां कठिनाई होगी। तीसरी आंख अवधान को पकड़ लेती है, अवधान को खींच लेती है। अवधान के लिए यह चुंबक का काम करती है।

इसलिए दुनिया भर की सभी विधियों में इसका समावेश किया गया है। अवधान को प्रशिक्षित करने में यह सरलतम है, क्योंकि इसमें तुम ही चेष्टा नहीं करते, यह ग्रंथि भी तुम्हारी मदद करती है। यह चुंबकीय है। तुम्हारे अवधान को यह बलपूर्वक खींच लेती है।

तंत्र के पुराने ग्रंथों में कहा गया है कि अवधान तीसरी आंख का भोजन है। यह भूखी है; जन्मों-जन्मों से भूखी रही है। जब तुम इसे अवधान देते हो यह जीवित हो उठती है। इसे भोजन मिल गया है। और जब तुम जान लोगे कि अवधान इसका भोजन है, जान लोगे कि तुम्हारे अवधान को यह चुंबक की तरह खींच लेती है, तब अवधान कठिन नहीं रह जाएगा। सिर्फ सही बिंदु को जानना है।

इसलिए आंख बंद कर लो और अवधान को दोनों आंखों के बीच में घूमने दो और उस बिंदु को अनुभव करो। जब तुम उस बिंदु के करीब होगे, अचानक तुम्हारी आंखें थिर हो जाएंगी। और जब उन्हें हिलाना कठिन हो जाए तब जानो कि सही बिंदु मिल गया।

'भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो।'

अगर यह अवधान प्राप्त हो जाए तो पहली बार एक अद्‌भुत बात तुम्हारे अनुभव में आएगी। पहली बार तुम देखोगे कि तुम्हारे विचार सामने चल रहे हैं, तुम साक्षी हो जाओगे। जैसे कि सिनेमा के पर्दे पर दृश्य देखते हो, वैसे ही तुम देखोगे कि विचार आ रहे हैं और तुम साक्षी हो। एक बार तुम्हारा अवधान त्रिनेत्र-केंद्र पर स्थिर हो जाए, तुम तुरंत विचारों के साक्षी हो जाओगे।

आमतौर से तुम साक्षी नहीं होते, तुम विचारों के साथ तादात्म्य कर लेते हो। यदि क्रोध है तो तुम क्रोध हो जाते हो। यदि एक विचार चलता है तो उसके साक्षी होने की बजाय तुम विचार के साथ एक हो जाते हो, उससे तादात्म्य करके साथ-साथ चलने लगते हो। तुम विचार ही बन जाते हो, विचार का रूप ले लेते हो। जब कामवासना होती है, तब तुम कामवासना बन जाते हो, जब क्रोध उठता है, तब क्रोध बन जाते हो, और जब लोभ उठता है, तब लोभ ही बन जाते हो। कोई भी विचार तुम्हारे साथ एकात्म हो जाता है और उसके और तुम्हारे बीच दूरी नहीं रहती।

लेकिन तीसरी आंख पर स्थिर होते ही तुम एकाएक साक्षी हो जाते हो। तीसरी आंख के जरिए तुम साक्षी बनते हो। इस शिवनेत्र के द्वारा तुम विचारों को वैसे ही चलते देख सकते हो जैसे आसमान पर तैरते बादलों को, या राह पर चलते लोगों को देखते हो।

जब तुम अपनी खिड़की से आकाश को या राह चलते लोगों को देखते हो तब तुम उनसे तादात्म्य नहीं करते। तब तुम अलग होते हो, मात्र दर्शक रहते हो—बिलकुल अलग। वैसे ही अब जब क्रोध आता है तब तुम उसे एक विषय की तरह देखते हो। अब तुम यह नहीं सोचते कि मुझे क्रोध हुआ, तुम यही अनुभव करते हो कि तुम क्रोध से घिरे हो, क्रोध की एक बदली तुम्हारे चारों ओर घिर गई। और जब तुम खुद क्रोध नहीं रहे तब क्रोध नपुंसक हो जाता है। तब वह तुमको नहीं प्रभावित कर सकता, तब तुम अस्पर्शित रह जाते हो। क्रोध आता है और चला जाता है, और तुम अपने में केंद्रित रहते हो।

यह पांचवीं विधि साक्षीत्व को प्राप्त करने की विधि है।

'भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो।'

अब अपने विचारों को देखो, विचारों का साक्षात्कार करो।

'फिर सहस्रार तक रूप को श्वास-तत्त्व से, प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।'

जब अवधान भृकुटियों के बीच शिवनेत्र के केंद्र पर स्थिर होता है, तब दो चीजें घटित होती हैं। एक कि तुम एकाएक साक्षी बन जाते हो।

और यही चीज दो ढंगों से हो सकती है। एक, तुम साक्षी हो जाओ तो तुम तीसरी आंख पर थिर हो जाते हो। साक्षी हो जाओ, जो भी हो रहा हो उसके साक्षी रहो। तुम बीमार हो, शरीर में पीड़ा है, तुमको दुख और संताप है, जो भी हो, तुम उसके साक्षी रहो; जो भी हो, उससे तादात्म्य न करो। बस साक्षी रहो—दर्शक भर। और यदि साक्षीत्व संभव हो जाए, तो तुम तीसरे नेत्र पर स्थिर हो जाओगे।

इससे उलटा भी हो सकता है। यदि तुम तीसरी आंख पर स्थिर हो जाओ, तो साक्षी हो जाओगे। ये दोनों एक ही बात हैं।

इसलिए पहली बात— तीसरी आंख पर केंद्रित होते ही साक्षी आत्मा का उदय होगा। अब तुम अपने विचारों का सामना कर सकते हो। और दूसरी बात— और अब तुम श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म और कोमल तरंगों को भी अनुभव कर सकते हो। अब तुम श्वसन के रूप को ही नहीं, उनके तत्त्व को, सार को, प्राण को भी समझ सकते हो।

पहले तो यह समझने की कोशिश करें कि 'रूप' और 'श्वास-तत्त्व' का क्या अर्थ है। जब तुम श्वास लेते हो, तब सिर्फ वायु की ही श्वास नहीं लेते। वैज्ञानिक तो यही कहते हैं कि तुम वायु की ही श्वास लेते हो, जिसमें आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा अन्य तत्त्व रहते हैं। वे कहते हैं कि तुम वायु की श्वास लेते हो।

लेकिन तंत्र कहता है कि हवा तो मात्र वाहन है, असली चीज नहीं। असल में तुम प्राण की श्वास लेते हो। हवा तो माध्यम भर है, प्राण उसका सत्व है, सार है। तुम न सिर्फ हवा की, बल्कि प्राण की श्वास लेते हो।

आधुनिक विज्ञान अभी नहीं जान सका है कि प्राण जैसी कोई वस्तु भी है। लेकिन कुछ शोधकर्ताओं ने कुछ रहस्यमयी चीज का अनुभव तो किया है। श्वास में सिर्फ हवा ही हम नहीं लेते, यह बहुत से आधुनिक शोधकर्ताओं ने अनुभव किया है। विशेषकर एक नाम उल्लेखनीय है, वह है जर्मन मनोवैज्ञानिक विलहेम रेख का, जिसने इसे आरगेन एनर्जी या जैविक ऊर्जा का नाम दिया। वह प्राण ही है। वह कहता है कि जब आप श्वास लेते हैं, तब हवा तो मात्र आधार है, पात्र है, जिसके भीतर एक रहस्यपूर्ण तत्त्व है, जिसे आरगेन या प्राण या एलेन वाइटल कह सकते हैं। लेकिन वह बहुत सूक्ष्म है। वास्तव में वह भौतिक नहीं है, पदार्थगत नहीं है। हवा भौतिक है, पात्र भौतिक है; लेकिन उसके भीतर से कुछ सूक्ष्म, अलौकिक तत्त्व चल रहा है।

इसका प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। जब तुम किसी प्राणवान व्यक्ति

के पास होते हो, तो तुम अपने भीतर किसी शक्ति को उगते देखते हो। और जब किसी बीमार के पास होते हो, तो तुमको लगता है कि तुम चूसे जा रहे हो, तुम्हारे भीतर से कुछ निकाला जा रहा है। जब तुम अस्पताल जाते हो, तब थके-थके क्यों अनुभव करते हो ? वहां चारों ओर से तुम चूसे जाते हो। अस्पताल का पूरा माहौल बीमार होता है और वहां सब किसी को अधिक प्राण की, अधिक एलेन वाइटल की जरूरत है। इसलिए वहां जाकर अचानक तुम्हारा प्राण तुमसे बहने लगता है। जब तुम भीड़ में होते हो, तो तुम घुटन महसूस क्यों करते हो? इसलिए कि वहां तुम्हारा प्राण चूसा जाने लगता है। और जब तुम प्रातःकाल अकेले अकाश के नीचे या वृक्षों के बीच होते हो, तब फिर अचानक तुम अपने में किसी शक्ति का, प्राण का उदय अनुभव करते हो। प्रत्येक को एक खास स्पेस की जरूरत है। और जब वह स्पेस नहीं मिलता है, तो तुमको घुटन महसूस होती है।

विलहेम रेख ने कई प्रयोग किए। लेकिन उसे पागल समझा गया। विज्ञान के भी अपने अंधविश्वास हैं। और विज्ञान बहुत रूढ़िवादी होता है। विज्ञान अभी भी नहीं समझता है कि हवा से बढ़कर कुछ है; वह प्राण है। लेकिन भारत सदियों से उस पर प्रयोग कर रहा है।

तुमने सुना होगा—शायद देखा भी हो—कि कोई व्यक्ति कई दिनों के लिए भूमिगत समाधि में प्रवेश कर गया, जहां हवा का कोई प्रवेश नहीं था। 1880 में मिस्र में एक आदमी चालीस वर्षों के लिए समाधि में चला गया था। जिन्होंने उसे गाड़ा था वे सभी मर गए, क्योंकि वह 1920 में समाधि से बाहर आने वाला था।

1920 में किसी को भरोसा नहीं था कि वह जीवित मिलेगा। लेकिन वह जीवित था और उसके बाद भी वह दस वर्षों तक जीवित रहा। वह बिलकुल पीला पड़ गया था, परंतु जीवित था। और उसको वहां हवा मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

डाक्टरों ने तथा दूसरों ने उससे पूछा कि इसका रहस्य क्या है ? उसने कहा, हम नहीं जानते; हम इतना ही जानते हैं कि प्राण कहीं भी प्रवेश कर सकता है, और वह है। हवा वहां नहीं प्रवेश कर सकती, लेकिन प्राण कर सकता है।

एक बार तुम जान जाओ कि श्वास के बिना भी कैसे प्राण को सीधे ग्रहण कर सकते हो, तो तुम सदियों तक के लिए भी समाधि में जा सकते हो।

तीसरी आंख पर केंद्रित होकर तुम श्वास के सार तत्त्व को, श्वास को नहीं, श्वास के सार तत्त्व प्राण को देख सकते हो। और अगर तुम प्राण को देख सके,

तो तुम उस बिंदु पर पहुंच गए जहां से छलांग लग सकती है, क्रांति घटित हो सकती है।

सूत्र कहता है— 'सहस्रार तक रूप को प्राण से भरने दो।'

और जब तुमको प्राण का एहसास हो, तब कल्पना करो कि तुम्हारा सिर प्राण से भर गया है। सिर्फ कल्पना करो, किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है। और मैं बताऊंगा कि कल्पना कैसे काम करती है। जब तुम त्रिनेत्र-बिंदु पर स्थिर हो जाओ तब कल्पना करो, और चीजें आप ही और तुरंत घटित होने लगती हैं।

अभी तुम्हारी कल्पना भी नपुंसक है। तुम कल्पना किए जाते हो और कुछ भी नहीं होता। लेकिन कभी-कभी अनजाने साधारण जिंदगी में भी चीजें घटित होती हैं। तुम अपने मित्र की सोच रहे हो और अचानक दरवाजे पर दस्तक होती है। तुम कहते हो कि सांयोगिक था कि मित्र आ गया। कभी तुम्हारी कल्पना संयोग की तरह भी काम करती है।

लेकिन जब भी ऐसा हो, तो याद रखने की चेष्टा करो और पूरी चीज का विश्लेषण करो। जब भी लगे कि तुम्हारी कल्पना सच हुई है, तुम भीतर जाओ और देखो। कहीं-न-कहीं तुम्हारा अवधान तीसरे नेत्र के पास रहा होगा। दरअसल यह संयोग नहीं है। यह वैसा दिखता है; क्योंकि गुह्य विज्ञान का तुमको पता नहीं है। अनजाने ही तुम्हारा मन त्रिनेत्र-केंद्र के पास चला गया होगा। और अवधान यदि तीसरी आंख पर है तो किसी घटना के सृजन के लिए उसकी कल्पना काफी है।

यह सूत्र कहता है कि जब तुम भृकुटियों के बीच स्थिर हो और प्राण को अनुभव करते हो, तब रूप को भरने दो। अब कल्पना करो कि प्राण तुम्हारे पूरे मस्तिष्क को भर रहा है—विशेषकर सहस्रार को जो सर्वोच्च मानस केंद्र है। उस क्षण तुम कल्पना करो और वह भर जाएगा। कल्पना करो कि वह प्राण तुम्हारे सहस्रार से प्रकाश की तरह बरसेगा, और वह बरसने लगेगा। और उस प्रकाश की वर्षा में तुम ताजा हो जाओगे, तुम्हारा पुनर्जन्म हो जाएगा, तुम बिलकुल नए हो जाओगे। आंतरिक जन्म का यही अर्थ है।

यहां दो बातें हैं। एक, तीसरी आंख पर केंद्रित होकर तुम्हारी कल्पना पुंसत्व को, शुद्धि को उपलब्ध हो जाती है। यही कारण है कि शुद्धता पर, पवित्रता पर इतना बल दिया गया है। इस साधना में उतरने के पहले शुद्ध बनें।

तंत्र के लिए शुद्धि कोई नैतिक धारणा नहीं है। शुद्धि इसलिए अर्थपूर्ण है कि यदि तुम तीसरी आंख पर स्थिर हुए और तुम्हारा मन अशुद्ध रहा, तो तुम्हारी

कल्पना खतरनाक सिद्ध हो सकती है—तुम्हारे लिए भी और दूसरों के लिए भी। यदि तुम किसी की हत्या करने की सोच रहे हो, उसका महज विचार भी मन में है, तो सिर्फ कल्पना से उस आदमी की मृत्यु घटित हो जाएगी। यही कारण है कि शुद्धता पर इतना जोर दिया जाता है।

पाइथागोरस को विशेष उपवास और प्राणायाम से गुजरने को कहा गया; क्योंकि यहां बहुत खतरनाक भूमि से यात्री गुजरता है। जहां भी शक्ति है, वहां खतरा है। यदि मन अशुद्ध है तो शक्ति मिलने पर आपके अशुद्ध विचार शक्ति पर हावी हो जाएंगे।

कई बार तुमने हत्या करने की सोची है; लेकिन भाग्य से वहां कल्पना ने काम नहीं किया। यदि वह काम करे, यदि वह तुरंत वास्तविक हो जाए तो वह दूसरों के लिए ही नहीं तुम्हारे लिए भी खतरनाक सिद्ध होगी। क्योंकि कितनी ही बार तुमने आत्महत्या की भी सोची है। अगर मन तीसरी आंख पर केंद्रित है तो आत्महत्या का विचार भी आत्महत्या बन जाएगा। तुमको विचार बदलने का समय भी नहीं मिलेगा। वह तुरंत घटित हो जाएगी।

तुमने किसी को सम्मोहित होते देखा होगा। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब सम्मोहनविद जो भी कहता है, सम्मोहित व्यक्ति तुरंत उसका पालन करता है। आदेश कितना ही बेहूदा हो, तर्कहीन हो, असंभव ही क्यों न हो, सम्मोहित व्यक्ति उसका पालन करता है। क्या होता है ?

यह पांचवीं विधि सब सम्मोहन की जड़ में है। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब उसे एक विशेष बिंदु पर, किसी प्रकाश पर दीवार पर लगे किसी चिह्न पर या किसी भी चीज पर या सम्मोहक की आंख पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित करने को कहा जाता है। और जब तुम किसी खास बिंदु पर दृष्टि केंद्रित करते हो, उसके तीन मिनट के अंदर तुम्हारा आंतरिक अवधान तीसरी आंख की ओर बहने लगता है, तुम्हारे चेहरे की मुद्रा बदलने लगती है। और सम्मोहनविद जानता है कि कब तुम्हारा चेहरा बदलने लगा। एकाएक चेहरे से सारी शक्ति गायब हो जाती है। वह मृतवत हो जाता है, मानो गहरी तंद्रा में पड़ा हो। जब ऐसा होता है, सम्मोहक को उसका पता हो जाता है। उसका अर्थ हुआ कि तीसरी आंख अवधान को पी रही है। आपका चेहरा पीला पड़ गया है; पूरी ऊर्जा त्रिनेत्र-केंद्र की ओर बह रही है।

अब सम्मोहित करने वाला तुरंत जान जाता है कि जो भी कहा जाएगा, वह घटित होगा। वह कहता है कि अब तुम गहरी नींद में जा रहे हो, और तुम तुरंत सो जाते हो। वह कहता है कि अब तुम बेहोश हो रहे हो, और तुम

बेहोश हो जाते हो। अब कुछ भी किया जा सकता है। अब अगर वह कहे कि तुम नेपोलियन या हिटलर हो गए हो तो तुम हो जाओगे। तुम्हारी मुद्रा बदल जाएगी। आदेश पाकर तुम्हारा अचेतन उसको वास्तविक बना देता है। अगर तुम किसी रोग से पीड़ित हो तो रोग को हटने का आदेश दिया जा सकता है, और रोग दूर हो जाएगा। या कोई नंया रोग भी पैदा किया जा सकता है।

यही नहीं, सड़क पर से एक कंकड़ उठाकर अगर सम्मोहनविद तुम्हारी हथेली पर रख दे और कहे कि यह अंगारा है तो तुम तेज गर्मी महसूस करोगे और तुम्हारी हथेली जल जाएगी—मानसिक तल पर नहीं, वास्तव में ही। वास्तव में तुम्हारी चमड़ी जल जाएगी और तुमको जलन महसूस होगी। क्या होता है ? अंगारा नहीं, बस एक मामूली कंकड़ है, वह भी ठंडा, फिर यह जलना कैसे संभव होता है ?

तुम तीसरी आंख पर केंद्रित हो और सम्मोहनविद तुमको सुझाव देता है और वह सुझाव वास्तविक हो जाता है। यदि सम्मोहनविद कहे कि अब तुम मर गए, तो तुम तुरंत मर जाओगे। तुम्हारी हृदय-गति रुक जाएगी, रुक ही जाएगी।

यह होता है त्रिनेत्र के चलते। त्रिनेत्र के लिए कल्पना और वास्तविकता दो चीजें नहीं हैं। कल्पना ही तथ्य है। कल्पना करें और वैसा हो जाएगा। स्वप्न और यथार्थ में फासला नहीं है। स्वप्न देखो और वह सच हो जाएगा।

यही कारण है कि शंकर ने कहा कि यह संसार परमात्मा के स्वप्न के सिवाय और कुछ नहीं है—यह परमात्मा की माया है। यह इसलिए कि परमात्मा तीसरी आंख में बसता है—सदा सनातन से। इसलिए परमात्मा जो स्वप्न देखता है, वह सच हो जाता है। और यदि तुम भी तीसरी आंख में थिर हो जाओ तो तुम्हारे स्वप्न भी सच होने लगेंगे।

सारिपुत्र बुद्ध के पास आया। उसने गहरा ध्यान किया। तब बहुत चीजें घटित होने लगीं, बहुत तरह के दृश्य उसे दिखाई देने लगे। जो भी ध्यान की गहराई में जाता है उसे यह सब दिखाई देने लगता है। स्वर्ग और नरक, देवता और दानव, सब उसे दिखाई देने लगे। और वे ऐसे वास्तविक थे कि सारिपुत्र बुद्ध के पास दौड़ा गया और बोला कि ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं। बुद्ध ने कहा, वे कुछ नहीं हैं, मात्र स्वप्न हैं।

लेकिन सारिपुत्र ने कहा कि वे इतने वास्तविक हैं कि मैं कैसे उन्हें स्वप्न कहूं ? जब एक फूल दिखाई पड़ता है, वह फूल किसी भी फूल से अधिक वास्तविक मालूम पड़ता है। उसमें सुगंध है। उसे मैं छू सकता हूं। अभी जो मैं आपको देखता हूं, वह उतना वास्तविक नहीं है; आप जितना वास्तविक मेरे

सामने हैं, वह फूल उससे अधिक वास्तविक है। इसलिए कैसे मैं भेद करूं कि कौन सच है और कौन स्वप्न ?

बुद्ध ने कहा, अब चूंकि तुम तीसरी आंख में केंद्रित हो, इसलिए स्वप्न और यथार्थ एक हो गए हैं। जो भी स्वप्न तुम देखोगे सच हो जाएगा।

और इससे ठीक उलटा भी घटित हो सकता है। जो त्रिनेत्र पर थिर हो गया, उसके लिए स्वप्न यथार्थ हो जाएगा और यथार्थ स्वप्न हो जाएगा। क्योंकि जब तुम्हारा स्वप्न सच हो जाता है तब तुम जानते हो कि स्वप्न और यथार्थ में बुनियादी भेद नहीं है।

इसलिए जब शंकर कहते हैं कि सब संसार माया है, परमात्मा का स्वप्न है, तब यह कोई सैद्धांतिक प्रस्तावना या कोई मीमांसक वक्तव्य नहीं है। यह उस व्यक्ति का आंतरिक अनुभव है जो शिवनेत्र में थिर हो गया है।

अतः जब तुम तीसरे नेत्र पर केंद्रित हो जाओ तब कल्पना करो कि सहस्रार से प्राण बरस रहा है; जैसे कि तुम किसी वृक्ष के नीचे बैठे हो और फूल बरस रहे हैं, या तुम आकाश के नीचे हो और कोई बदली बरसने लगी, या सुबह तुम बैठे हो और सूरज उग रहा है और उसकी किरणें बरसने लगी हैं। कल्पना करो और तुरंत तुम्हारे सहस्रार से प्रकाश की वर्षा होने लगेगी। यह वर्षा मनुष्य को पुनर्निर्मित करती है, उसको नया जन्म दे जाती है। तब उसका पुनर्जन्म हो जाता है।

कार्य में व्यस्तता के बीच ध्यान को अंतराल पर एकाग्र करो

छठवीं श्वास विधि :

6. सांसारिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से थोड़े ही दिनों में नया जन्म होगा।

'सांसारिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ ...।'

श्वासों को भूल जाओ और उनके बीच में अवधान को लगाओ। एक श्वास भीतर आती है। इसके पहले कि वह लौट जाए, उसे बाहर छोड़ा जाए, वहां एक अंतराल होता है।

'सांसारिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से थोड़े ही दिनों में नया जन्म होगा।'

लेकिन इसको लगातार करना है; यह छठी विधि निरंतर करने की है। इसलिए कहा गया है, 'सांसारिक कामों में लगे हुए।' जो भी तुम कर रहे हो, उसमें अवधान को दो श्वासों के अंतराल में थिर रखो। लेकिन काम-काज में लगे हुए ही इसे साधना है।

ठीक ऐसी ही एक दूसरी विधि की चर्चा हम कर चुके हैं। अब फर्क इतना है कि इसे सांसारिक कामों में लगे हुए ही करना है। उससे अलग होकर इसे मत करो। यह साधना ही तब करो जब तुम कुछ और काम कर रहे हो।

तुम भोजन कर रहे हो, भोजन करते जाओ और अंतराल पर अवधान रखो। तुम चल रहे हो, चलते जाओ और अवधान को अंतराल पर टिकाओ। तुम सोने जा रहे हो, लेटो और नींद को आने दो, लेकिन तुम अंतराल के प्रति सजग रहो।

पर काम-काज में क्यों ? क्योंकि काम-काज मन को डांवाडोल करता है। काम-काज में तुम्हारे अवधान को बार-बार बुलाना पड़ता है। तो डांवाडोल न हों; अंतराल में थिर रहें। काम-काज भी न रुके, चलता रहे। तब तुम्हारे अस्तित्व के दो तल हो जाएंगे — करना और होना। अस्तित्व के दो तल हो गए— एक करने का जगत और दूसरा होने का जगत। एक परिधि है और दूसरा केंद्र। परिधि पर काम करते रहो, रुको नहीं; लेकिन केंद्र पर भी सावधानी से काम करते रहो। क्या होगा ?

तुम्हारा काम-काज तब अभिनय हो जाएगा, मानो तुम कोई पार्ट अदा कर रहे हो। उदाहरण के लिए, तुम किसी नाटक में पार्ट कर रहे हो, तुम राम बने हो या क्राइस्ट बने हो। यद्यपि तुम राम या क्राइस्ट का अभिनय करते हो, तो भी तुम स्वयं बने रहते हो। केंद्र पर तुम जानते हो कि तुम कौन हो और परिधि पर तुम राम या क्राइस्ट का या किसी का पार्ट अदा करते रहते हो। तुम जानते हो कि तुम राम नहीं हो, राम का अभिनय भर कर रहे हो। तुम कौन हो तुमको मालूम है। तुम्हारा अवधान तुममें केंद्रित है। और तुम्हारा काम परिधि पर जारी है।

यदि इस विधि का अभ्यास हो तो पूरा जीवन एक लंबा नाटक बन जाएगा। तुम एक अभिनेता होगे, अभिनय भी करोगे और सदा अंतराल में केंद्रित रहोगे। जब तुम अंतराल को भूल जाओगे, तब तुम अभिनेता नहीं रहोगे, तब तुम कर्ता हो जाओगे। तब वह नाटक नहीं रहेगा, उसे तुम भूल से जीवन समझ लोगे।

यही हम सबने किया है। हर आदमी सोचता है कि वह जीवन जी रहा है। यह जीवन नहीं है, यह तो एक रोल है, एक पार्ट है, जो समाज ने, परिस्थितियों ने, संस्कृति ने, देश की परपरा ने तुमको थमा दिया है। और तुम अभिनय कर

रहे हो और तुम इस अभिनय के साथ तादात्म्य भी कर बैठे हो। उसी तादात्म्य को तोड़ने के लिए यह विधि है।

कृष्ण के अनेक नाम हैं। कृष्ण सबसे कुशल अभिनेताओं में से एक हैं। वे सदा अपने में थिर हैं और खेल कर रहे हैं। लीला कर रहे हैं और बिलकुल गैर-गंभीर हैं। गंभीरता तादात्म्य से पैदा होती है।

यदि नाटक में तुम सच ही राम हो जाओ तो अवश्य समस्याएं खड़ी होंगी। जब-जब सीता की चोरी होगी, तो तुमको दिल का दौरा पड़ सकता है और पूरा नाटक बंद हो जाना भी निश्चित है। लेकिन अगर तुम बस अभिनय कर रहे हो तो सीता की चोरी से तुमको कुछ भी नहीं होता है। तुम अपने घर लौटोगे और चैन से सो जाओगे। सपने में भी खयाल न आएगा कि सीता की चोरी हुई।

जब सचमुच सीता चोरी गई थी तब राम स्वयं रो रहे थे, चीख रहे थे और वृक्षों से पूछ रहे थे कि सीता कहां है ? कौन उसे ले गया ? लेकिन यह समझने जैसी बात है। अगर राम सच में रो रहे हैं और पेड़ों से पूछ रहे हैं, तब तो वे तादात्म्य कर बैठे, तब वे राम न रहे, ईश्वर के अवतार न रहे। यह स्मरण रखना चाहिए कि राम के लिए उनका वास्तविक जीवन भी अभिनय ही था। जैसे दूसरे अभिनेताओं को तुमने राम का अभिनय करते देखा है, वैसे ही राम भी अभिनय कर रहे थे—निःसंदेह एक बड़े रंगमंच पर।

इस संबंध में भारत के पास एक बहुत सुंदर कथा है। मेरी दृष्टि में यह कथा अद्‌भुत है। संसार के किसी भी भाग में ऐसी कथा नहीं मिलेगी। कहते हैं— वाल्मीकि ने राम के जन्म के पहले ही रामायण लिख दी। राम को केवल उसका अनुगमन करना पड़ा। इसलिए वास्तव में राम का पहला कृत्य भी अभिनय ही था। उनके जन्म के पहले ही कथा लिख दी गई थी, इसलिए उन्हें केवल उसका अनुगमन करना पड़ा। वे और क्या कर सकते थे ! वाल्मीकि जैसा व्यक्ति जब कथा लिखता है, तब राम को अनुगमन करना होगा। इसलिए एक तरह से सब कुछ नियत था। सीता की चोरी होनी थी, और युद्ध का लड़ा जाना था।

यदि यह तुम समझ सको तो नियति या भाग्य के सिद्धांत को भी समझ सकते हो। इसका बड़ा गहरा अर्थ है। और अर्थ यह है कि यदि तुम समझ जाते हो कि तुम्हारे लिए यह सब कुछ नियत है तो जीवन नाटक हो जाता है। अब यदि तुमको राम का अभिनय करना है तो तुम कैसे बदल सकते हो ? सब कुछ नियत है, यहां तक कि तुम्हारा संवाद भी, डायलाग भी। अगर तुम सीता से कुछ कहते हो तो वह किसी नियत वचन का दोहराना भर है।

यदि जीवन नियत माना जाए, तो तुम उसे बदल नहीं सकते। उदाहरण के लिए, एक विशेष दिन को तुम्हारी मृत्यु होने वाली है, यह नियत है। और तुम जब मरोगे तब रो रहे होगे, यह भी निश्चित है। और फलां-फलां लोग तुम्हारे पास होंगे, यह भी तय है। और यदि सब कुछ नियत है, तय है, तब सब कुछ नाटक हो जाता है। यदि सब कुछ निश्चित है तो उसका अर्थ हुआ कि तुम केवल उसे अंजाम देने वाले हो। तुमको उसे जीना नहीं है, उसका अभिनय करना है।

यह विधि, छठी विधि, तुमको एक साइकोड्रामा, एक खेल बना देती है। तुम दो श्वासों के अंतराल में थिर हो और जीवन परिधि पर चल रहा है। यदि तुम्हारा अवधान केंद्र पर है तो तुम्हारा अवधान परिधि पर नहीं है; परिधि पर जो है वह उपावधान है, वह कहीं तुम्हारे अवधान के पास घटित होता है। तुम उसे अनुभव कर सकते हो, उसे जान सकते हो, पर वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह ऐसा है जैसे तुमको नहीं घटित हो रहा है।

मैं इसे दोहराता हूं, यदि तुम इस छठी विधि की साधना करो तो तुम्हारा समूचा जीवन ऐसा हो जाएगा जैसे वह तुमको न घटित होकर किसी दूसरे व्यक्ति को घटित हो रहा है।

स्वप्न में सजगता की विधि

सातवीं श्वास विधि :

7. ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब वह सोने के क्षण में हृदय तक पहुंचेगा तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।

तुम अधिकाधिक गहरी पर्तों में प्रवेश कर रहे हो।

'ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ।'

अगर तुम तीसरी आंख को जान गए हो तो तुम ललाट के मध्य में स्थित सूक्ष्म श्वास को, अदृश्य प्राण को जान गए, और तुम यह भी जान गए कि वह ऊर्जा, वह प्रकाश बरसता है।

'जब वह सोने के क्षण में हृदय तक पहुंचेगा'—जब यह वर्षा तुम्हारे हृदय तक पहुंचेगी—'तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।'

इस विधि को तीन हिस्सों में लो। एक, श्वास के भीतर जो प्राण है, जो उसका सूक्ष्म, अदृश्य, अपार्थिव अंश है, उसे तुमको अनुभव करना होगा। यह तब होता है, जब तुम भृकुटियों के बीच अवधान को थिर रखते हो। तब यह

आसानी से घटित होता है। अगर तुम अवधान को अंतराल में टिकाते हो, तो भी घटित होता है, मगर उतनी आसानी से नहीं। यदि तुम नाभि-केंद्र के प्रति सजग हो, जहां श्वास आती है और छूकर चली जाती है, तो भी यह घटित होता है, पर कम आसानी से। उस सूक्ष्म प्राण को जानने का सबसे सुगम मार्ग है, तीसरी आंख में थिर होना। वैसे तुम जहां भी केंद्रित होगे, यह घटित होगा। तुम प्राण को प्रभावित होते अनुभव करोगे।

यदि तुम प्राण को अपने भीतर प्रवाहित होता अनुभव कर सको तो तुम यह भी जान सकते हो कि कब तुम्हारी मृत्यु होगी। यदि तुम सूक्ष्म श्वास को, प्राण को महसूस करने लगे तो मरने के छह महीने पहले से तुम अपनी आसन्न मृत्यु को जानने लगते हो। कैसे इतने संत अपनी मृत्यु की तिथि बता देते हैं ? यह आसान है। क्योंकि यदि तुम प्राण के प्रवाह को जानते हो तो जब उसकी गति उलट जाएगी तब उसको भी तुम जान लोगे। मृत्यु के छह महीने पहले प्रक्रिया उलट जाती है। प्राण तुम्हारे बाहर जाने लगता है। तब श्वास इसे भीतर नहीं ले जाती, बल्कि उलटे बाहर ले जाने लगती है—वही श्वास !

तुम इसे नहीं जान पाते हो, क्योंकि तुम इसके अदृश्य भाग को नहीं देखते, केवल वाहन को ही देखते हो। और वाहन तो एक ही रहेगा ! अभी श्वास प्राण को भीतर ले जाती है और वहां छोड़ देती है। फिर वाहन बाहर खाली वापस जाता है। और प्राण से पुनः भरकर भीतर जाता है। इसलिए याद रखो कि भीतर आने वाली श्वास और बाहर जाने वाली श्वास, दोनों एक नहीं हैं। वाहन के रूप में तो पूरक श्वास और रेचक श्वास एक ही हैं, लेकिन जहां पूरक प्राण से भरा होता है, वहीं रेचक उससे रिक्त रहता है। तुमने प्राण को पी लिया और श्वास खाली हो गई।

जब तुम मृत्यु के करीब होते हो, तब उलटी प्रक्रिया चालू होती है। भीतर जाने वाली श्वास प्राणविहीन आती है, रिक्त आती है, क्योंकि तुम्हारा शरीर अस्तित्व से प्राण को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। तुम मरने वाले हो, तुम्हारी जरूरत न रही। पूरी प्रक्रिया उलट जाती है। अब जब श्वास बाहर जाती है, तब प्राण को साथ लिए बाहर जाती है।

इसलिए जिसने सूक्ष्म प्राण को जान लिया वह अपनी मृत्यु का दिन भी तुरंत जान सकता है। छह महीने पहले प्रक्रिया उलटी हो जाती है।

यह सूत्र बहुत-बहुत महत्त्वपूर्ण है।

'ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब सोने के क्षण में वह हृदय तक पहुंचेगा तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।'

जब तुम नींद में उतर रहे हो तभी इस विधि को साधना है, अन्य समय में नहीं। ठीक सोने का समय इस विधि के अभ्यास के लिए उपयुक्त समय है।

तुम नींद में उतर रहे हो, धीरे-धीरे नींद तुम पर हावी हो रही है। कुछ ही क्षणों के भीतर तुम्हारी चेतना लुप्त होगी, तुम अचेत हो जाओगे। उस क्षण के आने के पहले तुम अपनी श्वास और उसके सूक्ष्म अंश प्राण के प्रति सजग हो जाओ और उसे हृदय तक जाते हुए अनुभव करो। अनुभव करते जाओ कि यह हृदय तक आ रहा है, हृदय तक आ रहा है। प्राण हृदय से होकर तुम्हारे शरीर में प्रवेश करता है, इसलिए यह अनुभव करते ही जाओ कि प्राण हृदय तक आ रहा है। और इस निरंतर अनुभव के बीच ही नींद को आने दो। तुम अनुभव करते जाओ और नींद को आने दो; नींद को तुमको अपने में समेट लेने दो।

यदि यह संभव हो जाए कि तुम अदृश्य प्राण को हृदय तक जाते देखो और नींद को भी, तो तुम अपने सपनों के प्रति भी सजग हो जाओगे। तब तुमको बोध रहेगा कि तुम स्वप्न देख रहे हो। आमतौर से हम नहीं जानते हैं कि हम स्वप्न देख रहे हैं। जब तुम सपना देखते हो तो तुम समझते हो कि यह यथार्थ ही है। वह भी तीसरी आंख के कारण ही संभव होता है। क्या तुमने किसी को नींद में देखा है ? उसकी आंखें ऊपर चली जाती हैं और तीसरी आंख में स्थिर हो जाती हैं। यदि नहीं देखा है तो देखो।

तुम्हारा बच्चा सोया है, उसकी आंखें खोलकर देखो कि उसकी आंखें कहां हैं। उसकी आंख की पुतलियां ऊपर को चढ़ी हैं और त्रिनेत्र पर केंद्रित हैं। मैं कहता हूं कि बच्चों को देखो, सयानों को नहीं। सयाने भरोसे योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनकी नींद गहरी नहीं होती। वे सोचते भर हैं कि सोए हैं। बच्चों को देखो। उनकी आंखें ऊपर को चढ़ जाती हैं।

इसी तीसरी आंख में थिरता के कारण तुम अपने सपनों को सच मानते हो। तुम यह नहीं समझ सकते कि वे सपने हैं। वह तुम तब जानोगे, जब सुबह जागोगे। तब तुम जानोगे कि मैं स्वप्न देख रहा था। लेकिन वह तो बाद का खयाल है। स्वप्न में तुम नहीं समझ सकते कि यह स्वप्न है। यदि समझ जाओ तो दो तल हो गए—स्वप्न है और तुम सजग हो, जागरूक हो। जो नींद में स्वप्न के प्रति जाग सके, उसके लिए यह सूत्र चमत्कारिक है।

यह सूत्र कहता है— 'स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।'

यदि तुम स्वप्न के प्रति जागरूक हो जाओ तो तुम दो काम कर सकते

हो। एक कि तुम स्वप्न पैदा कर सकते हो। आमतौर से तुम स्वप्न नहीं पैदा कर सकते। आदमी कितना नपुंसक है ! तुम स्वप्न भी नहीं पैदा कर सकते। अगर तुम कोई खास स्वप्न देखना चाहो तो नहीं देख सकते; यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। मनुष्य कितना शक्तिहीन है ! स्वप्न भी उससे नहीं निर्मित किए जा सकते। तुम स्वप्नों के शिकार भर हो, उनके स्रष्टा नहीं। स्वप्न तुम में घटित होता है, तुम कुछ नहीं कर सकते हो। न तुम उसे रोक सकते हो, न उसे पैदा कर सकते हो।

लेकिन अगर तुम यह देखते हुए नींद में उतरो कि हृदय प्राण से भर रहा है, निरंतर हर श्वास में प्राण से स्पर्शित हो रहा है तो तुम अपने स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। और यह मालकियत बहुत अनूठी है, दुर्लभ है। तब तुम जो भी स्वप्न देखना चाहो, देख सकते हो। ठीक सोने के समय भाव करो कि मैं यह स्वप्न देखना चाहता हूं, और तुम वह स्वप्न देख लोगे। और सोते समय कहो कि मैं फलां स्वप्न नहीं देखना चाहता और वह स्वप्न कभी तुम्हारे मन में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

लेकिन अपने स्वप्नों के मालिक बनने का क्या प्रयोजन है ? क्या यह व्यर्थ नहीं है ? नहीं, यह व्यर्थ नहीं है। एक बार तुम स्वप्नों के मालिक हो गए हो दोबारा तुम कभी स्वप्न नहीं देखोगे। वह व्यर्थ हो गया। जरूरत नहीं रही। जैसे ही तुम अपने स्वप्नों के मालिक हो जाते हो, स्वप्न बंद हो जाते हैं, उनकी जरूरत नहीं रह जाती है। और जब स्वप्न बंद होते हैं, तब तुम्हारी नींद का गुणधर्म ही और होता है। वह गुणधर्म वही है, जो मृत्यु का है।

मृत्यु गहन नींद है। अगर तुम्हारी नींद मृत्यु की तरह गहरी हो जाए तो उसका अर्थ है कि सपने विदा हो गए। सपने नींद को उथली बना देते हैं। सपनों के चलते तुम सतह पर ही घूमते रहते हो। सपनों में उलझे रहने के कारण तुम्हारी नींद उथली हो जाती है। और जब सपने नहीं रहते, तब तुम नींद के सागर में उतर जाते हो, उसकी गहराई छू लेते हो। वही मृत्यु है।

इसलिए भारत ने सदा कहा है कि नींद छोटी मृत्यु है, और मृत्यु लंबी नींद है। गुणात्मक रूप से दोनों समान हैं। नींद दिन-दिन की मृत्यु है, मृत्यु जीवन-जीवन की नींद है। प्रतिदिन तुम थक जाते हो, तुम सो जाते हो। और दूसरी सुबह तुम फिर अपनी शक्ति और अपनी जीवंतता को वापस पा लेते हो। तुम मानो फिर से जन्म लेते हो। वैसे ही सत्तर या अस्सी वर्ष के जीवन के बाद तुम पूरी तरह थक जाते हो। अब छोटी अवधि की मृत्यु से काम नहीं चलेगा, अब तुमको बड़ी मृत्यु की जरूरत है। उस बड़ी मृत्यु या बड़ी नींद

के बाद तुम बिलकुल नए शरीर के साथ पुनर्जन्म लेते हो।

और एक बार यदि तुम स्वप्न-शून्य नींद को जान जाओ और उसमें बोधपूर्वक रहो तो फिर मृत्यु का भय जाता रहेगा। कोई कभी नहीं मर सकता, मृत्यु असंभव है। अभी एक दिन पहले मैं कहता था कि केवल मृत्यु निश्चित है, और अब कहता हूं कि मृत्यु असंभव है। कोई कभी नहीं मरा है। कोई कभी मर नहीं सकता। संसार में यदि कुछ असंभव है तो वह मृत्यु है। क्योंकि अस्तित्व जीवन है। तुम फिर-फिर जन्मते हो, लेकिन नींद ऐसी गहरी है कि पुरानी पहचान भूल जाते हो। तुम्हारे मन से स्मृतियां पोंछ दी जाती हैं।

इसे इस तरह सोचो। मान लो कि आज तुम सोने जा रहे हो। और कोई ऐसा यंत्र बन गया है—शीघ्र ही बनने वाला है—जो कि जैसे टेपरेकार्डर के फीते से आवाज पोंछ दी जाती है, वैसे ही मन से स्मृति को पोंछ डालता है। क्योंकि स्मृति भी एक गहरी रेकार्डिंग है। देर-अबेर हम ऐसा यंत्र निकाल लेंगे जो तुम्हारे सिर में लगा दिया जाएगा और जो तुम्हारे दिमाग को पोंछकर बिलकुल साफ कर देगा। तो कल सुबह तुम वही आदमी नहीं रहोगे जो सोने गया था। क्योंकि तुमको याद नहीं रहेगा कि कौन सोने गया था। तब तुम्हारी नींद मृत्यु जैसी हो जाएगी। एक गैप आ जाएगा। तुमको याद नहीं रहेगा कि कौन सोया था। यहां यही चीज स्वाभाविक ढंग से घट रही है। जब तुम मरते हो और फिर जन्म लेते हो तब तुमको याद नहीं रहता है कि कौन मरा। तुम फिर से शुरू करते हो।

इस विधि के द्वारा पहले तो तुम स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। उसका अर्थ हुआ कि सपने आना बंद हो जाएंगे। या यदि तुम खुद सपने देखना चाहोगे तो सपना देख भी सकते हो। लेकिन तब वह ऐच्छिक सपना होगा। वह अनिवार्य नहीं रहेगा, वह तुम पर लादा नहीं जाएगा, तुम उसके शिकार नहीं होगे। और तब तुम्हारी नींद का गुणधर्म ठीक मृत्यु जैसा हो जाएगा। तब तुम जानोगे कि मृत्यु भी नींद है।

इसलिए यह सूत्र कहता है— 'स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।'

तब तुम जानोगे कि मृत्यु एक लंबी नींद है—और सहयोगी है, और सुंदर है। क्योंकि वह तुमको नवजीवन देती है, वह तुमको सब कुछ नया देती है। फिर तो मृत्यु भी समाप्त हो जाती है; स्वप्न के शेष होते ही मृत्यु समाप्त हो जाती है।

मृत्यु पर नियंत्रण पाने, अधिकार पाने का दूसरा अर्थ भी है। अगर तुम समझ

लो कि मृत्यु नींद है तो तुम उसको दिशा दे सकते हो। अगर तुम अपने सपनों को दिशा दे सकते हो तो मृत्यु को भी दे सकते हो। तब तुम चुनाव कर सकते हो कि कहां पैदा हों, कब पैदा हों, किससे पैदा हों और किस रूप में पैदा हों। तब तुम अपने जन्म के भी मालिक हो गए।

बुद्ध की मृत्यु हुई। मैं उनके अंतिम जन्म के पूर्व की चर्चा कर रहा हूं, जब वे बुद्ध नहीं हुए थे। मरने के पूर्व उन्होंने कहा— 'मैं अमुक मां-बाप से पैदा होऊंगा; ऐसी मेरी मां होगी, ऐसे मेरे पिता होंगे, और मेरी मां मेरे जन्म के बाद ही मर जाएगी। और जब मैं जन्मूंगा, मेरी मां ऐसे-ऐसे सपने देखेगी।' न सिर्फ तुमको अपने स्वप्नों पर अधिकार होता है, दूसरे के स्वप्न पर भी अधिकार हो जाता है। सो बुद्ध ने उदाहरण के तौर पर बताया कि जब मैं मां के पेट में होऊंगा, तब मेरी मां ये-ये स्वप्न देखेगी। और जब कोई इस क्रम से इन स्वप्नों को देखे, तब समझना कि मैं जन्म लेने वाला हूं।

और ऐसा हुआ। बुद्ध की माता ने उसी क्रम से सपने देखे। वह क्रम सारे भारत को पता था, विशेषकर उनको जो धर्म में, जीवन की गहन चीजों में और उसके गुह्य पथों में उत्सुक थे। पता था, इसलिए उन स्वप्नों की व्याख्या हुई। स्वप्नों की व्याख्या करने वाला पहला आदमी फ्रायड नहीं था, और न उसकी व्याख्या में गहराई थी। पहला वह केवल पश्चिम के लिए था।

तो बुद्ध के पिता ने स्वप्नों के व्याख्याकारों को, उस जमाने के फ्रायडों और जुंगों को तुरंत बुलवाया और उनसे पूछा, इस क्रम का क्या अर्थ है ? मुझे डर लगता है, ये सपने अद्भुत हैं और एक ही क्रम से आ रहे हैं। एक ही तरह के सपने क्रम से, बारी-बारी से आ रहे हैं। मानो कोई एक ही फिल्म को बार-बार देखता हो। क्या हो रहा है ?

और व्याख्याकारों ने बताया कि आप एक महान आत्मा के पिता होने जा रहे हैं, वह बुद्ध होने वाला है। लेकिन आपकी पत्नी को संकट है; क्योंकि जब ऐसे बुद्ध जन्म लेते हैं, तब मां का जीना कठिन हो जाता है। बुद्ध के पिता ने कारण पूछा। व्याख्याकारों ने कहा कि हम यह नहीं बता सकते; लेकिन जो आत्मा पैदा होने वाली है, उसका ही वक्तव्य है कि उसके जन्म लेने पर उसकी मां की मृत्यु होगी।

बाद में बुद्ध से पूछा गया कि आपकी माता की मृत्यु तुरंत क्यों हुई ? उन्होंने कहा कि एक बुद्ध को जन्म देना इतनी बड़ी घटना है कि उसके बाद और सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मां जीवित नहीं रह सकती। उसे नया जीवन शुरू करने के लिए फिर से जन्म लेना होगा। एक बुद्ध को जन्म देना

ऐसा परम अनुभव है, ऐसा शिखर है कि मां उसके बाद नहीं बची रह सकती। इसलिए मां की मृत्यु हुई।

बुद्ध ने अपने पिछले जीवन में कहा था कि मैं उस समय जन्म लूंगा, जब मेरी मां एक तालवृक्ष के नीचे खड़ी होगी। और वही हुआ। बुद्ध का जब जन्म हुआ, तब उनकी मां तालवृक्ष के नीचे खड़ी थीं। और बुद्ध ने यह भी कहा था, जब मेरी मां तालवृक्ष के नीचे खड़ी होगी, तब मैं जन्म लूंगा और तुरंत मैं सात कदम चलूंगा। यह-यह पहचान होगी, जो बताए देता हूं, ताकि तुम जान सको कि बुद्ध का जन्म हुआ है। और बुद्ध ने सब कुछ का इंगित दिया था।

और यह केवल बुद्ध के लिए ही सही नहीं है। यही जीसस के लिए सही है, यही महावीर के लिए सही है, यही और भी कई अन्यों के लिए सही है। प्रत्येक जैन तीर्थंकर ने अपने पिछले जन्म में भविष्यवाणी की थी कि उनका जन्म किस तरह होगा। उन्होंने भी स्वप्नों के क्रम बताए थे, उन्होंने भी प्रतीक बताए थे, और कहा था कि किस तरह सब कुछ घटित होने वाला है।

तुम दिशा दे सकते हो। एक बार तुम अपने स्वप्नों को दिशा देने लगो तो सब कुछ को दिशा दे सकते हो। क्योंकि यह संसार स्वप्नों का ही बना हुआ है। और स्वप्नों का ही यह जीवन बना है। इसलिए जब तुम्हारा अधिकार सपने पर हुआ तब सब कुछ पर हो गया।

यह सूत्र कहता है— 'स्वयं मृत्यु पर।'

तब कोई व्यक्ति अपने को एक विशेष तरह का जन्म भी दे सकता है, विशेष तरह का जीवन भी दे सकता है।

हम लोग तो शिकार हैं। हम नहीं जानते हैं कि क्यों जन्मते हैं और क्यों मरते हैं। कोई हमें चलाता है और क्यों ? कोई कारण नहीं दिखाई देता है। सब कुछ अराजकता, संयोग जैसा है। ऐसा इसलिए है कि हम मालिक नहीं हैं। एक बार मालिक हो जाएं तो फिर ऐसा नहीं रहेगा।

श्वासों के संधि-स्थल को भक्तिपूर्वक देखो

आठवीं श्वास विधि :

8. आत्यंतिक भक्तिपूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।

इन विधियों के बीच जरा-जरा भेद है, जरा-जरा अंतर है। और यद्यपि विधियों में वे जरा-जरा से हैं, तो भी तुम्हारे लिए वे भेद बहुत हो सकते हैं। एक अकेला

शब्द बहुत फर्क पैदा करता है।

'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ...।'

भीतर आने वाली श्वास का एक संधि-स्थल है जहां वह मुड़ती है और बाहर जाने वाली श्वास का भी एक संधि-स्थल जहां वह मुड़ती है। इन दो संधि-स्थलों—जिनकी चर्चा हम कर चुके हैं—के साथ यहां जरा-सा भेद किया गया है। हालांकि यह भेद विधि में तो जरा-सा ही है, लेकिन साधक के लिए बड़ा भेद हो सकता है। केवल एक शर्त जोड़ दी गई है—'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक,' और पूरी विधि बदल जाती है।

इसके प्रथम रूप में भक्ति का सवाल नहीं था। वह मात्र वैज्ञानिक विधि थी। तुम प्रयोग करो और वह काम करेगी। लेकिन लोग हैं जो ऐसी शुष्क वैज्ञानिक विधियों पर काम नहीं करेंगे। इसलिए जो हृदय की ओर झुके हैं, जो भक्ति के जगत के हैं, उनके लिए जरा-सा भेद किया गया है— 'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।'

अगर तुम वैज्ञानिक रुझान के नहीं हो, अगर तुम्हारा मन वैज्ञानिक नहीं है, तो तुम इस विधि को प्रयोग में लाओ।

'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक'—प्रेम-श्रद्धा के साथ—'श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।'

यह कैसे संभव होगा ?

भक्ति तो किसी के प्रति होती है, चाहे वे कृष्ण हों या क्राइस्ट। लेकिन तुम्हारे स्वयं के प्रति, श्वास के दो संधि-स्थलों के प्रति भक्ति कैसी होगी ? यह तत्त्व तो गैर-भक्ति वाला है। लेकिन व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर है।

तंत्र का कहना है कि शरीर मंदिर है। तुम्हारा शरीर परमात्मा का मन्दिर है, उसका निवास-स्थान है। इसलिए इसे मात्र अपना शरीर या एक वस्तु न मानो। यह पवित्र है, धार्मिक है। जब तुम एक श्वास भीतर ले रहे हो तो तब तुम ही श्वास नहीं ले रहे हो, तुम्हारे भीतर परमात्मा भी श्वास ले रहा है। तुम चलते-फिरते हो—इसे इस तरह देखो—तुम नहीं, स्वयं परमात्मा तुममें चल रहा है। तब सब चीजें पूरी तरह भक्तिपूर्ण हो जाती हैं।

अनेक संतों के बारे में कहा जाता है कि वे अपने शरीर को प्रेम करते थे; वे उसके साथ ऐसा व्यवहार करते थे, मानो वे शरीर उनकी प्रेमिकाओं के रहे हों।

तुम भी अपने शरीर को यह व्यवहार दे सकते हो। उसके साथ यंत्रवत व्यवहार भी कर सकते हो। वह भी एक रुझान है, एक दृष्टि है। तुम इसे

अपराधपूर्ण, पाप-भरा और गंदा भी मान सकते हो। और इसे चमत्कार भी समझ सकते हो, परमात्मा का घर भी समझ सकते हो। यह तुम पर निर्भर है।

यदि तुम अपने शरीर को मंदिर मान सको तो यह विधि तुम्हारे काम आ सकती है— 'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक ...।' इसका प्रयोग करो। जब तुम भोजन कर रहे हो तब इसका प्रयोग करो। यह न सोचो कि तुम भोजन कर रहे हो, सोचो कि परमात्मा तुममें भोजन कर रहा है। और तब परिवर्तन को देखो। तुम वही चीज खा रहे हो, लेकिन तुरंत सब कुछ बदल जाता है। अब तुम परमात्मा को भोजन दे रहे हो। तुम स्नान कर रहे हो, कितना मामूली-सा काम है। लेकिन दृष्टि बदल दो, अनुभव करो कि तुम अपने में परमात्मा को स्नान करा रहे हो। तब यह विधि आसान होगी।

'आत्यंतिक भक्तिपूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।'

मृतवत लेट रहो। अपलक घूरो। कुछ चूसो और चूसना बन जाओ

नौवीं विधि :

9. मृतवत लेट रहो। क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो। या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चूसो और चूसना बन जाओ।

'मृतवत लेट रहो।'

प्रयोग करो कि तुम एकाएक मर गए हो। शरीर को छोड़ दो, क्योंकि तुम मर गए हो। बस कल्पना करो कि मैं मृत हूं, मैं शरीर को नहीं हिला सकता हूं, आंख भी नहीं हिला सकता हूं, मैं चीख भी नहीं सकता हूं, मैं रो भी नहीं सकता हूं, मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं, मैं मरा हुआ हूं। और तब देखो कि कैसा लगता है। लेकिन अपने को धोखा मत दो। तुम शरीर को थोड़ा हिला सकते हो। नहीं, हिलाओ नहीं। यदि मच्छर भी आ जाए तो भी शरीर को मृत ही समझो। यह सबसे अधिक उपयोग की गई विधि है।

रमण महर्षि इस विधि से ज्ञान को उपलब्ध हुए थे। लेकिन यह उनके इस जन्म की विधि नहीं थी। इस जन्म में तो अचानक सहज ही यह उन्हें घटित हो गई। लेकिन जरूर उन्होंने किसी पिछले जन्म में इसकी सतत साधना की होगी। अन्यथा सहज कुछ भी घटित नहीं होता है। प्रत्येक चीज का कार्य-कारण संबंध रहता है।

तो जब वे केवल चौदह या पंद्रह वर्ष के थे, एक रात अचानक रमण को लगा कि मैं मरने वाला हूं। उनके मन में यह बात बैठ गई कि मृत्यु आ गई है। वे अपना शरीर भी नहीं हिला सकते थे। उन्हें लगा कि मुझे लकवा मार गया है। फिर उन्हें अचानक घुटन महसूस हुई और वे जान गए कि उनकी हृदय-गति बंद होने वाली है। और वे चिल्ला भी नहीं सके, बोल भी नहीं सके कि मैं मर रहा हूं।

कभी-कभी किसी दुःस्वप्न में ऐसा होता है कि जब तुम न चिल्ला पाते हो और न हिल पाते हो। जागने पर भी कुछ क्षणों तक तुम कुछ नहीं कर पाते हो। यही हुआ। रमण को अपनी चेतना पर तो पूरा अधिकार था, लेकिन अपने शरीर पर बिलकुल नहीं। वे जानते थे कि मैं हूं, चेतन हूं, सजग हूं; लेकिन मैं मरने वाला हूं। और यह निश्चय इतना घना था कि कोई विकल्प भी नहीं रहा। इसलिए उन्होंने सब प्रयत्न छोड़ दिए। उन्होंने आंखें बंद कर लीं और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे-धीरे उनका शरीर सख्त हो गया। शरीर मर गया। लेकिन एक समस्या उठ खड़ी हुई। वे जान रहे थे कि शरीर नहीं है, लेकिन मैं तो हूं। वे जान रहे थे कि मैं जीवित हूं और शरीर मर गया है। फिर वे उस स्थिति से वापस आए। सुबह में शरीर भी स्वस्थ था। लेकिन वही आदमी नहीं लौटा था जो मृत्यु के पूर्व था, क्योंकि उसने मृत्यु को जान लिया था।

अब रमण ने एक नए लोक को देख लिया था, चेतना के एक नए आयाम को जान लिया था। उन्होंने घर छोड़ दिया। उस मृत्यु के अनुभव ने उन्हें पूरी तरह बदल दिया। और वे इस युग के बहुत थोड़े से प्रबुद्ध पुरुषों में हुए।

और यही विधि है जो रमण को सहज घटित हुई। लेकिन तुमको यह सहज ही नहीं घटित होने वाली है। लेकिन प्रयोग करो तो किसी जीवन में यह सहज हो सकती है। प्रयोग करते हुए भी यह घटित हो सकती है। और यदि नहीं घटित हुई तो भी प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता है। यह प्रयत्न तुममें रहेगा, तुम्हारे भीतर बीज बनकर रहेगा। कभी जब उपयुक्त समय होगा और वर्षा होगी, यह बीज अंकुरित हो जाएगा।

सब सहजता की यही कहानी है। किसी काल में बीज बो दिया गया था, लेकिन ठीक समय नहीं आया था और वर्षा नहीं हुई थी। किसी दूसरे जन्म और जीवन में समय तैयार होता है, तुम अधिक प्रौढ़, अधिक अनुभवी होते हो, और संसार से उतने ही निराश होते हो, तब किसी विशेष स्थिति में वर्षा होती है और बीज फूट निकलता है।

'मृतवत लेट रहो। क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो।'

निश्चय ही जब तुम मर रहे हो तो वह कोई सुख का क्षण नहीं होगा। वह आनंदपूर्ण नहीं हो सकता, जब तुम देखते हो कि तुम मर रहे हो। भय पकड़ेगा, मन में क्रोध उठेगा, या विषाद, उदासी, शोक, संताप, कुछ भी पकड़ सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में फर्क होगा।

सूत्र कहता है— 'क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो, स्थिर रहो।'

अगर तुमको क्रोध घेरे तो उसमें ही स्थित रहो; अगर उदासी घेरे तो उसमें भी। भय, चिंता, कुछ भी हो, उसमें ही ठहरे रहो, डटे रहो। तुम मर गए हो, फिर क्या कर सकते हो ? इसलिए वैसे के वैसे स्थिर रहो। जो भी मन में हो, उसे वैसा ही रहने दो, क्योंकि शरीर तो मर चुका है।

यह ठहरना बहुत सुंदर है। अगर तुम कुछ मिनटों के लिए भी ठहर गए तो पाओगे कि सब कुछ बदल गया। लेकिन हम हिलने लगते हैं। यदि मन में कोई आवेग उठता है तो शरीर हिलने लगता है। उदासी आती है तो भी शरीर हिलता है। इसे आवेग इसीलिए कहते हैं कि यह शरीर में वेग पैदा करता है। मृतवत महसूस करो और आवेगों को शरीर हिलाने की इजाजत मत दो। वे भी वहां रहें और तुम भी ठहरे रहो—स्थिर, मृतवत। कुछ भी हो, पर हलचल नहीं हो, गति नहीं हो। बस, ठहरे रहो।

'या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो।'

यह—या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो—मेहर बाबा की विधि थी। वर्षों वे अपने कमरे की छत को घूरते रहे, निरंतर ताकते रहे। वर्षों वे जमीन पर मृतवत पड़े रहे और पुतलियों को, आंखों को हिलाए बिना छत को एकटक देखते रहे। ऐसा वे लगातार घंटों बिना कुछ किए घूरते रहे थे, टकटकी लगाकर देखते रहते थे।

आंखों से घूरना अच्छा है, क्योंकि उससे तुम फिर तीसरी आंख में स्थिर हो जाते हो। और एक बार तुम तीसरी आंख में थिर हो गए तो चाहने पर भी तुम पुतलियों को नहीं घुमा सकते। वे भी थिर हो जाती हैं—अचल।

मेहर बाबा इसी घूरने के जरिए उपलब्ध हो गए। और तुम कहते हो कि इन छोटे-छोटे अभ्यासों से क्या होगा ! लेकिन मेहर बाबा लगातार तीन वर्षों तक बिना कुछ किए छत को घूरते रहे थे। तुम सिर्फ तीन मिनट के लिए ऐसी टकटकी लगाओ और तुमको लगेगा कि तीन वर्ष गुजर गए। तीन मिनट भी बहुत लंबा समय मालूम पड़ेगा। लगेगा कि समय ठहर गया है और घड़ी बंद हो गई है। लेकिन मेहर बाबा घूरते ही रहे, घूरते ही रहे। धीरे-धीरे विचार मिट

गए, गति बंद हो गई और मेहर बाबा मात्र चेतना रह गए। वे मात्र घूरना बन गए, टकटकी बन गए। और तब वे आजीवन मौन रह गए। टकटकी के द्वारा वे अपने भीतर इतने शांत हो गए कि उनके लिए फिर शब्द-रचना असंभव हो गई।

मेहर बाबा अमेरिका में थे। वहां एक आदमी था जो दूसरों के विचार को, मन को पढ़ना जानता था। और वास्तव में वह आदमी दुर्लभ था—मन के पाठक के रूप में। वह तुम्हारे सामने बैठता, आंखें बंद कर लेता और कुछ ही क्षणों में वह तुम्हारे साथ ऐसा लयबद्ध हो जाता कि तुम जो भी मन में सोचते, वह उसे लिख डालता था। हजारों बार उसकी परीक्षा ली गई थी, और वह सदा सही साबित हुआ था। तो कोई उसे मेहर बाबा के पास ले आया। वह बैठा और विफल रहा। और यह उसकी जिंदगी की पहली विफलता थी। और एक ही। और फिर हम यह भी कैसे कहें कि यह उसकी विफलता हुई !

वह आदमी घूरता रहा, घूरता रहा, और तब उसे पसीना आने लगा। लेकिन एक शब्द भी उसके हाथ नहीं लगा। हाथ में कलम लिए बैठा रहा और फिर बोला—किस किस्म का आदमी है यह ! मैं नहीं पढ़ पाता हूं, क्योंकि पढ़ने के लिए कुछ है ही नहीं। यह आदमी तो बिलकुल खाली है। मुझे यह भी याद नहीं रहता कि कोई यहां बैठा है। आंख बंद करने के बाद मुझे बार-बार यह देखने के लिए आंखें खोलनी पड़ती हैं कि एक व्यक्ति यहां है कि यहां से हट गया है। मेरे लिए एकाग्र होना भी कठिन हो गया, क्योंकि ज्यों ही मैं आंख बंद करता हूं कि मुझे लगता है कि धोखा दिया जा रहा है, वह व्यक्ति यहां से हट गया है। मेरे सामने कोई भी नहीं है। और जब मैं आंख खोलता हूं तो उनको सामने ही पाता हूं। वह तो कुछ भी नहीं सोच रहा है।

उस टकटकी ने, सतत टकटकी ने मेहर बाबा के मन को पूरी तरह विसर्जित कर दिया था।

'या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चूसो और चूसना बन जाओ।'

यहां जरा-सा रूपांतरण है। कुछ भी काम दे देगा। तुम मर गए, यही काफी है।

'क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो।'

केवल यह अंश भी एक विधि बन सकता है। तुम क्रोध में हो; लेटे रहो और क्रोध में स्थित रहो, पड़े रहो। इससे हटो नहीं, कुछ करो नहीं। स्थिर पड़े रहो।

कृष्णमूर्ति इसी की चर्चा किए चले जाते हैं। उनकी पूरी विधि इस एक चीज पर निर्भर है— 'क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो।' यदि तुम क्रुद्ध हो तो क्रुद्ध होओ और क्रुद्ध रहो, उससे हिलो नहीं, हटो नहीं। और अगर तुम वैसे ठहर सको तो क्रोध चला जाता है। और तुम दूसरे आदमी होकर उससे निकलोगे। और एक बार तुम क्रोध को उससे आंदोलित हुए बिना देख लो तो तुम उसके मालिक हो गए।

'या पुतलियों को घुमाए बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चूसो और चूसना बन जाओ।'

यह अंतिम विधि शारीरिक है और प्रयोग में सुगम है। क्योंकि चूसना पहला काम है जो कि कोई बच्चा करता है। चूसना जीवन का पहला कृत्य है। बच्चा जब पैदा होता है तब वह पहले रोता है। तुमने यह जानने की कोशिश नहीं की होगी कि बच्चा क्यों रोता है। सच में वह रोता नहीं है, वह रोता हुआ मालूम पड़ता है। वह सिर्फ हवा को पी रहा है, चूस रहा है। अगर वह नहीं रोए तो मिनटों के भीतर वह मर जाएगा। क्योंकि रोना हवा लेने का पहला प्रयत्न है। जब वह पेट में था, बच्चा श्वास नहीं लेता था। बिना श्वास लिए वह जीता था। वह वही प्रक्रिया कर रहा था, जो भूमिगत समाधि लेने पर योगीजन करते हैं। वह बिना श्वास लिए प्राण को ग्रहण कर रहा था—मां से शुद्ध प्राण ही ग्रहण कर रहा था।

यही कारण है कि मां और बच्चे के बीच जो प्रेम है, वह और प्रेम से सर्वथा भिन्न होता है। क्योंकि शुद्धतम प्राण दोनों को जोड़ता है। अब ऐसा फिर कभी नहीं होगा। उनके बीच एक सूक्ष्म प्राणमय संबंध था। मां बच्चे को प्राण देती थी, बच्चा श्वास तक नहीं लेता था।

लेकिन जब वह जन्म लेता है, तब वह मां के गर्भ से उठाकर एक बिलकुल अनजानी दुनिया में फेंक दिया जाता है। अब उसे प्राण या ऊर्जा उस आसानी से उपलब्ध नहीं होगी, उसे स्वयं ही श्वास लेनी होगी। उसकी पहली चीख चूसने का पहला प्रयत्न है। उसके बाद वह मां के स्तन से दूध चूसेगा। ये बुनियादी कृत्य हैं, जो तुम करते हो। बाकी सब काम बाद में आते हैं। जीवन के वे बुनियादी कृत्य हैं, और प्रथम कृत्य। उनका अभ्यास भी किया जा सकता है।

यह सूत्र कहता है— 'या कुछ चूसो और चूसना बन जाओ।'

किसी भी चीज को चूसो। हवा को ही चूसो, लेकिन तब हवा को भूल जाओ और चूसना ही बन जाओ। इसका अर्थ क्या हुआ ? तुम कुछ चूस रहे हो, इसमें तुम चूसने वाले हो, चोषण नहीं। तुम चोषण के पीछे खड़े हो। यह

सूत्र कहता है कि पीछे मत खड़े रहो, कृत्य में भी सम्मिलित हो जाओ और चोषण बन जाओ।

किसी भी चीज से तुम प्रयोग कर सकते हो। अगर तुम दौड़ रहे हो तो दौड़ना ही बन जाओ और दौड़ने वाले न रहो। दौड़ना बन जाओ, दौड़ बन जाओ और दौड़ने वाले को भूल जाओ। अनुभव करो कि भीतर कोई दौड़ने वाला नहीं है, मात्र दौड़ने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया तुम हो—सरिता जैसी प्रक्रिया। भीतर कोई नहीं है, भीतर सब शांत है। और केवल यह प्रक्रिया है।

चूसना, चोषण अच्छा है। लेकिन तुमको यह कठिन मालूम पड़ेगा, क्योंकि हम इसे बिलकुल भूल गए हैं। यह कहना भी ठीक नहीं है कि बिलकुल भूल गए हैं, क्योंकि उसका विकल्प तो निकालते ही रहते हैं। मां के स्तन की जगह सिगरेट ले लेती है और तुम उसे चूसते रहते हो। यह स्तन ही है, मां का स्तन, मां का चुचुक। और जो गर्म धुआं निकलता है, वह मां का गर्भ दूध है।

इसलिए छुटपन में जिनको मां के स्तन के पास उतना नहीं रहने दिया गया, जितना वे चाहते थे, वे पीछे चलकर धूम्रपान करने लगते हैं। यह विकल्प है। और विकल्प से भी काम चल जाएगा। इसलिए अगर तुम सिगरेट पीते हो तो धूम्रपान ही बन जाओ। सिगरेट को भूल जाओ, पीने वाले को भूल जाओ और धूम्रपान ही बने रहो।

एक विषय है जिसे तुम चूसते हो, एक विषयी है जो चूसता है, और उनके बीच चूसने की, चोषण की प्रक्रिया है। तुम चोषण बन जाओ, प्रक्रिया बन जाओ। इसे प्रयोग करो। पहले कई चीजों से प्रयोग करना होगा और तब तुम जानोगे कि तुम्हारे लिए क्या चीज सही है।

तुम पानी पी रहे हो। ठंडा पानी भीतर जा रहा है। तुम पीना बन जाओ। पानी न पीओ। पानी को भूल जाओ, अपने को भूल जाओ, अपनी प्यास को भी, और मात्र पीना बन जाओ। प्रक्रिया में ठंडक है, स्पर्श है, प्रवेश है, और पीना है—वही सब बने रहो।

क्यों नहीं ? क्या होगा ? यदि तुम चोषण बन जाओ तो क्या होगा ?

यदि तुम चोषण बन जाओ तो तुम निर्दोष हो जाओगे—ठीक वैसे जैसे प्रथम दिन जन्मा हुआ शिशु होता है। क्योंकि वह प्रथम प्रक्रिया है। एक तरह से आप पीछे की ओर यात्रा करेंगे। लेकिन उसकी ललक, लालसा भी तो है। आदमी का पूरा अस्तित्व उस स्तनपान के लिए तड़पता है। उसके लिए वह कई प्रयोग करता है, लेकिन कुछ भी काम नहीं आता। क्योंकि वह बिंदु ही खो गया है। जब तक तुम चूसना नहीं बन जाते, तब तक कुछ भी काम नहीं आएगा। इसलिए

इसे प्रयोग में लाओ।

एक आदमी को मैंने यह विधि दी थी। उसने कई विधियां प्रयोग की थीं। तब वह मेरे पास आया। उससे मैंने कहा, यदि मैं समूचे संसार से केवल एक चीज ही तुम्हें चुनने को दूं तो तुम क्या चुनोगे ? और मैंने तुरंत उसे यह भी कहा कि आंख बंद करो और इस पर तुम कुछ भी सोचे बिना मुझे बताओ। वह डरने लगा, झिझकने लगा। तो मैंने कहा, न डरो और न झिझको; मुझे स्पष्ट बताओ। उसने कहा, यह तो बेहूदा मालूम पड़ता है। लेकिन मेरे सामने एक स्तन उभर रहा है। और यह कहकर अपराध-भाव अनुभव करने लगा। तो मैंने कहा, मत अपराध अनुभव करो। स्तन में गलत क्या है ? सर्वाधिक सुंदर चीजों में स्तन एक है, फिर अपराध-भाव क्यों ?

लेकिन उस आदमी ने कहा, यह चीज तो मेरे लिए ग्रस्तता बन गई है। इसलिए अपनी विधि बताने के पहले आप कृपा कर यह बताएं कि मैं क्यों स्त्रियों के स्तनों में इतना उत्सुक हूं ? जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हूं, पहले उसका स्तन ही मुझे दिखाई देता है। शेष शरीर उतने महत्त्व का नहीं रहता।

और यह बात केवल उसके साथ ही लागू नहीं है। प्रत्येक के साथ, प्रायः प्रत्येक के साथ यह लागू है। और यह बिलकुल स्वाभाविक है, क्योंकि मां का स्तन ही जगत के साथ आदमी का पहला परिचय बनता है। यह बुनियादी है। जगत के साथ पहला संपर्क मां का स्तन बनता है। यही कारण है कि स्तन में इतना आकर्षण है, स्तन इतना सुंदर लगता है, उसमें एक चुंबकीय शक्ति है।

वह चुंबकीय शक्ति तुम्हारे अचेतन से आती है। वह पहली चीज है जिसके साथ तुम संपर्क में आए। और यह संपर्क मधुर था, बहुत मधुर। यह सुंदर लगा। इसी ने भोजन दिया, शक्ति दी, प्रेम दिया, सब कुछ दिया। यह संपर्क कोमल, ग्रहणशील और निमंत्रण जैसा था। और यह मनुष्य के मन में सदा वैसा ही बना रहा है।

इसलिए मैंने उस व्यक्ति से कहा कि अब मैं तुमको विधि दूंगा। और यही विधि थी जो मैंने उसे दी— 'किसी चीज को चूसो और चूसना बन जाओ।' मैंने बताया कि आंखें बंद कर लो और अपनी मां का स्तन याद करो या कोई स्तन जो तुम्हें पसंद हो, कल्पना करो और ऐसे चूसना शुरू करो कि यह असली स्तन है। शुरू करो।

उसने चूसना शुरू किया। तीन दिन के अंदर वह इतनी तेजी से, पागलपन

के साथ चूसने लगा और वह इसके साथ इतना मंत्र-बद्ध-सा हो गया कि उसने एक दिन आकर मुझसे कहा, 'यह तो समस्या बन गई। सात दिन मैं चूसता ही रहा हूं। और यह इतना सुंदर है और इसमें ऐसी गहरी शांति पैदा होती है।' और तीन महीने के अंदर उसका चोषण एक मौन मुद्रा बन गया। तुम होठों से समझ नहीं सकते कि वह कुछ कर रहा है। लेकिन अंदर में चूसना जारी था। सारा समय वह चूसता रहता। यह जप बन गया।

तीन महीने बाद उसने मुझसे कहा, 'कुछ अनूठा मेरे साथ घटित हो रहा है। निरंतर कुछ मीठा द्रव सिर से मेरी जीभ पर बरसता है। और यह इतना मीठा और शक्तिदायक है कि मुझे किसी और भोजन की जरूरत नहीं रही। भूख समाप्त हो गई है और भोजन मात्र औपचारिक हो गया है। परिवार में समस्या न बने, इसलिए मैं दूध लेता हूं। लेकिन कुछ मुझे मिल रहा है जो बहुत मीठा है, बहुत जीवनदायी है।'

मैंने उसे यह विधि जारी रखने को कहा।

तीन महीने और। और वह एक दिन नाचता हुआ, पागल-सा मेरे पास आया, और बोला, 'चूसना तो चला गया, लेकिन अब मैं दूसरा ही आदमी हूं। अब मैं वही नहीं हूं जो आपके पास आया था। मेरे लिए कोई द्वार खुल गया है। कुछ टूट गया है और कोई आकांक्षा शेष नहीं रही। अब मैं कुछ भी नहीं चाहता—न परमात्मा, न मोक्ष। अब जो है, जैसा है; ठीक है। मैं उसे स्वीकारता हूं और आनंदित हूं।'

इसे प्रयोग में लाओ। किसी चीज को चूसो और चूसना बन जाओ। यह बहुतों के लिए उपयोगी होगा, क्योंकि यह इतना आधारभूत है।

आज इतना ही।

6

स्वप्न का अतिक्रमण कैसे हो

प्रश्न-सार

1. स्वप्न देखते हुए बोधपूर्ण कैसे हुआ जाए ?

2. प्रयत्न क्यों करें अगर हम नाटक के पात्र भर हैं ?

एक मित्र ने पूछा है :

क्या समझाने की कृपा करेंगे कि स्वप्न देखते हुए बोधपूर्ण होने के अन्य उपाय क्या हैं ?

यह प्रश्न उन सबके लिए महत्त्वपूर्ण है जो ध्यान में उत्सुक हैं। क्योंकि सचाई यह है कि स्वप्न देखने की प्रक्रिया का अतिक्रमण ही ध्यान है।

तुम सतत सपना देखते हो। रात में ही नहीं, पूरा दिन भी सपना देखते रहते हो। यह समझने की पहली बात है कि जागते हुए भी तुम सपना देखते हो। दिन के किसी समय आंखें बंद करो, शरीर को थोड़ा शिथिल करो, और पाओगे कि सपना चल रहा है। वह कभी बंद ही नहीं होता, हमारे दैनंदिन कामकाज के चलते वह सिर्फ दबा रहता है। यह दिन के तारों जैसा है। रात में तुम तारों को देखते हो, दिन में उन्हें नहीं देखते; लेकिन तारे सदा होते हैं। दिन में सूर्य की रोशनी में बस छिप जाते हैं।

तुम एक गहरे कुएं में उतर जाओ तो वहां से तुम्हें दिन में भी आकाश के तारे दिखाई देंगे। तारों को देखने के लिए थोड़ा अंधकार जरूरी है। इसलिए एक गहरे कुएं में प्रवेश करो और उसकी पेंदी से ऊपर देखो, तुम्हें दिन में भी तारे दिखाई देंगे। तारे वहां हैं। ऐसा नहीं है कि रात में वे वहां होते हैं और दिन में नही होते। रात में तुम उन्हें आसानी से देख लेते हो, दिन में नहीं देख पाते, क्योंकि सूर्य का प्रकाश बाधा बन जाता है।

वही बात स्वप्न के साथ सही है। ऐसा नहीं है कि तुम नींद में ही सपना

देखते हो। नींद में स्वप्न आसानी से अनुभव में आता है, क्योंकि उस समय दिन का कार्यकलाप बंद रहता है। इसलिए स्वप्न का भीतरी कार्यकलाप देखा और महसूस किया जाता है। जब सुबह तुम जागते हो तो भी स्वप्न चलता ही रहता है, सिर्फ तुम बाहर के कामों में व्यस्त हो जाते हो। दैनंदिन कामकाज का सिलसिला स्वप्न को दबा देता है। लेकिन भीतर स्वप्न जारी रहता है।

एक आरामकुर्सी में बैठकर शरीर को शिथिल करो, आंखें बंद करो, और अचानक तुम देखोगे कि स्वप्न के तारे मौजूद हैं, वे कहीं गए नहीं हैं। स्वप्न सदा चलता रहता है, वह एक सतत प्रक्रिया है।

दूसरी बात, अगर सपना जारी है तो सच में तुम जागे हुए नहीं हो, तुम सोए हुए हो। फर्क इतना ही है कि रात में अधिक सोए रहते हो और दिन में थोड़ा कम। यह फर्क सापेक्ष है। तो अगर सपना जारी है तो तुम जागे हुए नहीं कहे जा सकते। सपना चेतना पर एक पर्त डाल देता है, और यह पर्त धुएं की भांति तुम्हें घेर लेती है। इसलिए जब तक तुम सपना देखते हो तुम जागे हुए नहीं हो—चाहे दिन हो या रात हो।

इसलिए दूसरी बात यह कि जब सपना बिलकुल ही नहीं है तो ही तुम जागे हुए कहे जा सकते हो। हम बुद्ध को जाग्रत पुरुष कहते हैं। यह जागरण क्या है ? यह जागरण वस्तुतः आंतरिक स्वप्न-प्रक्रिया का विसर्जन है। भीतर कोई सपना नहीं है। तुम जाते हो, तो वहां कोई सपना नहीं मिलता। मानो आकाश में तारे नहीं रहे, शुद्ध आकाश ही है। जब स्वप्न नहीं रहा तो तुम शुद्ध आकाश हो। यह शुद्धता, यह निर्दोषता, यह स्वप्नरहित चैतन्य ही बुद्धत्व या जागरण कहलाता है।

सदियों से सारे संसार का अध्यात्म—चाहे वह पूर्व का हो या पश्चिम का—कहता आया है कि मनुष्य सोया हुआ है। जीसस कहते हैं, बुद्ध कहते हैं, उपनिषद कहते हैं कि मनुष्य सोया हुआ है। इसलिए तुलनात्मक रूप से रात में तुम ज्यादा सोए हो और दिन में कुछ कम। लेकिन अध्यात्म कहता है कि आदमी नींद में है।

इस बात को ठीक से समझना होगा। इसका क्या अर्थ हुआ ? इस सदी में गुरजिएफ ने इस तथ्य पर सर्वाधिक जोर दिया कि आदमी नींद में है। उसने तो यहां तक कहा कि आदमी एक तरह की नींद ही है। प्रत्येक आदमी गहरी नींद में है। ऐसा कहने का कारण क्या है ?

तुम नहीं जानते, तुम्हें स्मरण नहीं है कि तुम कौन हो। क्या जानते हो कि तुम कौन हो ? अगर रास्ते में तुम किसी व्यक्ति को मिलो और उससे पूछो

कि तुम कौन हो और वह उत्तर न दे सके तो तुम क्या सोचोगे ? तुम सोचोगे कि वह या तो पागल है या नशे में है या सोया हुआ है। अगर वह नहीं बता सके कि वह कौन है तो तुम उसके संबंध में क्या सोचोगे ?

धर्म के मार्ग पर सबका यही हाल है। तुम नहीं बता सकते कि तुम कौन हो। जब गुरजिएफ या जीसस या कोई भी कहता है कि आदमी सोया है तो उसका पहला अर्थ यह है— तुम स्वयं के संबंध में जागरूक नहीं हो। तुम स्वयं को नहीं जानते हो, तुम स्वयं से कभी नहीं मिले हो। विषयगत संसार में तो तुम बहुत जानते हो, लेकिन स्वयं विषयी को नहीं जानते।

तुम्हारे मन का हाल यह है कि मानो तुम फिल्म देखने गए हो। पर्दे पर फिल्म चल रही है और तुम उसे देखने में ऐसे तल्लीन हो कि तुम्हें फिल्म और कहानी के अतिरिक्त सब भूल जाता है। उस समय अगर कोई पूछ दे कि तुम कौन हो तो तुम कुछ न कह सकोगे।

स्वप्न भी फिल्म जैसा है—ठीक फिल्म जैसा। मन संसार को प्रतिबिंबित करता है, मन के दर्पण में संसार प्रतिबिंबित होता है। वही स्वप्न है। और तुम उसमें इस कदर डूबे हो, उसके साथ इस हद तक एकात्म हो गए हो कि बिलकुल भूल गए हो कि मैं कौन हूं। सोए होने का यही अर्थ है कि स्वप्न देखने वाला स्वप्न में खो जाए। स्वयं को छोड़कर तुम सब कुछ देखते हो, स्वयं को छोड़कर सब कुछ महसूस करते हो, स्वयं को छोड़कर सब कुछ जानते हो। यह आत्म-अज्ञान ही नींद है। और जब तक यह स्वप्न-क्रिया पूरी तरह खतम नहीं होती, तुम स्वयं के प्रति नहीं जाग सकते।

तुमने देखा होगा कि तीन घंटे तक फिल्म देखते रहने के बाद जब अचानक उसका अंत आता है तो तुम भी स्वयं में वापस आ जाते हो। तब तुम्हें याद आता है कि तीन घंटे गुजर गए, तब याद आता है कि यह तो फिल्म थी। फिर तुम्हें पता चलता है कि तुम रो रहे थे, क्योंकि फिल्म दुखांत थी; या हंस रहे थे, या कुछ और कर रहे थे। और तब तुम्हें अपनी बेवकूफी पर हंसी आती है कि मात्र फिल्म थी, कहानी थी; कि परदे पर कुछ नहीं था सिर्फ प्रकाश और छाया का खेल था, बिजली का खेल था। अब तुम हंसते हो। अब तुम स्वयं में लौट आए हो। लेकिन तीन घंटे तक कहां थे ? तुम अपने केंद्र पर नहीं थे। तुम बिलकुल परिधि पर पहुंच गए थे। तब तुम वहां थे जहां फिल्म चल रही थी। तुम अपने केंद्र पर नहीं थे, तुम स्वयं के साथ नहीं थे; तुम कहीं और थे।

यही स्वप्न में घटता है। और यही हमारी जिंदगी है। फिल्म की घटना

तो सिर्फ तीन घंटे की है, लेकिन स्वप्न-क्रिया जन्मों-जन्मों चलती है। और अचानक यदि सपना बंद भी हो जाए तो भी तुम नहीं पहचान पाओगे कि तुम कौन हो। अचानक तुम धुंधला-धुंधला अनुभव करोगे और भयभीत भी। तुम फिर फिल्म में लौट जाना चाहोगे, क्योंकि वह परिचित है। तुम उससे भलीभांति परिचित हो, तुम उसके साथ समायोजित हो।

क्योंकि जब स्वप्न तिरोहित होता है तो एक मार्ग खुलता है, खासकर झेन में जिसे त्वरित मार्ग, त्वरित बुद्धत्व का मार्ग कहते हैं। इन एक सौ बारह विधियों में कई ऐसी विधियां हैं, जो त्वरित बुद्धत्व को प्राप्त करा सकती हैं। लेकिन वह तुम्हारे लिए अति हो जा सकती है। और हो सकता है कि तुम उसे झेल न पाओ। इस विस्फोट में तुम मर भी सकते हो। क्योंकि सपनों के साथ तुम इतने समय से जी रहे हो कि उनके हटने पर तुम्हें याद ही नहीं रहेगा कि तुम कौन हो।

अगर यह सारा संसार अचानक समाप्त हो जाए और तुम बिलकुल अकेले रह जाओ तो यह इतना बड़ा आघात होगा कि तुम मर जाओगे। ठीक वही बात होगी अगर सारी स्वप्न-क्रिया अचानक तुम्हारी चेतना में लुप्त हो जाए। तुम्हारा संसार ही समाप्त हो जाएगा, क्योंकि सपना ही तुम्हारा संसार है। हम सच में संसार में नहीं हैं। हमारा संसार बाहरी चीजों से नहीं, वरन हमारे सपनों से बना होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वप्न-लोक में रहता है।

याद रहे, हम जिस संसार की बात कर रहे हैं वह एक नहीं है। भौगोलिक तल पर तो वह एक है, लेकिन मनोवैज्ञानिक तल पर उतने ही संसार हैं, जितने मन हैं। हरेक मन अपना अलग संसार है। और अगर तुम्हारा सपना समाप्त होता है तो तुम्हारा संसार ही समाप्त होता है। सपनों के बिना तुम्हारे लिए जीना कठिन होगा। यही कारण है कि त्वरित उपाय साधारणतः काम में नहीं लाए जाते। केवल क्रमिक उपाय काम में लाए जाते हैं।

इस बात को ख्याल में रख लेना अच्छा होगा। क्रमिक उपाय इसलिए काम में लाए जाते हैं कि वे जरूरी हैं। तुम अचानक इसी क्षण आत्मबोध में, बुद्धत्व में छलांग लगा सकते हो। उसमें कोई बाधा नहीं है। कभी कोई बाधा थी भी नहीं। तुम अभी भी वही हो, इसी क्षण बुद्धत्व में प्रवेश कर सकते हो। लेकिन वह छलांग खतरनाक हो सकती है, घातक भी। हो सकता है, तुम उसे बर्दाश्त न कर सके, तुम्हारे लिए वह अति हो जाए।

तुम झूठे सपनों में जीने के आदी हो। सत्य का सामना, सत्य का साक्षात्कार तुम नहीं कर सकते। तुम तापगृह में लगाए गए पौधे जैसे हो। तुम सपनों में

ही जी सकते हो। वे अनेक तरह से तुम्हारे काम आते हैं। तुम्हारे लिए वे सपने नहीं हैं, यथार्थ हैं।

इसलिए क्रमिक उपाय उपयोगी हैं। वे इसलिए उपयोगी नहीं हैं कि स्वयं को उपलब्ध होने के लिए समय की जरूरत है। बुद्धत्व के लिए समय की जरूरत नहीं है। बुद्धत्व के लिए कतई समय की जरूरत नहीं है। यह उपलब्धि भविष्य में नहीं होती है। लेकिन क्रमिक उपायों के साथ चलकर तुम भविष्य में उसे उपलब्ध कर लेते हो। क्रमिक उपाय वस्तुतः क्या करते हैं ? वे बुद्धत्व नहीं देते, वे तुम्हें बुद्धत्व झेलने के योग्य भर बनाते हैं। वे तुम्हें क्षमता और बल देते हैं कि तुम बुद्धत्व को झेल सको।

ऐसे सात उपाय हैं जिनसे तुम त्वरित बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकते हो। लेकिन तुम उसे झेल न सकोगे। तुम अंधे हो जा सकते हो; अतिशय प्रकाश है वह। या अचानक मृत्यु भी घटित हो सकती है; अतिशय आनंद है वह।

हमारे सपने का, हमारी गहरी नींद का अतिक्रमण कैसे हो सकता है ? अतिक्रमण के संबंध में यह प्रश्न अर्थपूर्ण है, 'क्या समझाने की कृपा करेंगे कि स्वप्न देखते हुए बोधपूर्ण होने के अन्य उपाय क्या हैं ?'

मैं यहां और दो उपायों की चर्चा करूंगा। एक उपाय की चर्चा की थी, आज अन्य दो की करूंगा जो और भी आसान हैं।

एक तो यह कि तुम यह मानकर अपना कामकाज, अपना व्यवहार शुरू करो कि सारा संसार स्वप्नवत है। तुम जो भी करो, यह याद रखो कि यह सपना है। जब जागे हुए हो तो निरंतर याद रखो कि सब कुछ सपना है।

संसार को स्वप्न या माया कहने का यही कारण है। यह कोई दार्शनिक तर्क नहीं है। दुर्भाग्य से जब शंकर की कृतियां पश्चिम की भाषाओं में—अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच में—अनूदित हुईं तो शंकर को महज एक दार्शनिक समझा गया। इससे बहुत नासमझी पैदा हुई। पश्चिम में दार्शनिक हैं—उदाहरण के लिए बर्कले—जो कहते हैं कि यह संसार मात्र स्वप्न है, मन का प्रक्षेपण है। लेकिन यह तो दार्शनिक सिद्धांत हुआ। बर्कले ने इसे एक परिकल्पना के रूप में प्रस्तावित किया था। लेकिन जब शंकर कहते हैं कि यह संसार माया है तो यह दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, परिकल्पना नहीं है। शंकर किसी खास ध्यान के लिए उसे एक मदद के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

और ध्यान यह है—अगर तुम स्वप्न देखते हुए स्मरण रखना चाहते हो कि यह स्वप्न है तो तुम्हें जागते हुए ही उसका आरंभ करना होगा। अभी तो ऐसा है कि स्वप्न देखते हुए तुम नहीं याद रख सकते कि यह स्वप्न है। तुम

तो सोचते हो कि यह यथार्थ ही है।

क्यों तुम सोचते हो कि यह यथार्थ है ? क्योंकि दिनभर तो तुम समझते हो कि सब कुछ यथार्थ है। वह तुम्हारी दृष्टि बन गई है—बंधी-बंधाई दृष्टि। जागते हुए तुमने स्नान किया, वह यथार्थ था। जागते हुए तुम भोजन कर रहे थे, वह यथार्थ था। जागते हुए तुम बातचीत कर रहे थे, वह भी यथार्थ था। पूरे दिन और इसी तरह पूरी जिंदगी, तुम जो भी सोचते हो, करते हो, उस पर तुम्हारी दृष्टि उसके यथार्थ होने की रहती है। यह दृष्टि फिक्स्ड हो जाती है; यह मन की बंधी-बंधाई धारणा बन जाती है। फिर रात में जब तुम स्वप्न देखते हो तो वही दृष्टि काम करती है कि यह यथार्थ है।

इसलिए पहले तो हम विश्लेषण करें। स्वप्न और यथार्थ के बीच कुछ समानता होनी चाहिए, अन्यथा यह दृष्टि बननी कठिन होगी। मैं तुम्हें देख रहा हूं। फिर मैं आंख मूंदता हूं और स्वप्न देखने लगता हूं, और स्वप्न में तुम्हें देखता हूं। इन दोनों देखने में फर्क नहीं है। जब मैं तुम्हें सचमुच देखता हूं तो क्या करता हूं ? मैं तुम्हें नहीं देखता हूं, तुम्हारा चित्र मेरी आंखों में प्रतिबिंबित होता है। पहले तुम्हारा चित्र प्रतिबिंबित होता है और तब वह चित्र किसी रहस्यपूर्ण प्रक्रिया के द्वारा—विज्ञान अभी उस प्रक्रिया को नहीं जान सका है—रासायनिक रूप में रूपांतरित होता है और मस्तिष्क के भीतर कहीं पहुंचा दिया जाता है। विज्ञान को अभी यह भी पता नहीं है कि यह बात ठीक किस स्थान पर घटित होती है। आंख में यह नहीं घटित होती है; आंख तो सिर्फ द्वार है। मैं तुम्हें सीधे आंख से नहीं देखता हूं, आंख के माध्यम से देखता हूं।

आंख में तुम प्रतिबिंबित होते हो। तुम मात्र एक चित्र हो सकते हो, तुम यथार्थ हो सकते हो, तुम स्वप्न हो सकते हो। याद रखो, स्वप्न तीन-आयामी होता है। मैं एक चित्र को पहचान पाता हूं, क्योंकि चित्र दो-आयामी होता है। स्वप्न तीन-आयामी होता है, इसलिए वह ठीक तुम्हारे जैसा दिखता है। और आंख नहीं कह सकती कि जो देखा गया है यह यथार्थ है या नहीं। निर्णय लेने का कोई उपाय नहीं है, आंख निर्णायक नहीं है।

फिर चित्र रासायनिक तरंगों में रूपांतरित होता है, वे वैद्युतिक तरंगें हैं जो कहीं मस्तिष्क में पहुंचती हैं। यह अभी भी अज्ञात ही है कि वह बिंदु कहां है जहां आंखें दर्शन के धरातल से संपर्क करती हैं। सिर्फ तरंगें मेरे पास पहुंचती हैं और फिर उनका कोड खोला जाता है, छिपा अर्थ निकाला जाता है। फिर मैं उनके अर्थ निकालता हूं कि क्या हो रहा है।

मैं सदा भीतर हूं और तुम सदा बाहर हो, और दोनों का मिलन नहीं होता।

इसलिए यह समस्या ही है कि तुम यथार्थ हो कि स्वप्न। ठीक इस क्षण भी निर्णय लेने का उपाय नहीं है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं या तुम सचमुच यहां हो। और मुझे सुनते हुए तुम कैसे कह सकते हो कि तुम मुझे सच में सुन रहे हो या कि तुम स्वप्न देख रहे हो ? कोई उपाय नहीं है। यही कारण है कि जो तुम्हारी दृष्टि दिनभर बनी रहती है, वही रात में भी, नींद में भी प्रवेश कर जाती है। तुम स्वप्न को सच मानते हो।

विपरीत का प्रयोग करो। माया से शंकर का यही प्रयोजन है। जब वे कहते हैं कि सारा संसार माया है तो वे यह कहते हैं कि सारा संसार स्वप्न देखने जैसा है—यह खयाल में रखो। लेकिन हम मूढ़ लोग हैं। अगर शंकर कहते हैं कि यह स्वप्न है, तो हम कहते हैं, फिर कुछ करने की क्या जरूरत ? अगर यह स्वप्न ही है तो फिर खाने की क्या जरूरत ? क्यों खाते जाओ और सोचते जाओ कि यह स्वप्न है ? खाओ ही मत।

लेकिन तब यह भी याद रखना चाहिए कि जब भूख लगती है, तो वह भी तो स्वप्न ही है। या जब तुम समझते हो कि तुमने बहुत खा लिया तो वह भी सपना ही है।

याद रखो, शंकर तुम्हें स्वप्न को बदलने को नहीं कह रहे हैं। क्योंकि स्वप्न को बदलने का प्रयत्न फिर इस झूठे विश्वास पर खड़ा होगा कि यह यथार्थ है। अन्यथा कुछ बदलने की क्या जरूरत ? शंकर सिर्फ यह कह रहे हैं कि जो भी है वह सपना है। इसे याद रखो, उसे बदलने की कोशिश मत करो।

सतत यह तीन सप्ताह याद रखो कि जो तुम करते हो वह सपना है। शुरू में यह बहुत कठिन होगा। तुम बार-बार मन के पुराने ढांचे में पड़ोगे, तुम सोचने लगोगे कि यह यथार्थ है। तुम्हें निरंतर अपने को सजग करना होगा और याद दिलाना होगा कि यह स्वप्न है। अगर तीन सप्ताह तक लगातार तुमने इस दृष्टि को कायम रखा तो चौथे या पांचवें सप्ताह में किसी रात स्वप्न देखते हुए तुम अचानक यह भी जान लोगे कि यह स्वप्न है।

स्वप्न में चेतना को, होश को प्रविष्ट कराने का यह एक उपाय है। रात स्वप्न देखते हुए यदि याद रख सको कि यह स्वप्न है तो फिर दिन में याद रखने की जरूरत नहीं रहेगी कि यह स्वप्न है। जब तुम जान जाओगे।

आरंभ में जब इसका अभ्यास करोगे तो यह एक आरोपित धारणा ही रहेगी। तुम चेष्टापूर्वक विश्वास करना शुरू करोगे कि यह स्वप्न है। लेकिन जब स्वप्न में भी यह स्मरण रहने लगेगा कि यह स्वप्न है तो यह यथार्थ बन जाएगा। तब दिन में जब तुम उठोगे तो यह नहीं अनुभव करोगे कि तुम नींद से उठ

रहे हो; तुम्हें महज यह लगेगा कि मैं एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में सरक रहा हूं। तब दिन के कामकाज को स्वप्न की तरह देखना यथार्थ रूप लेगा।

और अगर चौबीस घंटे ही स्वप्न हो जाएं, और तुम्हें उसका अनुभव और स्मरण होता रहे, तो तुम अपने केंद्र पर पहुंच जाओगे। तब तुम्हारी चेतना का तीर दो फल वाला तीर हो जाएगा। और तुम जब स्वप्न समझने लगोगे तो तुम स्वप्न देखने वाले को, विषयी को भी समझने लगोगे। अगर तुम स्वप्न को ही सच मानते हो तो तुम स्वप्न-द्रष्टा को नहीं अनुभव कर सकते। जब फिल्म यथार्थ हो गई तो तुम अपने को भूल जाते हो। जब फिल्म बंद होती है और तुम फिर समझने लगते हो कि यह यथार्थ नहीं थी तब तुम्हारा स्वयं का यथार्थ आविर्भूत होता है, प्रकट होता है। तुम स्वयं को अनुभव कर सकते हो—यह एक तरीका हुआ।

यह भारत का एक सबसे पुराना तरीका रहा है। यही कारण है कि हमने इस बात पर जोर दिया है कि संसार मिथ्या है। यह बात हम किसी दार्शनिक अर्थ में नहीं कहते हैं। हम यह नहीं कहते कि यह घर मिथ्या है और यह कि तुम इसकी दीवार से निकल सकते हो। उस अर्थ में नहीं। जब हम कहते हैं कि यह घर मिथ्या है, तो यह एक युक्ति है। यह घर के खिलाफ कोई दलील नहीं है।

तो बर्कले ने कहा कि यह पूरा संसार मात्र सपना है। एक सुबह वह अपने मित्र डाक्टर जानसन के साथ घूम रहा था। डाक्टर जानसन कठोर यथार्थवादी थे, तो बर्कले ने उनसे कहा, तुमने मेरे सिद्धांत के बारे में सुना होगा। मैं समझता हूं कि समूचा संसार मिथ्या है। कोई नहीं सिद्ध कर सकता कि यह यथार्थ है। और यह सिद्ध करने का भार उन पर है जो इसे सच बताते हैं। और मैं कहता हूं कि यह स्वप्न की तरह असत्य है।

जानसन दार्शनिक नहीं था, लेकिन उसका दिमाग गहन रूप से तर्कनिष्ठ था। वे दोनों यों ही एक सुनसान गली से गुजर रहे थे। जानसन ने एक पत्थर का टुकड़ा उठाया और बर्कले के पैर पर दे मारा। खून निकल आया और बर्कले चीख उठा। जानसन ने पूछा, चीखते क्यों हो अगर पत्थर एक सपना है ? तुम कहो कुछ भी, लेकिन तुम पत्थर के यथार्थ को मानते हो। तुम कहते कुछ हो और तुम्हारा व्यवहार कुछ और है, ठीक उसके विपरीत। अगर तुम्हारा घर मात्र सपना है तो कहां वापस जा रहे हो ? सुबह की सैर के बाद कहां लौट रहे हो ? और अगर तुम्हारी पत्नी भी स्वप्न ही है तो उससे फिर मिलना क्या ?

यथार्थवादियों ने सदा इसी तरह का तर्क दिया है। लेकिन वे शंकर के साथ

इस तर्क को नहीं चला सकते, क्योंकि शंकर का कोई दार्शनिक मत नहीं है। वे यहां सत्य के संबंध में कुछ नहीं कह रहे हैं, वे यहां जगत के बारे में भी नहीं कह रहे हैं। यह तो तुम्हारे मन को बदलने की उनकी एक युक्ति है, तुम्हारी बंधी दृष्टि को बदलने का उनका एक उपाय है; ताकि तुम संसार को सर्वथा भिन्न ढंग से देख सको।

भारतीय चिंतन के लिए यह सदा ही एक समस्या रही है। क्योंकि उसके लिए सब कुछ ध्यान की युक्ति है। यह सत्य है या नहीं, इसमें हमें रस नहीं है। हम तो मनुष्य को बदलने के लिए उसकी उपयोगिता की फिक्र करते हैं। और पश्चिमी चित्त के लिए यह चीज बिलकुल भिन्न है। जब पश्चिम के लोग कोई सिद्धांत प्रस्तावित करते हैं तो वे इस बात की चिंता करते हैं कि यह सच है अथवा नहीं, इसे तर्क से सिद्ध किया जा सकता है या नहीं। लेकिन जब हम कोई चीज प्रस्तावित करते हैं तो हम उसके सत्य की नहीं, उसकी उपयोगिता की चिंता करते हैं। हम देखते हैं कि मनुष्य के मन को बदलने की उसकी क्षमता क्या है। वह सच है या झूठ, हम इसकी चिंता ही नहीं करते। वस्तुतः तो वह दोनों नहीं है। वह एक युक्ति भर है।

मैंने बाहर फूल देखे हैं। सुबह सूरज उगता है और सब चीज सौंदर्य से भर जाती है। लेकिन तुम कभी घर से बाहर नहीं गए हो, तुमने कभी फूल नहीं देखे हैं और तुमने सुबह का सूरज नहीं देखा है। तुमने कभी खुला आकाश भी नहीं देखा है। और तुम नहीं जानते हो कि सौंदर्य क्या है। तुम सदा एक कारागृह में बंद रहे हो। और मैं तुम्हें बाहर ले चलना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम भी खुले आसमान के नीचे आ जाओ और फूलों से मिलो।

यह मैं कैसे करूं ? तुम फूलों को नहीं जानते हो। यदि मैं फूलों की बात करूं तो तुम कहोगे कि आप पागल हो गए हैं, फूल वगैरह नहीं हैं। अगर मैं सुबह के सूरज की बात करूं तो तुम कहोगे कि आप कल्पना कर रहे हैं, स्वप्न देख रहे हैं, आप कवि हैं। अगर मैं खुले आकाश की बात करूं तो तुम हंसोगे और पूछोगे कि आकाश कहां है, यहां तो दीवार ही दीवार है। फिर मैं क्या करूं ?

मुझे कोई ऐसी युक्ति निकालनी होगी जो तुम्हारी समझ में आए और जिससे तुम बाहर निकल सको। इसलिए मैं कहता हूं कि घर में आग लगी है और मैं खुद भागने लगता हूं। यह बात संक्रामक हो जाती है, और तुम भी मेरे पीछे भागते हो और बाहर निकल जाते हो। और तभी तुम जानोगे कि जो मैं कह रहा था वह न सही था और न गलत। तब तुम फूलों को जानोगे और मुझे क्षमा

कर दोगे।

बुद्ध ने वही किया था, महावीर ने वही किया था, शिव ने और शंकर ने वही किया था। इसलिए बाद में हम उन्हें क्षमा कर देते हैं। क्योंकि एक बार बाहर निकलने पर हमें पता चल जाता है कि वे क्या कर रहे थे। और तब हम समझते हैं कि उनके साथ बहस करना व्यर्थ था, क्योंकि यह बात ही बहस की नहीं थी। आग कहीं नहीं थी, लेकिन हम आग की भाषा समझ सकते थे। फूल थे, लेकिन हम फूलों की भाषा नहीं समझ सकते थे। हमारे लिए वे प्रतीक अर्थहीन थे।

तो यह एक तरीका है। फिर दूसरा तरीका है जो दूसरे ध्रुव पर है। एक ही चीज का एक ध्रुव पहला तरीका है और उसका दूसरा ध्रुव दूसरा तरीका है। पहला तो यह है कि संसार की हर चीज को स्वप्न की तरह समझा जाए, याद किया जाए। दूसरे में संसार के विषय में कुछ नहीं सोचना है, केवल यह याद रखना है कि मैं हूं।

गुरजिएफ दूसरे उपाय को प्रयोग में लाए थे। यह उपाय सूफी परंपरा का है, इस्लाम का है। उन्होंने इस विधि पर गहराई से प्रयोग किए। तुम जो भी करो उसमें सदा याद रखो कि मैं हूं। तुम पानी पीते हो, तुम भोजन करते हो; सब में सदा याद रखो कि मैं हूं। खाए जाओ और याद रखो कि मैं हूं। इसे भूलो मत।

यह स्मरण कठिन होगा। तुम सोचते हो कि मैं तो जानता ही हूं कि मैं हूं, इसे याद रखने की क्या जरूरत है ? लेकिन सच यह है कि तुम्हें नहीं याद है कि तुम हो।

यह विधि बहुत संभावना से भरी है। जब चल रहे हो तो याद रखो कि मैं हूं। चलना जारी रहे, चलते रहो; लेकिन निरंतर इस आत्म-स्मरण से जुड़े रहो कि मैं हूं। इसे भूलो मत। तुम अभी मुझे सुन रहे हो; यहीं प्रयोग भी करो। तुम मुझे सुनते हो; उसमें बहुत डूबो मत, उससे तादात्म्य मत करो। जो भी मैं कहता हूं, उसे सुनने के साथ-साथ अपने को याद रखो, भूलो मत। सुनना रहे, शब्द रहें; कोई बोल रहा है और तुम हो—यानी यह स्मरण कि मैं हूं, मैं हूं, मैं हूं। इस 'मैं हूं' को बोध का स्थायी अंग बन जाने दो।

यह बहुत कठिन है। पूरे एक मिनट के लिए भी तुम यह लगातार स्मरण नहीं रख सकते। एक प्रयोग करो। अपने सामने घड़ी रख लो और सेकेंड की सुई को देखना शुरू करो। एक सेकेंड, दो सेकेंड, तीन सेकेंड—उसे देखते जाओ। दो काम एक साथ करो—सेकेंड बताने वाली सुई को देखो और निरंतर स्मरण

करो, मैं हूं, मैं हूं। प्रत्येक सेकेंड के साथ स्मरण रखो कि मैं हूं। पांच या छह सेकेंड के अंदर तुम देखोगे कि तुम भूल बैठे। अचानक तुम्हें याद आएगा कि कई सेकेंड गुजर गए और नहीं स्मरण किया कि मैं हूं।

पूरे एक मिनट भी स्मरण रखना चमत्कार है। और अगर तुम एक मिनट तक याद रख सके तो यह विधि तुम्हारी है। तब इसका प्रयोग करो। इसके द्वारा तुम सपनों का अतिक्रमण कर जाओगे और जानोगे कि सपने सपने हैं।

यह कैसे काम करती है ? अगर तुम पूरे दिन याद रख सको कि मैं हूं तो यह स्मरण तुम्हारी नींद में भी प्रवेश कर जाएगा और तब तुम सपने में भी निरंतर याद रखोगे कि मैं हूं। और अगर सपने में याद रख सके कि मैं हूं तो सपना ही हो जाएगा। तब सपना तुम्हें धोखा नहीं दे सकता है। तब स्वप्न यथार्थ की तरह नहीं प्रतीत हो सकता। यह इसकी तरकीब है, स्वप्न यथार्थ मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम्हें आत्म-स्मरण नहीं रहा, तुम भूल गए कि मैं हूं। अपना स्मरण न रहने पर स्वप्न यथार्थ बन जाता है। और अगर अपना स्मरण रहे तो यथार्थ, तथाकथित यथार्थ महज स्वप्न बन जाता है।

स्वप्न और यथार्थ में यही भेद है। ध्यानपूर्ण मन के लिए या ध्यान के लिए विज्ञान के लिए मात्र यही भेद है। यदि तुम हो तो समूचा यथार्थ स्वप्न मात्र है। और यदि तुम नहीं हो तो स्वप्न ही यथार्थ बन जाता है।

नागार्जुन कहते हैं, 'अब मैं हूं, क्योंकि संसार नहीं है। जब मैं नहीं था, संसार था। एक ही रह सकता है।' उसका यह अर्थ नहीं है कि संसार का लोप हो जाता है। नागार्जुन इस संसार के लिए नहीं कह रहे हैं, वे स्वप्न के संसार के लिए कह रहे हैं। या तो तुम हो या सपने हैं, दोनों नहीं हो सकते।

इसलिए पहले चरण में सतत स्मरण रखो कि मैं हूं। राम मत कहो, श्याम मत कहो; कोई नाम मत लो। क्योंकि तुम नाम नहीं हो। केवल कहो, मैं हूं। किसी भी क्रिया में इसका प्रयोग करो और तब अनुभव करो। अपने भीतर तुम जितने यथार्थ होते जाओगे, तुम्हारे चारों ओर का संसार उतना ही यथार्थहीन होता जाएगा। मैं वास्तविक होता जाएगा और संसार अवास्तविक होता जाएगा। या तो संसार वास्तविक है या मैं वास्तविक है—दोनों वास्तविक नहीं हो सकते। अभी तुम स्वप्नवत हो, तो संसार वास्तविक हो गया है। इस स्थिति को बदल दो। स्वयं वास्तविक हो जाओ, संसार स्वप्न हो जाता है।

गुरजिएफ इस विधि पर सतत काम करते रहे। उनके मुख्य शिष्य पी॰ डी॰ ऑसपेंस्की ने उल्लेख किया है कि जब गुरजिएफ मेरे साथ इस विधि पर काम कर रहे थे और मैं तीन महीनों तक निरंतर 'मैं हूं' के स्मरण का अभ्यास कर

रहा था तो तीन महीनों के बाद अचानक सब कुछ ठहर गया; विचार, सपने, सब कुछ बंद हो गए। मेरे भीतर केवल एक धुन शाश्वत संगीत की तरह बजती रही—मैं हूं, मैं हूं, मैं हूं। और तब यह प्रयत्नपूर्ण कर्म नहीं था; मैं हूं का स्मरण एक सहज कर्म हो गया था।

तीन महीने तक ऑसपेंस्की को एक घर के अंदर रखा गया था, और उसे बाहर जाने की इजाजत नहीं थी। फिर एक दिन गुरजिएफ ने उसे बाहर बुलाया और कहा, मेरे साथ आओ। उस समय वे लोग रूसी नगर तिफलिस में रहते थे। गुरजिएफ ने उसको अपने साथ लिया और दोनों सड़क पर आ गए। ऑसपेंस्की अपनी डायरी में लिखता है, 'पहली बार मैंने समझा कि उनका क्या अभिप्राय था जब जीसस ने कहा कि मनुष्य सोया हुआ है। मुझे लगा कि समूचा नगर ही सोया हुआ है। लोग नींद में ही चल रहे थे; दुकानदार नींद में ही सामान बेच रहे थे, खरीदार भी नींद में ही खरीद रहे थे। पूरा नगर सोया था। फिर मैंने गुरजिएफ की तरफ देखा, केवल वे ही जागे हुए थे। सारा नगर नींद में था। नींद में ही लोग क्रोध कर रहे थे, लड़ रहे थे, प्रेम कर रहे थे, खरीद-फरोख्त कर रहे थे; सब कुछ नींद में कर रहे थे।'

फिर ऑसपेंस्की लिखता है, 'अब मैं उनकी आंखों को, उनके चेहरे को देखता था; वे बिलकुल बेखबर थे। वे वहां नहीं थे। उनका आंतरिक केंद्र खो गया था, वह वहां नहीं था।' ऑसपेंस्की ने गुरजिएफ से कहा, मैं और आगे नहीं जाना चाहता हूं। इस नगर को क्या हो गया है ? हर कोई नींद में, नशे में मालूम पड़ता है।

गुरजिएफ ने कहा, नगर को कुछ नहीं हुआ है; तुमको अवश्य कुछ हुआ है। तुम नशे से बाहर आ गए हो। नगर तो वही का वही है। यह वही जगह है जहां तीन महीने पहले तुम घूमते थे, लेकिन तब तुम नहीं देख सकते थे कि लोग सोए हैं, क्योंकि तुम भी सोए थे। अब तुम देख सकते हो, क्योंकि अब बोध का कुछ गुण तुममें आया हुआ है। तीन महीने तक लगातार 'मैं हूं' का अभ्यास करने से तुम थोड़ी मात्रा में जागरूक हो गए हो, तुम बोधपूर्ण हो गए हो। तुम्हारी चेतना का एक अंश स्वप्न के परे चला गया है। यही कारण है कि तुम्हें अब हर कोई नींद में, मृतवत चलता दिखाई पड़ता है, नशे में, सम्मोहन में मालूम पड़ता है।

ऑसपेंस्की लिखता है, मैं उस दृश्य को बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि सब नींद में हों। वे जो भी कर रहे थे, उसके लिए वे जवाबदेह नहीं थे। बिलकुल नहीं। वे कैसे जवाबदेह हो सकते हैं ? वह लौटकर आया और गुरजिएफ से

उसने कहा, यह क्या है ? क्या मैं धोखे में तो नहीं पड़ा हूं ? क्या आपने कुछ किया है कि मुझे सारा नगर नींद में दिखाई पड़ता है ? मुझे अपनी आंखों पर ही विश्वास नहीं होता है।

लेकिन यह किसी को भी घट सकता है। अगर तुम स्वयं को स्मरण रख सके तो तुम जानोगे कि कैसे लोग अपने को याद नहीं रखते और कैसे वे विस्मरण में, नींद में ही सब गति करते हैं। सारा संसार ही सोया है।

लेकिन जब जागे हुए हो तब शुरू करना। जिस क्षण याद आए उसी क्षण स्मरण का धागा पकड़ लेना कि मैं हूं। मैं नहीं कहता कि इन शब्दों को, 'मैं हूं' को दोहराओ। नहीं, उसका भाव करो। नहाते हुए अनुभव करो कि मैं हूं। ठंडे पानी का स्पर्श होने दो और उसके पीछे तुम स्वयं खड़े रहकर उसकी अनुभूति करो और स्मरण करो कि मैं हूं। याद भर रखना है। यह मैं नहीं कहता कि तुम मैं हूं का जाप करो। जाप कर सकते हो, लेकिन उससे बोध की उपलब्धि नहीं होगी। उलटे जाप से नींद ही बढ़ सकती है।

अनेक लोग हैं जो अनेक चीजों का जाप कर रहे हैं। वे राम-राम कहे जाते हैं। अगर वे बोध के बिना महज जप करते हैं तो यह राम-राम भी एक नशा बन जाता है। इसके जरिए वे ठीक से सो सकते हैं। यही कारण है कि पश्चिम में महेश योगी का इतना प्रभाव है। वे मंत्र जपने को देते हैं। और पश्चिम में नींद गंभीर समस्या का रूप ले रही है। वहां नींद की बहुत कमी हो गई है। स्वाभाविक नींद तो गायब ही हो गई है। तुम केवल ट्रैंक्वेलाइजर की मदद से सो पाते हो, अन्यथा सोना असंभव हो गया है। महेश योगी के प्रभाव का यही कारण है। अगर तुम किसी भी शब्द को दोहराते रहो तो नींद गहरा जाएगी, बस।

इसलिए तथाकथित टी० एम०, भावातीत ध्यान एक मानसिक ट्रैंक्वेलाइजर है, और कुछ भी नहीं है। उससे मदद मिलती है। लेकिन वह सोने के लिए तो काम की चीज है, ध्यान के बिलकुल काम की नहीं है। उससे तुम अच्छी तरह सो सकते हो। तुम्हारी नींद गहरी होगी। अच्छा है, लेकिन वह ध्यान कतई नहीं है।

अगर तुम एक शब्द को निरंतर दोहराते रहो तो उससे ऊब पैदा होती है। और ऊब नींद लाने में कारगर है। इसलिए ऊब पैदा करने वाली कोई भी चीज नींद में सहायक है। मां के गर्भ में पड़ा बच्चा लगातार नौ महीने सोया रहता है, और उसका कारण तुम शायद नहीं जानते हो। उसका कारण मात्र मां के हृदय की धड़कन है। यह धड़कन निरंतर जारी है। वह संसार की एक अत्यंत

उबाने वाली चीज है। सतत चालू रहने वाली इस आवाज के नीचे बच्चा सोया रहता है।

यही कारण है कि जन्म के बाद भी बच्चा बहुत रोता-चीखता है तो मां अपनी छाती के पास उसके सिर को ले जाती है और बच्चा फिर अचानक शांत होकर सो जाता है। फिर धड़कन काम कर गई। बच्चा मानो गर्भ का अंश बन गया। और यही कारण है कि तुम्हारे बड़े होने पर भी जब तुम्हारी पत्नी या प्रेमिका तुम्हारे सिर को अपनी छाती पर रख लेती है तो तुम नींद में उतरने लगते हो। यहां भी वही धड़कन काम करती है।

मनस्विद कहते हैं कि जब तुम न सो सको तो दीवार-घड़ी पर मन को लगाओ, उस घड़ी की टिक-टिक आवाज पर मन को एकाग्र करो। वह आवाज भी हृदय की धड़कन जैसी ही है, उससे तुम्हें नींद लग जाएगी। कुछ भी दोहराने से काम चल जाएगा।

इसलिए यह मैं हूं या मैं हूं का स्मरण कोई मंत्र नहीं है, उसका शाब्दिक उच्चार नहीं करना है। उसका बस भाव करो, उसे अनुभव करो; अपने अस्तित्व के प्रति संवेदनशील होओ। जब तुम किसी का हाथ स्पर्श करो तो उसका हाथ ही मत छुओ, उसके साथ अपने छूने को भी अनुभव करो। और इस अनुभव को, इस संवेदनशीलता को अपने मन में गहरे से गहरा उतरने दो, प्रवेश करने दो।

एक दिन तुम अचानक अपने केंद्र पर जाग जाओगे, और पहली बार केंद्र से संचालित होने लगोगे। और तब सारा संसार एक स्वप्न बन जाएगा। और तब तुम जानोगे कि स्वप्न देखना सच ही स्वप्न देखना था। और जब जानोगे कि सपना देखना सपना देखना था, तब सपना समाप्त हो जाएगा। वह तो तभी तक जारी रहता है जब तक हम उसे यथार्थ मानते हैं। उसे अयथार्थ जानते ही वह समाप्त हो जाता है।

और एक बार सपना गया कि तुम दूसरे आदमी हो गए। पुराना आदमी मर गया, सोया आदमी चल बसा। जो आदमी तुम पहले थे, अब वही न रहे। पहली बार तुम बोधपूर्ण हुए, सजग हुए। पहली बार इस नींद से भरी दुनिया में तुम जाग्रत हुए। तुम बुद्ध हुए।

और इस जागरण के साथ दुख समाप्त हो जाता है। इस बोध के बाद मृत्यु विदा हो जाती है। इस जागरण के द्वारा भय जाता रहता है। तुम पहली बार सबसे—दुख, भय और मृत्यु से मुक्त हो जाते हो। तुम स्वतंत्रता को उपलब्ध हुए। घृणा, क्रोध, लोभ सब विदा हो जाते हैं। तुम प्रेम ही हो जाते हो; प्रेमपूर्ण

नहीं, प्रेम ही हो जाते हो।

एक और प्रश्न है, और वह पहले प्रश्न जैसा ही है। प्रश्न है : ***अगर हम सब किसी ऐसे नाटक के पात्र हैं जो पहले ही लिखा जा चुका है तो ध्यान हमें कैसे बदल सकेगा जब तक कि उस नाटक में ही हमें निश्चित समय पर बदलने का अध्याय भी न जुड़ा हो ? और अगर ऐसा अध्याय उसमें जुड़ा ही है जो कि ठीक समय पर अपने को प्रकट करने का इंतजार कर रहा है तो फिर हम ध्यान ही क्यों करें ? किसी तरह का प्रयत्न ही हम क्यों करें ?***

यह वही बात है; इसमें वही भ्रांति है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सब कुछ नियत है। सृष्टि की व्याख्या के लिए मैं इसे एक सिद्धांत के रूप में नहीं पेश कर रहा हूं। यह उपाय है।

भारत सदा से भाग्य के इस उपाय को काम में लाता रहा है। इसका यह मतलब नहीं है कि सब कुछ पूर्व-नियत है। यह मतलब बिलकुल नहीं है। ऐसा कहने का एक ही कारण है कि अगर तुम मानते हो कि सब कुछ निश्चित है तो सब कुछ स्वप्न हो जाता है। अगर तुम चीजों को इस रूप में लो, अगर तुम इस तरह मानो कि सब कुछ पूर्व-निश्चित है—उदाहरण के लिए तुम एक निश्चित दिन मर जाओगे—तो सब कुछ स्वप्नवत हो जाता है।

यह निश्चित नहीं है, यह तय नहीं है। कोई तुममें उतना उत्सुक भी नहीं है। अस्तित्व को तुम्हारा पता भी नहीं है। उसे क्या पता कि तुम कब मरोगे ? यह बात ही इतनी व्यर्थ है। अस्तित्व के लिए तुम्हारी मृत्यु अप्रासंगिक है। अपने को इतना महत्त्वपूर्ण मत समझो कि सारी सृष्टि तुम्हारे मरने का दिन, समय, मिनट और क्षण तय करने में व्यस्त है। नहीं, तुम केंद्र नहीं हो। सृष्टि को क्या फर्क पड़ता है कि तुम हो या नहीं हो !

लेकिन यह भ्रांति मनुष्य के मन में बनी ही रहती है। तुम्हारे बचपन में ही यह भ्रांति जन्म लेती है और अचेतन का हिस्सा बन जाती है।

एक बच्चा पैदा होता है। वह संसार को कुछ दे तो नहीं सकता, पर उसे संसार से बहुत कुछ लेना होता है। वह बदले में कुछ भी नहीं दे सकता, कोई कीमत नहीं चुका सकता। वह इतना कमजोर है, असहाय है। उसे भोजन चाहिए, उसे प्रेम चाहिए, उसे सुरक्षा चाहिए—उसे हर चीज चाहिए।

बच्चा जब पैदा होता है तो बिलकुल असहाय होता है—खासकर मनुष्य

का बच्चा। कोई पशु इतना असहाय नहीं होता है। यही कारण है कि पशु का परिवार नहीं होता, उसकी जरूरत नहीं होती। लेकिन मनुष्य का शिशु इतना असहाय होता है कि वह मां-बाप के, कुटुंब के, समाज के सहारे के बिना जी ही नहीं सकता। वह अकेला नहीं जी सकता है, वह तुरंत मर जाएगा। वह इतना पर-निर्भर है। उसे प्रेम चाहिए, उसे भोजन चाहिए, उसे सब कुछ चाहिए। और वह सबकी मांग करेगा। और मां-बाप और पूरा परिवार उसकी मांगें पूरी करते रहते हैं। और बच्चा तब सोचने लगता है कि मैं पूरे संसार का केंद्र हूं। उसे बस मांग करनी है और उसकी सब मांग पूरी होती है। बस मांगना काफी है—उसे कुछ और प्रयत्न नहीं करना है।

इस तरह बच्चा समझने लगता है कि वह केंद्र है और सब कुछ उसके लिए और उसके ही चारों तरफ गति करता है। उसे लगता है कि समूचा अस्तित्व उसके लिए बना है। मानो सब अस्तित्व उसके लिए ही इंतजाम कर रहा था कि आओ और मांगो, और सब मांगें पूरी की जाएंगी।

और यह एक जरूरत है कि उसकी मांगें पूरी की जाएं, अन्यथा वह मर जाएगा। लेकिन यही जरूरत आगे चलकर खतरनाक सिद्ध होती है। बच्चा इस भाव के साथ बड़ा होता है कि मैं केंद्र हूं। धीरे-धीरे उसकी मांगें बढ़ती जाएंगी। बच्चे की मांगें तो मामूली थीं, वे पूरी की जा सकती थीं। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होगा, उसकी मांगें जटिल होती जाएंगी। कभी-कभी उन्हें पूरी करना संभव नहीं होगा, कभी बिलकुल असंभव हो जाएगा। वह चांद या कुछ भी मांग सकता है।

जैसे-जैसे वह बड़ा होगा, उसकी मांगें जटिल और असंभव होती जाएंगी। और तब निराशा शुरू होती है। बच्चा समझता है कि मैं ठगा जा रहा हूं। वह तो समझे बैठा था कि वह सारे संसार का केंद्र है। अब समस्याएं खड़ी होंगी, और वह धीरे-धीरे सिंहासन से उतार दिया जाएगा। वह अपदस्थ हो जाएगा, जब वह सयाना होगा तब बिलकुल अपदस्थ हो जाएगा। तब उसे पता चलेगा कि वह केंद्र नहीं है। लेकिन गहरे में उसका अचेतन माने ही जाएगा कि वह केंद्र है।

लोग आकर मुझे पूछते हैं कि क्या हमारे भाग्य नियत हैं ? वे असल में यह कह रहे हैं कि हम इस जगत के लिए इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि हमारा भाग्य पहले से नियत होना ही चाहिए। वे पूछते हैं, हमारा उद्देश्य क्या है ? हम क्यों पैदा हुए ? ये सारे प्रश्न बचपन की इसी मूढ़ता से पैदा हो रहे हैं कि हम जगत के केंद्र हैं। हम किसलिए बनाए गए ?

तुम किसी उद्देश्य के लिए नहीं बनाए गए हो। और यह अच्छा है कि तुम किसी उद्देश्य के लिए नहीं बने हो, अन्यथा तुम एक यंत्र होते। यंत्र की रचना किसी उद्देश्य के लिए होती है।

मनुष्य किसी उद्देश्य के लिए नहीं बना है। नहीं, मनुष्य सृष्टि का प्रस्फुटन है, रचना की बाढ़ है। सब कुछ बस है; फूल है, नक्षत्र है, तुम हो। सब कुछ सृजन का अतिरेक है, अस्तित्व का उत्सव है, आनंद है। कोई उद्देश्य नहीं है।

लेकिन भाग्य का, पूर्व-नियति का यह सिद्धांत समस्या पैदा करता है। यह इसलिए कि हम इसे सिद्धांत के रूप में लेते हैं। हम समझते हैं कि सब कुछ नियत है। लेकिन कुछ भी नियत नहीं है। लेकिन यह विधि भाग्य को एक उपाय के रूप में काम में लाती है। जब हम कहते हैं कि सब कुछ निश्चित है तो यह तुम्हें किसी सिद्धांत के रूप में नहीं कहा जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि अगर तुम जीवन को नाटक की तरह पूर्व-निश्चित समझते हो तो वह स्वप्न हो जाता है।

उदाहरण के लिए, अगर मैं जानता हूं कि आज, आज रात, मैं तुमसे बोलने वाला हूं और यह पूर्व-निश्चित है कि कौन से शब्द बोलूंगा और वह ऐसा निश्चित है कि उसमें अदल-बदल नहीं किया जा सकता तो अचानक मैं इस पूरी प्रक्रिया से असंबद्ध हो जाता हूं, क्योंकि तब मैं कर्म का केंद्र नहीं रहा। अगर सब कुछ नियत है और अगर प्रत्येक शब्द अस्तित्व द्वारा या परमात्मा द्वारा या उसको जो भी नाम दो, बोला जाने वाला है तो मैं उसका स्रोत नहीं रहा, और तब मैं द्रष्टा बन सकता हूं, मात्र द्रष्टा।

अगर तुम जीवन को पूर्व-निश्चित मानो तो तुम उसे देख सकते हो, तब तुम उससे लिप्त नहीं हो। अगर तुम सफल हुए तो वह नियति थी, अगर विफल हुए तो वह भी नियति थी। अगर सफलता और विफलता दोनों पूर्व-नियत हैं तो दोनों सामान मूल्य के हो जाते हैं, दोनों समानार्थी हो जाते हैं। तब कोई राम है कोई रावण है, और सब कुछ पूर्व-निश्चित है। रावण को अपराधी अनुभव करने की जरूरत नहीं है और न राम को अपने को श्रेष्ठ समझने की। सब पूर्व-निश्चित है, इसलिए तुम मात्र अभिनेता हो। तुम मंच पर किसी पात्र का अभिनय करते हो।

तो तुम्हें यह भाव देने के लिए कि तुम किसी का अभिनय करते हो, तुम्हें यह प्रतीति देने के लिए कि किसी पूर्व-निश्चित भूमिका, को तुम पूरा कर रहे हो, और ताकि तुम उसके पार जा सको, यह एक उपाय भर है।

लेकिन इसे समझना कठिन है, क्योंकि हम भाग्य को एक सिद्धांत के रूप

में, उससे भी बढ़कर एक नियम के रूप में लेने के बड़े आदी हैं। हम इन विधियों को उपाय के रूप में लेने की दृष्टि को नहीं समझ पाते हैं। यह मैं एक उदाहरण से समझाने की कोशिश करूंगा।

मैं एक नगर में था। एक व्यक्ति मेरे पास आया, वह मुसलमान था। लेकिन मैं नहीं जानता था कि वह मुसलमान है। फिर उसकी पोशाक ऐसी थी कि वह हिंदू जैसा दिखता था। वह न सिर्फ हिंदू जैसा दिखता था, वह मेरे साथ बातचीत भी हिंदू के ढंग से करता था। मुसलमानी ढंग उसमें नहीं था। उसने मुझसे एक प्रश्न पूछा। उसने कहा कि मुसलमान और ईसाई कहते हैं कि एक ही जीवन है; और हिंदू, बौद्ध और जैन कहते हैं कि अनेक जीवन हैं, जन्मों का एक लंबा सिलसिला है। और वे मानते हैं कि जब तक कोई मुक्त नहीं होता। उसे बारंबार जन्म लेना होगा। इसके बारे में आप क्या कहते हैं ?

अगर जीसस आत्मज्ञानी थे तो उन्हें अवश्य पता होगा। अगर मोहम्मद या मूसा ज्ञानी थे तो उन्हें मालूम होना चाहिए कि नहीं, अनेक जीवन हैं। और अगर आप उन्हें सही बताते हैं तो महावीर, कृष्ण, बुद्ध और शंकर के बारे में क्या कहेंगे ? एक बात तय है कि वे सब के सब ज्ञानी नहीं थे। अगर ईसाइयत सही है तो बुद्ध, कृष्ण और महावीर गलत हैं। और अगर महावीर, कृष्ण और बुद्ध सही हैं तो मोहम्मद, जीसस और मूसा गलत हैं। मैं बहुत दुविधा में हूं, मैं बहुत उलझन में हूं; मुझे बताइए। दोनों सही कैसे हो सकते हैं ? या तो अनेक जीवन हैं या एक ही जीवन है। दोनों सही नहीं हो सकते।

वह आदमी बहुत बुद्धिमान था, उसने बहुत अध्ययन किया था। और उसने मुझसे कहा, आप यह कहकर नहीं बच सकते कि दोनों सही हैं। दोनों सही नहीं हो सकते। यह तर्कसंगत नहीं है। दोनों कैसे सही होंगे ?

लेकिन मैंने उससे कहा कि यह जरूरी नहीं है। आपकी दिशा बिलकुल गलत है। दोनों उपाय हैं। न कोई सही है, न कोई गलत; दोनों उपाय हैं। लेकिन उसके लिए यह समझना असंभव हो गया कि उपाय से मेरा क्या मतलब है।

मोहम्मद, जीसस और मूसा एक ढंग के मनों से बोल रहे थे और बुद्ध, महावीर और कृष्ण बहुत भिन्न ढंग के मनों से बोल रहे थे। दो ही स्रोत धर्म हैं—हिंदू और यहूदी। इसलिए भारत में, हिंदू धर्म से जन्मे सभी धर्म पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं और यहूदी चिंतना से जन्मे सभी धर्म, इस्लाम और ईसाइयत एक जीवन की धारणा में विश्वास करते हैं।

और ये दो उपाय हैं। इसे समझने की कोशिश करो। क्योंकि हमारे दिमाग बंधे हुए हैं, इसलिए हम चीजों को उपाय की तरह न लेकर सिद्धांत ही तरह

लेते हैं। इसलिए अनेक लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, एक दिन आपने कहा कि यह सही है और दूसरे दिन कहा कि वह सही है, और दोनों सही नहीं हो सकते।

हां, दोनों सही नहीं हो सकते और कोई नहीं कहता है कि दोनों सही हैं। मुझे इस बात की फिक्र नहीं है कि कौन सही है और कौन गलत है, मेरी उत्सुकता तो इसमें है कि कौन-सा उपाय काम आता है।

भारत में वे बहुजन्म के उपाय को काम में लाते हैं। क्यों ? इसमें कई बातें हैं। पश्चिम में, खासकर यहूदी चिंतना से जो धर्म निकले, वे सब गरीब लोगों के धर्म थे। उनके पैगम्बर शिक्षित नहीं थे। जीसस शिक्षित नहीं थे, मोहम्मद शिक्षित नहीं थे। वे अशिक्षित थे, अपरिष्कृत थे, सरल थे। और जिस जनता से उन्हें बोलना था, वह तो बिलकुल अपरिष्कृत थी, दरिद्र थी। वे अमीर नहीं थे।

गरीब आदमी के लिए एक जीवन काफी है, काफी से ज्यादा है। वह भूखों मर रहा है। अगर तुम उससे कहो कि अनेक जन्म हैं कि तुम बार-बार जन्म लोगे कि तुम्हें हजारों जन्म के चक्र से गुजरना पड़ेगा, तो गरीब आदमी पूरी चीज से बहुत हताश हो उठेगा। तुम क्या कह रहे हो ? वह पूछेगा। एक ही जीवन बहुत है, हजारों-लाखों की बात मत करो। यह बात ही मत करो। हमें इसी जीवन के बाद स्वर्ग दे दो। ईश्वर उस आदमी के लिए तभी यथार्थ हो सकता है जब वह इसी जीवन के बाद प्राप्त हो सके, तुरंत।

बुद्ध, महावीर, कृष्ण, वे लोग एक बहुत समृद्ध समाज से बात कर रहे थे। आज यह समझना कठिन हो गया है, क्योंकि चाक पूरा घूम चुका है। अब पश्चिम समृद्ध है और पूर्व दरिद्र, तब पश्चिम गरीब था और पूर्व अमीर। हिंदुओं के सभी अवतार, जैनों के सभी तीर्थंकर, सभी बुद्ध राजपुत्र थे। वे राजघरानों से आए थे। वे सभी सुसंस्कृत थे, सुशिक्षित थे, परिष्कृत थे; सभी तरह से परिमार्जित थे।

तुम बुद्ध को अधिक परिमार्जित नहीं कर सकते। वे पूरी तरह परिष्कृत, सुसंस्कृत और सुशिक्षित थे। उनमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। यदि आज भी बुद्ध हमारे बीच आएं तो उनमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। और वे जिस समाज से बोल रहे थे, वह भी समृद्ध था।

और याद रहे, समृद्ध समाज की समस्याएं भिन्न होती हैं। समृद्ध समाज के लिए सुख अर्थहीन है, स्वर्ग अर्थहीन है। गरीब समाज के लिए स्वर्ग बहुत अर्थपूर्ण होता है। मगर जो समाज स्वर्ग में ही हैं उनके लिए स्वर्ग व्यर्थ है। इसलिए तुम उन्हें स्वर्ग के नाम पर कुछ करने को प्रेरित नहीं कर सकते। वे स्वर्ग में

ही हैं और ऊबे हुए हैं।

इसलिए बुद्ध, महावीर और कृष्ण स्वर्ग की बात नहीं करते हैं। वे मुक्ति की, मोक्ष की बात करते हैं। वे यहां के पार किसी सुखदायी जगत के होने की बात नहीं करते; वे एक ऐसे जगत की बात करते हैं जहां न दुख है और न सुख। जीसस का स्वर्ग उन्हें नहीं भाता, वे उसमें ही जीते थे।

और दूसरी बात कि धनी आदमी के लिए असली समस्या ऊब है। गरीब को तुम भविष्य में सुख का प्रलोभन दे सकते हो, गरीब आदमी के लिए दुख उसकी समस्या है। धनी आदमी के लिए दुख समस्या नहीं है, उसके लिए ऊब समस्या है। वह सब सुखों से ऊबा हुआ है। महावीर, बुद्ध और कृष्ण, सबने इस ऊब का उपयोग किया और कहा कि अगर तुम कुछ नहीं करते तो तुम्हें बार-बार जन्म लेना होगा। यह चक्र चलता रहेगा। याद रखना, वही जिंदगी बार-बार दुहरेगी। वही काम-भोग, वही अमीरी, वही भोजन, वही राजमहल बार-बार मिलेंगे, हजार बार तुम कोल्हू के बैल जैसा एक ही चक्कर में घूमते रहोगे।

एक अमीर आदमी के लिए, जिसने सब सुख जाने हैं, इसके अच्छे आसार नहीं हो सकते। पुनरुक्ति ही तो उसकी समस्या है, उसकी पीड़ा है। वह कुछ नया खोज रहा है। और महावीर और बुद्ध कहते हैं, कुछ नया नहीं है। यह संसार पुराना है। आसमान के नीचे कुछ भी नया नहीं है। सब कुछ पुराना-पुराना है। तुम पहले भी उनका स्वाद ले चुके हो, आगे भी उन्हें ही भोगना है। तुम गोल-गोल घूम रहे हो। उनके पार जाओ, इस घेरे के बाहर छलांग लगा लो।

एक धनी आदमी ध्यान की तरफ तभी जाएगा, जब तुम उसकी ऊब को गहराने के उपाय करो। लेकिन गरीब आदमी के सामने ऊब की बातचीत व्यर्थ है। गरीब आदमी ऊब से कभी पीड़ित नहीं होता है, सिर्फ अमीर ऊबता है। गरीब आदमी क्या ऊबेगा, उसे तो सदा भविष्य की चिंता घेरे रहती है। कुछ होने जा रहा है, तब सब ठीक हो जाएगा। गरीब को आश्वासन की जरूरत है। लेकिन अगर वह आश्वासन दूर का है तो व्यर्थ हो जाता है। आश्वासन निकट का होना चाहिए।

कहते हैं कि जीसस ने अपने अनुयायियों को कहा कि मेरे जीवन-काल में, तुम्हारे जीते-जी, तुम प्रभु का राज्य देख लोगे। यह वक्तव्य बीस सदियों से ईसाइयत को हैरानी में डाले हुए है। जीसस ने कहा था, 'तुम तुम्हारे जीवन-काल में, बहुत जल्दी, प्रभु का राज्य देख लोगे', और वह प्रभु का राज्य अब तक नहीं आया है। उनका मतलब क्या था ? और उन्होंने कहा था, शीघ्र

ही संसार समाप्त हो जाएगा, इसलिए वक्त मत गंवाओ; वक्त बहुत कम है। और उन्होंने कहा था, वक्त गंवाना मूर्खता होगी। दुनिया जल्दी ही समाप्त हो जाएगी और तुम्हें जवाब देना पड़ेगा। और तुम पछताओगे।

एक जीवन की धारणा के जरिए जीसस शीघ्रता का ख्याल पैदा करना चाहते थे। वे जानते थे, वैसे ही बुद्ध और महावीर भी जानते थे। लेकिन वह सब नहीं कहा गया है जो वे जानते थे। केवल वे उपाय हमें ज्ञात हैं जिन्हें वे काम में लाए। और यह एक उपाय था ताकि लोग इस भाव से भर सकें कि कुछ करना है, और जल्दी करना है।

भारत एक प्राचीन देश था और अमीर था। भविष्य के आश्वासन के द्वारा उसमें शीघ्रता का भाव पैदा करना व्यर्थ होता। उसे तो अधिक ऊब के उपाय से ही गतिमान किया जा सकता था। अगर एक व्यक्ति को पता चले कि उसे बार-बार जन्म लेना है, अनंत बार जन्म लेना है तो वह तुरंत आकर पूछेगा—इस चक्कर से मुक्त कैसे हुआ जाए ? यह तो मुसीबत है। मैं इसमें और ज्यादा नहीं चल सकता, क्योंकि जो जानता था वह मैंने जान लिया। अगर इसी को दोहराना है तो वह दुःस्वप्न बन जाएगा। मैं इसे और दोहराना नहीं चाहता, मैं तो कुछ नया चाहता हूं।

इसलिए बुद्ध और महावीर कहते हैं, आसमान के नीचे कुछ भी नया नहीं है। सब कुछ पुराना और पुनरुक्ति है। उसे ही तुम अनेक जन्मों से दोहरा रहे हो और अनेक जन्मों तक दोहराते रहोगे। इस पुनरुक्ति से सावधान होओ, ऊब से बचो; इसलिए छलांग लगा लो।

ये उपाय तो भिन्न हैं, लेकिन उद्देश्य वही है। उद्देश्य है कि चलो, बदलो, छलांग लगाओ, अपने को रूपांतरित करो। तुम जो भी हो, जहां भी हो, वहीं से अपने को रूपांतरित करो।

अगर हम धार्मिक वक्तव्यों को उपाय की तरह समझें तो कोई विरोध नहीं दिखाई देगा। तब जीसस और कृष्ण और मोहम्मद और महावीर एक ही काम कर रहे हैं। वे भिन्न-भिन्न मार्ग निर्मित कर रहे हैं, भिन्न-भिन्न विधियां बता रहे हैं, अलग-अलग रुझान के लिए अलग-अलग आकर्षण पैदा कर रहे हैं। वे कोई सिद्धांत नहीं हैं जिनके गिर्द बहस और झगड़ा किया जाए। वे उपाय हैं जिनका उपयोग करना है, अतिक्रमण करना है और फिर फेंक देना है।

आज इतना ही।

7

प्रेम करते हुए प्रेम ही हो जाओ

सूत्र

10. प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन हो।

11. जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब !

12. जब किसी बिस्तर या आसन पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।

मनुष्य का अपना एक केंद्र है, लेकिन वह उस केंद्र से बाहर-बाहर, दूर-दूर जीता है। और इसी से आंतरिक तनाव, सतत अशांति और संताप पैदा होते हैं। तुम वहीं नहीं होते हो जहां होना चाहिए; तुम अपने सम्यकत्व में, सही संतुलन में नहीं होते, तुम संतुलन से दूर जा पड़ते हो। और यह संतुलन से, केंद्र से दूर जा पड़ना सब मानसिक तनावों का आधार है, कारण है।

और वही तनाव यदि अतिशय हो जाए तो तुम पागल हो जाते हो। पागल आदमी वह है जो पूरी तरह अपने आप से बाहर हो गया है। आत्मज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति पागल से ठीक उलटा है, वह स्वयं में केंद्रित है।

तुम दोनों के बीच में हो। तुम अपने से पूरी तरह बाहर नहीं गए हो, और तुम अपने केंद्र पर भी नहीं हो। तुम बस अधर में डोलते हो। कभी तुम उससे दूर, बहुत दूर निकल जाते हो, और तब ऐसे क्षण आते हैं जब तुम अस्थायी तौर पर पागल हो जाते हो।

जब क्रोध में, कामवासना में या किसी भी चीज में तुम अपने से बहुत दूर निकल जाते हो तो तुम अस्थायी रूप से पागल हो जाते हो। तब तुममें और पागल आदमी में कोई फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है कि वह वहां स्थायी रूप से रुक गया है और तुम वहां कुछ देर के मेहमान हो। तुम वापस आ जाओगे।

जब तुम क्रोध में हो तो वह भी पागलपन है, लेकिन वह स्थायी नहीं है। लेकिन दोनों में, पागल में और तुममें गुण का नहीं, मात्रा का फर्क है। गुण दोनों का समान है।

इसलिए तुम कभी पागलपन के पास सरक जाते हो और कभी आराम की, पूरे विश्राम की हालत में अपने केंद्र को भी छू लेते हो। वे आनंद के क्षण हैं। वे भी घटित होते हैं। तब तुम ठीक बुद्ध के समान हो, कृष्ण के समान हो; लेकिन वह भी अस्थायी है, क्षणिक है। वहां भी तुम टिकोगे नहीं। सच तो यह है कि जिस क्षण तुमने यह जाना कि तुम आनंदित हो, तुम आनंद से च्युत हो गए। वह इतना क्षणजीवी है कि आनंद को पहचानते ही आनंद विदा हो जाता है।

और हम इन दो स्थितियों के बीच डोलते रहते हैं। लेकिन यह डोलना खतरनाक है। खतरनाक है, क्योंकि तब तुम अपना स्वरूप, निश्चित स्वरूप नहीं निर्मित कर सकते। तब तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूं। अगर तुम निरंतर पागल होने और केंद्रित होने के बीच डोलते रहे, अगर यह आना-जाना निरंतर जारी रहा, तो तुम्हारा ठोस स्वरूप नहीं निर्मित होगा; तुम्हारा रूप तरल होगा। तब तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूं।

यह बहुत कठिन है। और यही कारण है कि अगर आनंद के क्षण आने वाले हों तो तुम भयभीत हो जाते हो। और इसलिए तुम अपने को दोनों स्थितियों के कहीं बीच में स्थिर कर लेने की चेष्टा करते हो। इसी को हम सामान्य मनुष्य समझते हैं, वह न कभी क्रोध में अपने पागलपन को छूता है और न कभी वह समग्र स्वतंत्रता को, समाधि को स्पर्श करता है। वह एक थिर ढांचे से इधर-उधर नहीं सरकता है। इसलिए सामान्य मनुष्य वास्तव में इन बिंदुओं के बीच ठहरा हुआ मुर्दा मनुष्य है।

यही कारण है कि जो विशिष्ट लोग हैं, बड़े कलाकार, चित्रकार, कवि, वे सामान्य नहीं समझे जाते; वे बहुत तरल हैं। वे कभी केंद्र को छू लेते हैं और कभी विक्षिप्त भी हो जाते हैं। वे इन बिंदुओं के बीच बड़ी तेजी के साथ गति करते हैं। स्वभावतः उनका तनाव भारी है, उनका संताप बड़ा है। उन्हें दो दुनियाओं के बीच सतत अपने को एक से दूसरी में बदलते रहना है। इसलिए वे समझते हैं कि उनका कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। कोलिन विलसन के शब्दों में वे अपने को बाहरी आदमी, आउटसाइडर मानते हैं। तुम्हारी सामान्यता की दुनिया के लिए वे बाहरी लोग हैं।

इन चार ढंग के लोगों को समझ लेना यहां अच्छा रहेगा। पहला है

सामान्य आदमी, जिसकी निश्चित और ठोस पहचान है। जो जानता है कि मैं कौन हूं, कि चिकित्सक हूं, कि अभियंता हूं, कि प्राध्यापक हूं, कि संत हूं। वह जानता है कि वह कौन है और वह उस स्थान से हटता नहीं है। वह अपनी पहचान से, अपनी प्रतिमा से चिपका रहता है।

दूसरे वे लोग हैं, जिनकी प्रतिमा तरल है—कवि, कलाकार, चित्रकार, गायक। वे नहीं जानते कि हम कौन हैं। कभी वे महज सामान्य होकर रहते हैं, कभी वे पागल होते हैं और कभी उस समाधि को भी छू लेते हैं जिसे बुद्ध छूते हैं।

और तीसरे हैं, जो स्थायी रूप से पागल हैं। वे अपने से बाहर चले गए हैं और कभी घर लौटकर नहीं आते। उन्हें यह भी याद नहीं कि उनके घर हैं।

और चौथे वे हैं, जो अपने घर पहुंच गए हैं—बुद्ध, क्राइस्ट, कृष्ण।

यह चौथी श्रेणी, घर पहुंचने वालों की श्रेणी बिलकुल विश्रांति में होती है; उनकी चेतना में कोई तनाव, कोई प्रयत्न, कोई कामना नहीं रहती। एक शब्द में, उनमें होने की दौड़ नहीं रहती, वे कुछ होना नहीं चाहते। वे हैं; वे हो गए हैं। कुछ होना नहीं है। वे अपने अस्तित्व के साथ, अपने होने के साथ पूरी तरह राजी हैं। वे जो भी हैं उसके साथ पूरी तरह राजी हैं। वे उसे बदलना नहीं चाहते, वे कहीं और जाना नहीं चाहते। उनका कोई भविष्य नहीं है। यही क्षण उनके लिए शाश्वत है। कोई चाह न रही, कोई वासना न रही।

उसका यह अर्थ नहीं है कि बुद्ध खाते नहीं हैं, बुद्ध सोते नहीं हैं। वे खाते भी हैं, वे सोते भी हैं, लेकिन ये उनकी वासनाएं नहीं हैं। बुद्ध इन वासनाओं को फैलाएंगे नहीं; वे कल नहीं खाएंगे, वे आज खाएंगे।

इसे स्मरण रखो। तुम सदा कल में खाते हो, तुम सदा भविष्य में खाते हो। और या तुम अतीत में खाते हो, बीते कल में। शायद ही कभी तुम आज खाते हो। आज तुम खा रहे हो और तुम्हारा मन कहीं और गति करता रहेगा। जब तुम सोने की तैयारी कर रहे होगे, तुम कल में खाने लगोगे; या अतीत की कोई स्मृति आ धमकेगी।

बुद्ध आज खाते हैं। वे इसी क्षण में जीते हैं। वे अपने जीवन को भविष्य में प्रक्षेपित नहीं करते हैं। उनके लिए कोई भविष्य नहीं है। और जब भविष्य आता है तो वर्तमान की तरह आता है। वह सदा आज है। वह सदा अब है। बुद्ध भी खाते हैं, लेकिन याद रहे, वे मन में नहीं खाते हैं। उनके लिए भोजन मानसिकता नहीं है।

तुम तो मन में ही खाए चले जाते हो। यह बेहूदा है, क्योंकि मन खाने के

काम के लिए नहीं है। तुम्हारे सभी केंद्र अस्तव्यस्त हो गए हैं। तुम्हारे शरीर-मन की सारी व्यवस्था खिचड़ी बन गई है। वह विक्षिप्त हो गई है। बुद्ध भी भोजन करते हैं, पर उस बाबत सोच-विचार नहीं करते। और यही बात हर क्षेत्र में लागू होती है।

इसलिए खाते समय बुद्ध उतने ही सामान्य हैं जितने तुम हो। यह मत समझना कि बुद्ध भोजन नहीं करते हैं या तेज धूप में उन्हें पसीना नहीं आता और सर्द हवा में उन्हें सर्दी नहीं लगती। वे भी सर्दी अनुभव करेंगे, लेकिन वे सदा वर्तमान में अनुभव करेंगे, भविष्य में नहीं। उन्हें कुछ होना नहीं है। और यदि होना नहीं है तो तनाव भी नहीं है। इसे ठीक से समझ लो। अगर कुछ होना नहीं है तो तनाव कैसा ?

तनाव का तो अर्थ ही यह है कि तुम वह होना चाहते हो जो नहीं हो। तुम क हो और ख बनना चाहते हो। तुम गरीब हो और धनी बनना चाहते हो। तुम कुरूप हो और रूपवान होना चाहते हो। या तुम मूढ़ हो और बुद्धिमान होना चाहते हो। जो भी चाह हो, जो भी वासना हो, उसका रूप यही है—क ख बनना चाहता है। यानी तुम जो भी हो उससे संतुष्ट नहीं हो। संतोष के लिए कुछ अन्यथा जरूरी है। चाहने वाले मन की वही स्थायी संरचना है। और जब तुम उसे पा लोगे तो मन फिर कहेगा कि यह काफी नहीं है, कुछ और चाहिए।

मन सदा आगे ही चलता जाता है। जो भी तुम्हें मिल जाता है, व्यर्थ हो जाता है। जिस क्षण मिलता है, उसी क्षण व्यर्थ हो जाता है। यही वासना है। बुद्ध ने उसे तृष्णा कहा है। यही कुछ और होना है। तुम एक जीवन से दूसरे जीवन में गति करते हो, एक संसार से दूसरे संसार में भटकते हो। और यह सिलसिला जारी रहता है। यह अंतहीन जारी रह सकता है। इसका कोई अंत नहीं है। चाह का, चाहना का कोई अंत नहीं है।

लेकिन अगर कुछ होने की बात न रहे। अगर तुम उसे, जो तुम हो, समग्रता में स्वीकार करते हो—कुरूप या सुंदर, बुद्धिमान या मूर्ख, धनी या दरिद्र, जो भी तुम हो, उसे यदि उसकी पूर्णता में स्वीकार करते हो—तो कुछ होने की बात समाप्त हो जाती है। और तब तनाव नहीं रहता। तब तनाव रह ही नहीं सकता। और तब संताप भी समाप्त हो जाता है। तब तुम चैन में हो, चिंता में नहीं। और यह आकांक्षारहित मन जो है, वही आत्मा में केंद्रित होता है।

इसके बिलकुल दूसरे छोर पर पागल आदमी है। उसका कोई स्व नहीं रहा, वह कुछ होने की चाह भर है। वह भूल गया है कि वह कौन है। क पूरी तरह भूल गया है और वह बस ख होने की चेष्टा में लगा है। उसे पता नहीं है कि

वह कौन है; उसे बस अपनी इच्छित मंजिल का पता है। वह यहां और अभी नहीं रहता है; वह कहीं और रहता है। इसी वजह से वह हमें पागल मालूम पड़ता है। क्योंकि तुम अपनी दुनिया में रहते हो और वह अपने सपनों की दुनिया में रहता है। वह तुम्हारी दुनिया का हिस्सा नहीं रहा, वह कहीं अन्यत्र रहता है। वह यहां और अभी के अपने यथार्थ को पूरी तरह भूल बैठा है। अपने साथ वह अपने आसपास के संसार को भी भूल बैठा है, जो कि वास्तविक है। वह एक अवास्तविक झूठी दुनिया में रहता है। उसके लिए वही एकमात्र वास्तविकता है।

बुद्धपुरुष इसी क्षण अपनी आत्मा में वास करते हैं। पागल आदमी उनके ठीक विपरीत है। वह कभी भी यहां और अभी में नहीं रहता है। वह अपने में नहीं है; वह सदा कहीं होने में, दूर क्षितिज में वास करता है।

इसलिए ध्यान रहे कि पागल आदमी तुम्हारे विपरीत नहीं है, वह बुद्ध के विपरीत है। और यह भी स्मरण रहे कि बुद्ध भी तुम्हारे विपरीत नहीं हैं, पागल के विपरीत हैं। तुम दोनों के बीच में हो, तुम दोनों की खिचड़ी हो। तुममें पागलपन भी है और तुममें समाधि के क्षण भी हैं। तुम दोनों की मिलावट हो।

कभी-कभी तुम्हें अचानक ही केंद्र की झलक मिल जाती है। यह तब होता है जब तुम शिथिल होते हो। और तुम्हारे शिथिल होने के, विश्राम में होने के क्षण होते हैं।

तुम प्रेम में हो। कुछ क्षण के लिए तुम्हारा प्रेमी या तुम्हारी प्रेमिका तुम्हारे साथ है। यह तुम्हारी बड़े दिनों की चाह थी, इसके लिए तुमने लंबे प्रयत्न किए थे और फलतः तुम्हारी प्रेमिका तुम्हारे साथ है। तब एक क्षण के लिए मन तिरोहित हो जाता है। प्रेमिका के साथ होने के लिए तुमने बड़ी चेष्टा की है। मन उसके लिए तड़पता रहा है, तड़पता रहा है और मन उस प्रेमिका के बारे में सोचता रहा है। और अब प्रेमिका पास में है और मन अचानक सोचना बंद कर देता है। पुराना सिलसिला जारी नहीं रह सकता। तुम प्रेमिका को चाह रहे थे, प्रेमिका मिल गई। मन रुक जाता है।

प्रेमिका के मिलने के क्षण में चाह समाप्त हो जाती है। और तुम शिथिल हो जाते हो और अचानक तुम अपने ऊपर फेंक दिए जाते हो। और जब तक कोई प्रेमी तुम्हें तुम्हारे ऊपर न फेंक दे, तब तक वह प्रेम नहीं है। जब तक तुम अपनी प्रेमिका की उपस्थिति में स्वयं नहीं हो जाते हो, तब तक वह प्रेम नहीं है। अगर प्रेमी या प्रेमिका की उपस्थिति में मन काम करना बंद नहीं करे तो वह प्रेम नहीं है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि मन ठहर जाता है और चाह नहीं रहती। प्रेम चाह-शून्य है। इसे समझने की कोशिश करो। तुम प्रेम को चाह सकते हो, लेकिन प्रेम स्वयं चाह-शून्य है। जब प्रेम घटित होता है, चाह नहीं रह जाती है। मन चुप, शांत और शिथिल हो जाता है। अब कुछ होना नहीं है, अब कहीं जाना नहीं है।

लेकिन यह कुछ क्षणों के लिए ही होता है, अगर यह होता है। अगर तुमने सचमुच किसी को प्रेम किया है तो ऐसा कुछ क्षणों के लिए हो सकता है। यह एक चोट है, आघात है। मन काम नहीं कर सकता, क्योंकि सारा काम व्यर्थ हो गया। जिसे चाहते थे वह सामने हो तो मन को कुछ और करने को नहीं रह जाता। कुछ क्षणों के लिए सारा संयंत्र बंद हो जाता है और तुम अपने में ठहर जाते हो। तुमने अपना केंद्र छू लिया, अपना होना पा लिया, और तुम अपने को शिवत्व के उद्‌गम पर खड़े पाते हो। आनंद तुम्हें भर जाता है, एक सुगंध तुम्हें घेर लेती है। और अचानक तुम वही आदमी रह जाते हो जो तुम थे।

यही कारण है कि प्रेम इतना रूपांतरण लाता है। अगर तुम प्रेम में हो तो तुम इसे छिपा नहीं सकते। वह असंभव है। अगर तुम प्रेम में हो तो वह व्यक्त होगा। तुम्हारी आंखें, तुम्हारा चेहरा, तुम्हारे चलने का ढंग, तुम्हारे बैठने का ढंग, सब कुछ प्रेम को प्रकट करेगा। क्योंकि तुम वही आदमी नहीं रहे। चाहने वाला मन नहीं रहा, तुम कुछ क्षणों के लिए बुद्ध जैसे हो गए।

पर यह अधिक देर तक नहीं चलेगा, क्योंकि यह आघात है। जल्दी ही मन फिर से सोचने के कुछ ढंग, कुछ बहाने खोज निकालेगा। उदाहरण के लिए, मन सोचना शुरू कर देगा कि मंजिल तो मिल गई, प्रेम तो पा लिया, फिर क्या ? अब आगे क्या करना है ? और तब भविष्य-चिंतन शुरू होता है, तर्क शुरू होता है। तुम सोचने लगते हो कि आज तो प्रियजन को पा लिया, लेकिन क्या कल भी ऐसा ही रहेगा ? मन ने काम शुरू कर दिया। और जिस क्षण मन काम करने लगा, तुम कुछ होने के चक्र में वापस आ गए।

और कभी-कभी तो कोई व्यक्ति प्रेम के बिना ही, सिर्फ थकावट के कारण सोचना बंद कर देता है। उस दशा में भी आदमी अपने पर फिंक जाता है। जब तुम अपने से दूर नहीं होते हो तो अपने में होते हो। चाहे उसका कारण कुछ भी हो। जब कोई समग्र रूप से थक जाता है, जब सोचने या चाहने को भी जी नहीं करता, जब आशा से भी परे पूरी तरह निराश हो जाता है, तब वह अचानक अपने को अपने घर में आया पाता है। अब वह कहीं भी नहीं जा सकता। सब दरवाजे बंद हो गए, आशा तिरोहित हो गई। और उसकी सारी

चाह भी गई—कुछ होने की चाह।

पर यह अधिक देर तक नहीं चलेगा। क्योंकि मन का एक संयंत्र है जो थोड़ी देर के लिए मृत होकर फिर जीवित हो जाता है। क्योंकि तुम निराशा में नहीं जी सकते, तुम कोई आशा फिर पकड़ लोगे। तुम कामना के बिना नहीं जी सकते, तुम कोई-न-कोई कामना पैदा कर लोगे।

लेकिन जिस स्थिति में अचानक मन काम करना बंद कर देता है, तुम अपने को अपने केंद्र पर पाते हो। तुम छुट्टी मना रहे हो, किसी जंगल में या पहाड़ पर या समुद्र-तट पर हो। वहां अचानक तुम्हारा लीक-लीक चलने वाला मन, दिनचर्या वाला मन काम करना बंद कर देगा। वहां दफ्तर नहीं है, वहां पत्नी नहीं है, वहां पति नहीं है। अचानक एक नई स्थिति आ गई। और मन को उसमें नियोजित होने में, उसमें फिर से काम करने के लिए समय चाहिए। जरा देर के लिए मन अनियोजित अनुभव करता है। स्थिति ही इतनी नई है कि तुम शिथिल हो जाते हो, और तुम अपने केंद्र पर होते हो। इन क्षणों में तुम बुद्ध हो जाते हो।

लेकिन वे क्षण क्षण ही होंगे। फिर वे क्षण तुम्हारा पीछा करने लगेंगे और तुम उन्हें बार-बार दुहराना चाहोगे। लेकिन याद रहे कि वे सहज ही घटित हुए थे, इसलिए तुम उन्हें दुहरा नहीं सकते। और जितना तुम उन्हें दुहराना चाहोगे, उतना ही उनका आना असंभव हो जाएगा।

यही बात सबके साथ घटित हो रही है। तुम किसी को प्रेम करते थे, और पहली मुलाकात में मन कुछ क्षणों के लिए ठहर गया था। फिर तुमने विवाह रचा लिया। किसलिए ? उन्हीं सुंदर क्षणों को बार-बार दुहराने के लिए। लेकिन जब वे घटित हुए थे तब तुम विवाहित नहीं थे। और अब वे क्षण विवाह में घटित होने वाले नहीं हैं। क्योंकि पूरी स्थिति बदल गई।

जब दो व्यक्ति पहली दफा मिलते हैं तब पूरी स्थिति नई होती है। इसमें उनके मन काम नहीं कर सकते हैं। वे इस नई स्थिति से इतने अभिभूत होते हैं, वे इस नए अनुभव से, इस नए जीवन से, इस नई खिलावट से इतने भरे होते हैं! और तब मन फिर सक्रिय हो जाता है और तुम सोचने लगते हो—यह कितना सुंदर क्षण है। मैं रोज-रोज दुहराना चाहता हूं, इसलिए मुझे विवाह कर लेना चाहिए।

मन सब कुछ नष्ट कर देगा। विवाह यानी मन। प्रेम सहज है, विवाह हिसाब है। विवाह करना गणित का काम है। तब तुम उन क्षणों का इंतजार करोगे, लेकिन वे फिर कभी न आएंगे। यही कारण है कि सभी विवाहित स्त्री-पुरुष

निराश होते हैं। वे अतीत में घटे कुछ क्षणों की प्रतीक्षा करते हैं। वे फिर क्यों नहीं घटित होते ?

वे नहीं घटित होंगे, क्योंकि पूरी स्थिति बदल गई। अब तुम नए नहीं रहे; अब वह सहजता, वह स्वाभाविकता नहीं रही; प्रेम अब एक दिनचर्या बनकर रह गया है। अब हर चीज की अपेक्षा है, हर चीज मांगी जा रही है। प्रेम अब कर्तव्य बन गया है, खेल न रहा। आरंभ में वह खेल था, अब कर्तव्य है। और कर्तव्य वह आनंद नहीं दे सकता जो खेल देता है। यह असंभव है। तुम्हारे मन ने सारा उपद्रव रचा है। अब तुम अपेक्षा किए जाओगे। और जितनी अपेक्षा करोगे उतनी ही उसके घटने की संभावना कम होगी।

विवाह में ही नहीं, ऐसा सर्वत्र होता है। तुम किसी गुरु के पास जाते हो। यह अनुभव नया है। उसकी सन्निधि, उसके शब्द, उसकी जीवन-चर्या, सब नए हैं। और अचानक तुम्हारा मन ठहर जाता है। तब तुम सोचते हो— यही व्यक्ति है मेरे लिए, मुझे रोज ही इसके पास आना चाहिए। तब तुम उससे विवाहित हो जाते हो। फिर धीरे-धीरे निराशा आती है, क्योंकि तुमने इसे कर्तव्य बना लिया, दिनचर्या बना लिया। अब वे ही अनुभव नहीं होंगे। तब तुम सोचते हो कि इस आदमी ने तुम्हें धोखा दिया या तुम किसी तरह मूर्ख बनाए गए। तब तुम सोचते हो कि शुरू के अनुभव बिलकुल काल्पनिक थे। मैं सम्मोहित हो गया था या कुछ हुआ था। यह वास्तविक नहीं था।

यह वास्तविक था। तुम्हारे दिनचर्या वाले मन ने, लीक-लीक चलने वाले मन ने उसे झूठा कर दिया। और तब मन उसकी अपेक्षा करने लगता है। लेकिन जब यह अनुभव पहली बार आया था तब तुम अपेक्षा नहीं करते थे। तुम उसके पास बिना किसी अपेक्षा के आए थे। जो कुछ घटित हो रहा था, तुम उसे ग्रहण करने को राजी थे। अब तुम हर रोज अपेक्षा से आते हो, बंद मन से आते हो। यह घटित नहीं होगा। यह सदा खुले मन में घटता है, यह सदा नई स्थिति में आता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें रोज अपनी स्थिति बदलनी है। इसका इतना ही अर्थ है कि अपने मन को कोई ढांचा मत बनाने दो। तब तुम्हारी पत्नी रोज नई होगी, तब तुम्हारा पति रोज नया होगा। लेकिन मन को अपेक्षाओं का ढंग-ढांचा मत बनाने दो, मन को भविष्य में मत सरकने दो। तब तुम्हारा गुरु रोज नया रहेगा, तब तुम्हारा मित्र रोज नया रहेगा।

दुनिया में मन के सिवाय सब कुछ नया है। मन ही एक चीज है जो पुरानी है। मन सदा पुराना है। रोज एक नया सूरज उगता है, वह पुराना सूरज नहीं

है। चांद नया है; दिन, रात, फूल, वृक्ष, सब कुछ नया है—एक मन के सिवाय। मन सदा पुराना है। याद रहे, सदा। क्योंकि मन को सदा अतीत की, संचित अनुभव की, प्रक्षेपित अनुभव की जरूरत पड़ती है। मन को अतीत चाहिए और जीवन को वर्तमान। जीवन सदा आनंदित है, मन कभी नहीं, और जब तुम अपने मन को प्रवेश देते हो, दुख प्रवेश कर जाता है।

ये सहज, स्वत:स्फूर्त क्षण फिर नहीं दुहरेंगे। तब क्या किया जाए ? फिर विश्राम की अवस्था में निरंतर कैसे रहा जाए ? ये तीन विधियां उसके लिए ही हैं। ये तीन विधियां विश्राम के भाव से, स्नायुओं को शिथिल करने से संबंध रखती हैं। अपने होने में, स्व में थिर कैसे रहा जाए ? कुछ होने की दौड़ से कैसे बचा जाए ?

यह कठिन है, श्रमसाध्य है; लेकिन ये विधियां मदद कर सकती हैं। ये विधियां तुम्हें तुम्हारे ऊपर फेंक देंगी।

प्रेम ही हो जाओ

शिथिल होने की पहली विधि :

10. प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन हो।

शिव प्रेम से शुरू करते हैं। पहली विधि प्रेम से संबंधित है। क्योंकि तुम्हारे शिथिल होने के अनुभव में प्रेम का अनुभव निकटतम है। अगर तुम प्रेम नहीं कर सकते हो तो तुम शिथिल भी नहीं हो सकते। और अगर तुम शिथिल हो सके तो तुम्हारा जीवन प्रेमपूर्ण हो जाएगा।

एक तनावग्रस्त आदमी प्रेम नहीं कर सकता है। क्यों ? क्योंकि तनावग्रस्त आदमी सदा उद्देश्य से, प्रयोजन से जीता है। वह धन कमा सकता है, लेकिन प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम प्रयोजन-रहित है। प्रेम कोई वस्तु नहीं है। तुम उसे संगृहीत नहीं कर सकते, तुम उसे बैंक-खाते में नहीं रख सकते हो। तुम उससें अपने अहंकार की पुष्टि नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि प्रेम सबसे अर्थहीन काम है; उससे आगे उसका कोई अर्थ नहीं है, उससे आगे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। प्रेम अपने आप में जीता है, किसी अन्य चीज के लिए नहीं।

तुम धन कमाते हो—किसी प्रयोजन से। वह एक साधन है। तुम मकान बनाते हो—किसी के रहने के लिए। वह भी एक साधन है। प्रेम साधन नहीं है। तुम क्यों प्रेम करते हो ? किसलिए प्रेम करते हो ?

प्रेम अपना लक्ष्य आप है। यही कारण है कि हिसाब-किताब रखने वाला मन, तार्किक मन, प्रयोजन की भाषा में सोचने वाला मन प्रेम नहीं कर सकता। और जो मन प्रयोजन की भाषा में सोचता है वह तनावग्रस्त होगा। क्योंकि प्रयोजन भविष्य में ही पूरा किया जा सकता है, यहां और अभी नहीं।

तुम एक मकान बना रहे हो, तुम उसमें अभी ही नहीं रह सकते। पहले बनाना होगा। तुम भविष्य में उसमें रह सकते हो, अभी नहीं। तुम धन कमाते हो; बैंक बैलेंस भविष्य में बनेगा, अभी नहीं। अभी साधन का उपयोग कर सकते हो, साध्य भविष्य में आएंगे।

प्रेम सदा यहां है और अभी है। प्रेम का कोई भविष्य नहीं है। यही वजह है कि प्रेम ध्यान के इतने करीब है। यही वजह है कि मृत्यु भी ध्यान के इतने करीब है। क्योंकि मृत्यु भी यहां और अभी है, वह भविष्य में नहीं घटती।

क्या तुम भविष्य में मर सकते हो ? वर्तमान में ही मर सकते हो। कोई कभी भविष्य में नहीं मरा। भविष्य में कैसे मर सकते हो ? या अतीत में कैसे मर सकते हो ? अतीत जा चुका, वह अब नहीं है। इसलिए अतीत में नहीं मर सकते। और भविष्य अभी आया नहीं है, इसलिए उसमें कैसे मरोगे ?

मृत्यु सदा वर्तमान में होती है। मृत्यु, प्रेम और ध्यान, सब वर्तमान में घटित होते हैं। इसलिए अगर तुम मृत्यु से डरते हो तो तुम प्रेम नहीं कर सकते। अगर तुम मृत्यु से भयभीत हो तो तुम ध्यान नहीं कर सकते। और अगर तुम ध्यान से डरे हो तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा। किसी प्रयोजन के अर्थ में जीवन व्यर्थ नहीं होगा। वह व्यर्थ इस अर्थ में होगा कि तुम्हें उसमें किसी आनंद की अनुभूति नहीं होगी। जीवन अर्थहीन होगा।

इन तीनों को—प्रेम, ध्यान और मृत्यु को—एक साथ रखना अजीब मालूम पड़ेगा। वह अजीब है नहीं। वे समान अनुभव हैं। इसलिए अगर तुम एक में प्रवेश कर गए तो शेष दो में भी प्रवेश पा जाओगे।

शिव प्रेम से शुरू करते हैं, 'प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन हो।'

इसका क्या अर्थ है ? कई चीजें। एक, जब तुम्हें प्रेम किया जाता है तो अतीत समाप्त हो जाता है और भविष्य नहीं है। तुम वर्तमान के आयाम में गति कर जाते हो, तुम अब में प्रवेश कर जाते हो। क्या तुमने कभी किसी को प्रेम किया है ? यदि कभी किया है तो जानते हो कि उस क्षण मन नहीं होता है।

यही कारण है कि तथाकथित बुद्धिमान कहते हैं कि प्रेमी अंधे होते हैं, मनःशून्य और पागल होते हैं। वस्तुतः वे सच कहते हैं। प्रेमी इस अर्थ में अंधे

होते हैं कि भविष्य पर अपने किए का हिसाब रखने वाली आंख उनके पास नहीं होती। वे अंधे हैं, क्योंकि वे अतीत को नहीं देख पाते। प्रेमियों को क्या हो जाता है ?

वे अभी और यहीं में सरक आते हैं, अतीत और भविष्य की चिंता नहीं करते, क्या होगा इसकी चिंता नहीं लेते। इस कारण वे अंधे कहे जाते हैं। वे हैं। जो गणित करते हैं उनके लिए वे अंधे हैं, और जो गणित नहीं करते उनके लिए आंख वाले हैं। जो हिसाबी नहीं हैं वे देख लेंगे कि प्रेम ही असली आंख है, वास्तविक दृष्टि है।

इसलिए पहली चीज कि प्रेम के क्षण में अतीत और भविष्य नहीं होते हैं। तब एक नाजुक बिंदु समझने जैसा है। जब अतीत और भविष्य नहीं रहते तब क्या तुम इस क्षण को वर्तमान कह सकते हो ? यह वर्तमान है दो के बीच, अतीत और भविष्य के बीच; यह सापेक्ष है। अगर अतीत और भविष्य नहीं रहे तो इसे वर्तमान कहने में क्या तुक है! वह अर्थहीन है। इसीलिए शिव वर्तमान शब्द का व्यवहार नहीं करते; वे कहते हैं, नित्य जीवन। उनका मतलब शाश्वत से है—शाश्वत में प्रवेश करो।

हम समय को तीन हिस्सों में बांटते हैं—भूत, वर्तमान और भविष्य। यह विभाजन गलत है, सर्वथा गलत है। केवल भूत और भविष्य समय है, वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है। जो बीत गया वह समय है, जो आने वाला है समय है। लेकिन जो है वह समय नहीं है, क्योंकि वह कभी बीतता नहीं है। वह सदा है। अब सदा है। वह सदा यहां है। यह अब शाश्वत है।

अगर तुम अतीत से चलो तो तुम कभी वर्तमान में नहीं आते। अतीत से तुम सदा भविष्य में यात्रा करते हो। उसमें कोई क्षण नहीं आता जो वर्तमान हो। तुम अतीत से सदा भविष्य में गति करते रहते हो। और वर्तमान से तुम और वर्तमान में गहरे उतरते हो, अधिकाधिक वर्तमान में। यही नित्य जीवन है।

इसे हम इस तरह भी कह सकते हैं। अतीत से भविष्य तक समय है। समय का अर्थ है कि तुम समतल भूमि पर और सीधी रेखा में गति करते हो। या हम उसे क्षैतिज कह सकते हैं। और जिस क्षण तुम वर्तमान में होते हो, आयाम बदल जाता है, तुम्हारी गति ऊर्ध्वाधर, ऊपर-नीचे हो जाती है। तुम ऊपर, ऊंचाई की ओर जाते हो या नीचे गहराई की ओर जाते हो। लेकिन तब तुम्हारी गति क्षैतिज या समतल नहीं होती।

बुद्ध और शिव शाश्वत में रहते हैं, समय में नहीं।

जीसस से पूछा गया कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा ? जो पूछ रहा था वह समय के बारे में नहीं पूछ रहा था। वह जानना चाहता था कि वहां उसकी वासनाओं का क्या होगा, वे कैसे पूरी होंगी ? वह पूछ रहा था कि क्या वहां अनंत जीवन होगा या वहां मृत्यु भी होगी, क्या वहां दुख भर रहेगा और छोटे और बड़े लोग भी होंगे। जब उसने पूछा कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा तब वह इसी दुनिया की बात पूछ रहा था।

और जीसस ने उत्तर में कहा—यह उत्तर झेन संत के उत्तर जैसा है—'वहां समय नहीं होगा।' जिस व्यक्ति को यह उत्तर दिया गया था उसने कुछ नहीं समझा होगा। जीसस ने इतना ही कहा—वहां समय नहीं होगा। क्यों ? क्योंकि समय क्षैतिज है और प्रभु का राज्य ऊर्ध्वागामी है। वह शाश्वत है। वह सदा यहां है। उसमें प्रवेश के लिए तुम्हें समय से हट भर जाना है।

तो प्रेम पहला द्वार है। इसके द्वारा तुम समय के बाहर निकल सकते हो। यही कारण है कि हर आदमी प्रेम चाहता है, हर आदमी प्रेम करना चाहता है। और कोई नहीं जानता है कि प्रेम को इतनी महिमा क्यों दी जाती है ? प्रेम के लिए इतनी गहरी चाह क्यों है ? और जब तक तुम यह ठीक से न समझ लो, तुम न प्रेम कर सकते हो और न पा सकते हो। क्योंकि इस धरती पर प्रेम गहन से गहन घटना है।

हम सोचते हैं कि हर आदमी, जैसा वह है, प्रेम करने को सक्षम है। वह बात नहीं है। और इसी कारण से तुम प्रेम में निराश होते हो। प्रेम एक और ही आयाम है। यदि तुमने किसी को समय के भीतर प्रेम करने की कोशिश की तो तुम्हारी कोशिश हारेगी। समय के रहते प्रेम संभव नहीं है।

मुझे एक कथा याद आती है। मीरा कृष्ण के प्रेम में थी। वह गृहिणी थी—एक राजकुमार की पत्नी। राजा को कृष्ण से ईर्ष्या होने लगी। कृष्ण थे नहीं, वे शरीर से उपस्थित नहीं थे। कृष्ण और मीरा की शारीरिक मौजूदगी में पांच हजार वर्षों का फासला था। इसलिए यथार्थ में मीरा कृष्ण के प्रेम में कैसे हो सकती थी ? समय का अंतराल इतना बड़ा था।

एक दिन राणा ने मीरा से पूछा, तुम अपने प्रेम की बात किए जाती हो, तुम कृष्ण के आसपास नाचती-गाती हो, लेकिन कृष्ण है कहां ? तुम किसके प्रेम में हो ? किससे सतत बातें किए जाती हो ?

मीरा कृष्ण के साथ बातें करती थी, गाती थी, हंसती थी, लड़ती थी। वह पागल मालूम पड़ती थी। हमारी आंखों में वह पागल थी। राणा ने कहा, क्या तुम पागल हो गई हो ? तुम्हारे कृष्ण कहां हैं ? किसे प्रेम करती हो ? किससे

बातें करती हो ? मैं यहां मौजूद हूं और तुम क्या मुझे बिलकुल भूल गई हो ?

मीरा ने कहा, कृष्ण यहां हैं, तुम नहीं हो। क्योंकि कृष्ण शाश्वत हैं, तुम नहीं। वे यहां सदा होंगे। सदा थे, वे यहीं हैं। तुम यहां नहीं होगे, तुम यहां नहीं थे। एक दिन तुम यहां नहीं थे, किसी दिन फिर यहां नहीं होओगे। इसलिए मैं कैसे विश्वास करूं कि इन दो अनस्तित्वों के बीच तुम यहां हो ? दो अनस्तित्वों के बीच अस्तित्व क्या संभव है ?

राणा समय में है, लेकिन कृष्ण शाश्वत में हैं। तुम राणा के निकट हो सकते हो, लेकिन दूरी नहीं मिटाई जा सकती। तुम दूर ही रहोगे। और समय में तुम कृष्ण से बहुत-बहुत दूर हो सकते हो, तो भी तुम उनके निकट हो सकते हो। वह आयाम ही और है।

मैं अपने सामने देखता हूं और वहां दीवार है; फिर मैं अपनी आंखों को आगे बढ़ाता हूं और वहां आकाश है। जब तुम समय में देखते हो तो वहां दीवार है। और जब तुम समय के पार देखते हो तो वहां खुला आकाश है, अनंत आकाश।

प्रेम अनंत का द्वार खोल देता है—अस्तित्व की शाश्वतता का द्वार। इसलिए अगर तुमने कभी सच में प्रेम किया है तो प्रेम को ध्यान की विधि बनाया जा सकता है। यह वही विधि है, 'प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन हो।'

बाहर-बाहर रहकर प्रेमी मत बनो, प्रेमपूर्ण होकर शाश्वत में प्रवेश करो। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो क्या तुम वहां प्रेमी की तरह होते हो ? अगर होते हो तो समय में हो, और तुम्हारा प्रेम झूठा है, नकली है। अगर तुम अब भी वहां हो और कहते हो कि मैं हूं तो शारीरिक रूप से नजदीक होकर भी आध्यात्मिक रूप से तुम्हारे बीच दो ध्रुवों की दूरी कायम रहती है।

प्रेम में तुम न रहो, सिर्फ प्रेम रहे; इसलिए प्रेम ही हो जाओ। अपने प्रेमी या प्रेमिका को दुलार करते समय दुलार ही हो जाओ। चुंबन लेते समय चूमने वाले या चूमे जाने वाले मत रहो, चुंबन ही बन जाओ। अहंकार को बिलकुल भूल जाओ, प्रेम के कृत्य में घुल-मिल जाओ। कृत्य में इतने गहरे समा जाओ कि कर्ता न रहे।

और अगर तुम प्रेम में नहीं गहरे उतर सकते तो खाने और चलने में गहरे उतरना कठिन होगा, बहुत कठिन होगा। क्योंकि अहंकार को विसर्जित करने के लिए प्रेम सबसे सरल मार्ग है। इसी वजह से अहंकारी लोग प्रेम नहीं कर पाते हैं। वे प्रेम के बारे में बातें कर सकते हैं, गीत गा सकते हैं, लिख सकते

हैं; लेकिन वे प्रेम नहीं कर सकते। अहंकार प्रेम नहीं कर सकता है।

शिव कहते हैं, प्रेम ही हो जाओ। जब आलिंगन में हो तो आलिंगन हो जाओ, चुंबन हो जाओ। अपने को इस पूरी तरह भूल जाओ कि तुम कह सको कि मैं अब नहीं हूं, केवल प्रेम है। तब हृदय नहीं धड़कता है, प्रेम ही धड़कता है। तब खून नहीं दौड़ता है, प्रेम ही दौड़ता है। तब आंखें नहीं देखती हैं, प्रेम ही देखता है। तब हाथ छूने को नहीं बढ़ते, प्रेम ही छूने को बढ़ता है। प्रेम बन जाओ और शाश्वत जीवन में प्रवेश करो।

प्रेम अचानक तुम्हारे आयाम को बदल देता है। तुम समय से बाहर फेंक दिए जाते हो, तुम शाश्वत के आमने-सामने खड़े हो जाते हो। प्रेम गहरा ध्यान बन सकता है—गहरे से गहरा। और कभी-कभी प्रेमियों ने वह जाना है जो संतों ने भी नहीं जाना। कभी-कभी प्रेमियों ने उस केंद्र को छुआ है जो अनेक योगियों ने नहीं छुआ।

लेकिन जब तक तुम अपने प्रेम को ध्यान में रूपांतरित नहीं करते तब तक यह एक झलक ही होगी। तंत्र का अर्थ ही है प्रेम का ध्यान में रूपांतरण। अब तुम समझ सकते हो कि तंत्र क्यों प्रेम और कामवासना के संबंध में इतनी बात करता है। क्यों ? क्योंकि प्रेम वह सरलतम स्वाभाविक द्वार है, जहां से तुम इस संसार का, इस क्षैतिज आयाम का अतिक्रमण कर सकते हो।

शिव को अपनी प्रिया देवी के साथ देखो। उन्हें ध्यान से देखो! वे दो नहीं मालूम होते हैं, वे एक ही हैं। यह एकता इतनी गहरी है कि प्रतीक बन गई है। हम सबने शिवलिंग देखे हैं। यह लैंगिक प्रतीक है, शिव के लिंग का प्रतीक। लेकिन वह अकेला नहीं है, वह देवी की योनि में स्थित है। पुराने दिनों के हिंदू बड़े साहसी थे। अब जब तुम शिवलिंग देखते हो तो याद नहीं रहता कि यह एक लैंगिक प्रतीक है। हम भूल गए हैं, हमने चेष्टापूर्वक इसे पूरी तरह भुला दिया है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग ने अपनी आत्मकथा में, अपने संस्मरणों में एक मजेदार घटना का उल्लेख किया है। वह भारत आया और कोणार्क देखने को गया। कोणार्क के मंदिर में शिवलिंग हैं। जो पंडित उसे समझाता था उसने शिवलिंग के सिवाय सब कुछ समझाया। और वे इतने थे कि उनसे बचना मुश्किल था। जुंग तो सब जानता था, लेकिन पंडित को सिर्फ चिढ़ाने के लिए पूछता रहा कि ये क्या हैं ? तो पंडित ने आखिर जुंग के कान में कहा कि मुझसे यहां मत पूछिए, मैं पीछे आपको बताऊंगा। यह गोपनीय है।

जुंग मन-ही-मन हंसा होगा। ये हैं आज के हिंदू! फिर बाहर आकर पंडित ने कहा कि दूसरों के सामने आपका पूछना उचित न था। अब मैं बताता हूं। यह बात गुप्त चीज है। और तब फिर उसने जुंग के कान में कहा कि वे हमारे गुप्तांग हैं।

जुंग जब यहां से वापस गया तो वहां वह एक महान विद्वान से मिला, पूर्वीय चिंतन, मिथक और दर्शन के विद्वान, हेनरिख जिमर से। जुंग ने यह किस्सा जिमर को सुनाया। जिमर उन थोड़े से मनीषियों में था जिन्होंने भारतीय चिंतन में डूबने की चेष्टा की है। और वह भारत का, उसकी विचारणा का, जीवन के प्रति उसके अतार्किक रहस्यवादी दृष्टिकोण का प्रेमी था। जब उसने जुंग से यह सुना तो वह हंसा और बोला, बदलाहट के लिए यह अच्छा है। मैंने बुद्ध, कृष्ण, महावीर जैसे महान भारतीयों के बारे में सुना है। तुम जो सुना रहे हो वह किसी महान भारतीय के संबंध में नहीं, भारतीयों के संबंध में कुछ कहता है।

शिव के लिए प्रेम महाद्वार है। और उनके लिए कामवासना निंदनीय नहीं है। उनके लिए काम बीज है और प्रेम उसका फूल है। और अगर तुम बीज की निंदा करते हो तो फूल की भी निंदा अपने आप हो जाती है। काम प्रेम बन सकता है। और अगर वह कभी प्रेम नहीं बनता है तो वह पंगु हो जाता है। पंगुता की निंदा करो, काम की नहीं। प्रेम को खिलना चाहिए। काम को प्रेम बनना चाहिए। और अगर यह नहीं होता है तो यह काम का दोष नहीं है, यह दोष तुम्हारा है।

काम को काम नहीं रहना है, यही तंत्र की शिक्षा है। उसे प्रेम में रूपांतरित होना ही चाहिए। और प्रेम को भी प्रेम ही नहीं रहना है, उसे प्रकाश में, ध्यान के अनुभव में, अंतिम, परम रहस्यवादी शिखर में रूपांतरित होना चाहिए। प्रेम को रूपांतरित कैसे किया जाए ?

कृत्य हो जाओ और कर्ता को भूल जाओ। प्रेम करते हुए प्रेम, महज़ प्रेम हो जाओ। तब यह तुम्हारा प्रेम, मेरा प्रेम या किसी अन्य का प्रेम नहीं है। तब यह मात्र प्रेम है। जब कि तुम नहीं हो, जब कि तुम परम स्रोत या धारा के हाथ में हो। जब तुम प्रेम में हो तो तुम प्रेम में नहीं हो, प्रेम ने ही तुम्हें आत्मसात कर लिया है। तुम तो अंतर्धान हो गए हो। मात्र प्रवाहमान ऊर्जा बनकर रह गए हो।

इस युग का एक महान सृजनात्मक मनीषी, डी. एच. लारेंस, जाने-अनजाने

तंत्रविद था। पश्चिम में वह पूरी तरह निंदित हुआ। उसकी किताबें जब्त हुईं। उस पर अदालतों में अनेक मुकदमे चले, सिर्फ इसलिए कि उसने कहा कि काम-ऊर्जा ही एकमात्र ऊर्जा है और अगर तुम उसकी निंदा करते हो, उसका दमन करते हो, तो तुम जगत के खिलाफ हो। और तब तुम कभी भी इस ऊर्जा की परम खिलावट को नहीं जान पाओगे। और दमित होने पर यह कुरूप हो जाती है। और यही दुश्चक्र है।

पुरोहित, नीतिवादी, तथाकथित धार्मिक लोग, पोप, शंकराचार्य और दूसरे लोग काम की सतत निंदा करते हैं। वे कहते हैं कि यह एक कुरूप चीज है। और जब तुम इसका दमन करते हो तो यह सचमुच कुरूप हो जाती है। और तब वे कहते हैं कि देखो, जो हम कहते थे वह सच निकला। तुमने ही इसे सिद्ध कर दिया। तुम जो भी कर रहे हो वह कुरूप है, और तुम जानते हो कि वह कुरूप है।

लेकिन काम स्वयं में कुरूप नहीं है, पुरोहितों ने उसे कुरूप कर दिया है। और जब वे इसे कुरूप कर चुकते हैं तब वे सही साबित होते हैं। और जब वे सही साबित होते हैं तो तुम उसे कुरूप से कुरूपतर किए देते हो। काम तो निर्दोष ऊर्जा है; तुममें प्रवाहित होता जीवन है, जीवंत अस्तित्व है। उसे पंगु मत बनाओ। उसे उसके शिखरों की यात्रा करने दो। उसका अर्थ है कि काम को प्रेम बनना चाहिए। फर्क क्या है ?

जब तुम्हारा मन कामुक होता है तो तुम दूसरे का शोषण कर रहे हो। दूसरा मात्र एक यंत्र होता है जिसे इस्तेमाल करके फेंक देना है। और जब काम प्रेम बनता है तब दूसरा यंत्र नहीं होता, दूसरे को शोषण नहीं किया जाता, दूसरा सच में दूसरा नहीं होता। जब तुम प्रेम करते हो तो यह स्व-केंद्रित नहीं है; उस हालत में तो दूसरा ही महत्त्वपूर्ण होता है, अनूठा होता है। तब तुम एक-दूसरे का शोषण नहीं करते, तब दोनों एक गहरे अनुभव में सम्मिलित हो जाते हो, साझीदार हो जाते हो। तुम शोषक और शोषित न होकर एक-दूसरे को प्रेम की और ही दुनिया में यात्रा करने में सहायता करते हो। काम शोषण है, प्रेम एक भिन्न जगत में यात्रा है।

अगर यह यात्रा क्षणिक न रहे, अगर यह यात्रा ध्यानपूर्ण हो जाए, अर्थात अगर तुम अपने को बिलकुल भूल जाओ और प्रेमी-प्रेमिका विलीन हो जाएं और केवल प्रेम प्रवाहित होता रहे, तो शिव कहते हैं—'शाश्वत जीवन तुम्हारा है।'

इंद्रियों के द्वार बंद कर दो

शिथिल होने की दूसरी विधि :

11. जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब!

यह बहुत सरल दिखता है, लेकिन उतना सरल है नहीं। मैं इसे फिर पढ़ता हूं, 'जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब!' यह एक उदाहरण मात्र है। किसी भी चीज से काम चलेगा। इंद्रियों के द्वार बंद कर दो जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो। और तब—तब घटना घट जाएगी। शिव कह क्या रहे हैं ?

तुम्हारे पांव में कांटा गड़ा है, वह दर्द देता है, तुम तकलीफ में हो। या तुम्हारे पांव पर एक चींटी रेंग रही है। तुम्हें उसका रेंगना महसूस होता है, और तुम अचानक उसे हटाना चाहते हो। किसी भी अनुभव को ले सकते हो। तुम्हें घाव है जो दुखता है। तुम्हारे सिर में दर्द है, या कहीं शरीर में दर्द है। विषय के रूप में किसी से भी काम चलेगा। चींटी का रेंगना उदाहरण भर है।

शिव कहते हैं— 'जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो।'

जो भी अनुभव हो, इंद्रियों के सब द्वार बंद कर दो। करना क्या है ? आंखें बंद कर लो और यह सोचो कि मैं अंधा हूं और देख नहीं सकता। अपने कान बंद कर लो और सोचो की मैं सुन नहीं सकता। पांच इंद्रियां हैं, उन सबको बंद कर दो। लेकिन उन्हें बंद कैसे करोगे ?

यह आसान है। क्षणभर के लिए श्वास लेना बंद कर दो, और तुम्हारी सब इंद्रिया बंद हो जाएंगी। और जब श्वास रुकी है और इंद्रियां बंद हैं, तो रेंगना कहां है ? चींटी कहां है ? अचानक तुम दूर, बहुत दूर हो जाते हो।

मेरे एक मित्र हैं, वृद्ध हैं। वे एक बार सीढ़ी से गिर पड़े। और डाक्टरों ने कहा कि अब वे तीन महीनों तक खाट से नहीं हिल सकेंगे। तीन महीने विश्राम में रहना है। और वे बहुत अशांत व्यक्ति थे, पड़े रहना उनके लिए कठिन था। मैं उन्हें देखने गया। उन्होंने कहा कि मेरे लिए प्रार्थना करें और मुझे आशीष दें कि मैं मर जाऊं, क्योंकि तीन महीने पड़े रहना मौत से भी बदतर होगा। मैं पत्थर की तरह कैसे पड़ा रह सकता हूं ? और सब कहते हैं कि हिलिए मत।

मैंने उनसे कहा, यह अच्छा मौका है। आंखें बंद करें और सोचें कि मैं पत्थर हूं, मूर्तिवत। अब आप हिल नहीं सकते। आखिर कैसे हिलेंगे! आंखें बंद करें

और पत्थर की मूर्ति हो जाएं। उन्होंने पूछा कि उससे क्या होगा ? मैंने कहा कि प्रयोग तो करें। मैं यहां बैठा हूं। और कुछ किया भी नहीं जा सकता है। जैसे भी हो आपको यहां तीन महीने पड़े रहना है। इसलिए प्रयोग करें।

वैसे तो वे प्रयोग करने वाले जीव नहीं थे, लेकिन उनकी यह स्थिति ही इतनी असंभव थी कि उन्होंने कहा कि अच्छा मैं प्रयोग करूंगा, शायद कुछ हो। वैसे मुझे भरोसा नहीं आता कि सिर्फ यह सोचने से कि मैं पत्थरवत हूं, कुछ होने वाला है। लेकिन मैं प्रयोग करूंगा। और उन्होंने किया।

मुझे भी भरोसा नहीं था कि कुछ होने वाला है। क्योंकि वे आदमी ही ऐसे थे। लेकिन कभी-कभी जब तुम असंभव और निराश स्थिति में होते हो तो चीजें घटित होने लगती हैं। उन्होंने आंखें बंद कर लीं। मैं सोचता था कि दो-तीन मिनट में वे आंखें खोलेंगे और कहेंगे कि कुछ नहीं हुआ। लेकिन उन्होंने आंखें नहीं खोलीं। तीस मिनट गुजर गए। और मैं देख सका कि वे पत्थर हो गए हैं। उनके माथे पर के सभी तनाव विलीन हो गए। उनका चेहरा बदल गया। मुझे कहीं और जाना था, लेकिन वे आंखें बंद किए पड़े थे। और वे इतने शांत थे मानो मर गए थे। उनकी श्वास शांत हो चली थी। लेकिन क्योंकि मुझे जाना था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि अब आंखें खोलें और बताएं कि क्या हुआ।

उन्होंने जब आंखें खोलीं तब वे एक दूसरे ही आदमी थे। उन्होंने कहा, यह तो चमत्कार है। आपने मेरे साथ क्या कर दिया ? मैंने कहा, मैंने कुछ भी नहीं किया। उन्होंने फिर कहा कि आपने जरूर कुछ किया, क्योंकि यह तो चमत्कार है। जब मैंने सोचना शुरू किया कि मैं पत्थर जैसा हूं तो अचानक यह भाव आया कि यदि मैं अपने हाथ हिलाना भी चाहूं तो उन्हें हिलाना असंभव है। मैंने कई बार अपनी आंखें खोलनी चाही, लेकिन वे पत्थर जैसी हो गई थीं और नहीं खुलीं। और उन्होंने कहा, मैं चिंतित भी होने लगा कि आप क्या कहेंगे, इतनी देर हुई जाती है। लेकिन मैं असमर्थ था। मैं तीस मिनट तक हिल नहीं सका। और जब सब गति बंद हो गई तो अचानक संसार विलीन हो गया और मैं अकेला रह गया। अपने आप में गहरे चला गया। और उसके साथ दर्द भी जाता रहा।

उन्हें भारी दर्द था। रात को ट्रैंक्वेलाइजर के बिना उन्हें नींद नहीं आती थी। और वैसा दर्द चला गया। मैंने उनसे पूछा कि जब दर्द विलीन हो रहा था तो उन्हें कैसा अनुभव हुआ। उन्होंने बताया कि पहले तो लगा कि दर्द है, पर कहीं दूर पर है, किसी और को हो रहा है और तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे वह दूर और दूर जाने लगा और फिर लापता हो गया। कोई दस मिनट तक दर्द नहीं था।

पत्थर के शरीर को दर्द कैसे हो सकता है ?

यह विधि कहती है— 'इंद्रियों के द्वारा बंद कर दो।'

पत्थर की तरह हो जाओ। जब तुम सच में संसार के लिए बंद हो जाते हो तो तुम अपने शरीर के प्रति भी बंद हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारा शरीर तुम्हारा हिस्सा न होकर संसार का हिस्सा है। जब तुम संसार के प्रति बिलकुल बंद हो जाते हो तो अपने शरीर के प्रति भी बंद हो गए। और तब, शिव कहते हैं, तब घटना घटेगी।

इसलिए शरीर के साथ इसका प्रयोग करो। किसी भी चीज से काम चल जाएगा, रेंगती चींटी ही जरूरी नहीं है। नहीं तो तुम सोचोगे कि जब चींटी रेंगेगी तो ध्यान करेंगे। और ऐसी सहायता करने वाली चींटियां आसानी से नहीं मिलती हैं। इसलिए किसी से भी चलेगा। तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो और ठंडी चादर महसूस हो रही है, उसी क्षण मृत हो जाओ। अचानक चादर दूर होने लगेगी, विलीन हो जाएगी। तुम बंद हो, मृत हो, पत्थर जैसे हो, जिसमें कोई भी रंध्र नहीं है; तुम हिल नहीं सकते।

और जब तुम हिल नहीं सकते तो तुम अपने पर फेंक दिए जाते हो, अपने में केंद्रित हो जाते हो। और तब पहली बार तुम अपने केंद्र से देख सकते हो। और एक बार जब अपने केंद्र से देख लिया तो फिर तुम वही व्यक्ति नहीं रह जाओगे जो थे।

अपने को वजनशून्य हो जाने दो

शिथिल होने की तीसरी विधि :

12. जब किसी बिस्तर या आसन पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।

तुम यहां बैठे हो; बस भाव करो कि तुम वजनशून्य हो गए, तुम्हारा वजन न रहा। तुम्हें पहले लगेगा कि कहीं यहां-वहां वजन है। लेकिन वजनशून्य होने का भाव जारी रखो। वह आता है। एक क्षण आता है जब तुम समझोगे कि तुम वजनशून्य हो, वजन नहीं हो। और जब वजन नहीं रहा तो तुम शरीर नहीं रहे। क्योंकि वजन शरीर का है, तुम्हारा नहीं। तुम तो वजनशून्य हो।

इस संबंध में बहुत से प्रयोग किए गए हैं। कोई मरता है तो संसार में अनेक वैज्ञानिकों ने मरते हुए व्यक्ति का वजन लेने की कोशिश की है। अगर कुछ फर्क हुआ, अगर मरने के पूर्व ज्यादा वजन था और मरने के बाद कम वजन रहा तो वैज्ञानिक कह सकते हैं कि कुछ चीज शरीर से बाहर निकली है, कोई आत्मा या कुछ अब वहां नहीं है। क्योंकि विज्ञान के लिए कुछ भी बिना वजन के नहीं है।

सब पदार्थ के लिए वजन बुनियादी है। सूर्य की किरणों का भी वजन है। वह अत्यंत कम है, न्यून है, उसको मापना भी कठिन है; लेकिन वैज्ञानिकों ने उसे भी मापा है। अगर तुम पांच वर्ग मील के क्षेत्र पर फैली सब सूर्य-किरणों को इकट्ठा कर सको तो उनका वजन एक बाल के वजन के बराबर होगा। सूर्य-किरणों का भी वजन है, वे तौली गई हैं। विज्ञान के लिए कुछ भी वजन के बिना नहीं है। और अगर कोई चीज वजन के बिना है तो वह पदार्थ नहीं, अपदार्थ है। और विज्ञान पिछले बीस-पच्चीस वर्षों तक विश्वास करता था कि पदार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिए जब कोई मरता है और कोई चीज शरीर छोड़कर बाहर जाती है तो वजन में फर्क पड़ना चाहिए।

लेकिन यह फर्क कभी न पड़ा, वजन वही का वही रहा। कभी-कभी थोड़ा बढ़ा ही है। और वही समस्या है। जिंदा आदमी का वजन कम हुआ, मुर्दे का ज्यादा। उससे उलझन बढ़ी, क्योंकि वैज्ञानिक तो यह पता लेने चले थे कि क्या मरने पर वजन घटता है। तभी तो वे कह सकते हैं कि कुछ चीज बाहर गई। लेकिन यहां तो लगता है कि कुछ चीज अंदर ही आई। आखिर हुआ क्या ?

वजन पदार्थ का है, लेकिन तुम पदार्थ नहीं हो। अगर वजनशून्यता की इस विधि का प्रयोग करना है तो तुम्हें सोचना चाहिए; सोचना ही नहीं, भाव करना चाहिए कि तुम्हारा शरीर वजनशून्य हो गया है। अगर तुम भाव करते ही गए, भाव करते ही गए कि तुम वजनशून्य हो, तो एक क्षण आता है जब तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम वजनशून्य हो गए। तुम वजनशून्य हो ही, इसलिए तुम किसी समय भी अनुभव कर सकते हो। सिर्फ एक स्थिति पैदा करनी है जिसमें तुम फिर अनुभव करो कि तुम वजनशून्य हो। तुम्हें अपने को सम्मोहन-मुक्त करना है।

तुम्हारा सम्मोहन क्या है ? सम्मोहन यह है कि तुमने विश्वास किया है कि मैं शरीर हूं, और इसलिए वजन अनुभव करते हो। अगर तुम फिर से भाव करो, विश्वास करो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो तुम वजन अनुभव नहीं करोगे। यही सम्मोहन-मुक्ति है कि जब तुम वजन अनुभव नहीं करते तो तुम मन के पार चले गए।

शिव कहते हैं— 'जब किसी बिस्तर या आसन पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।' तब बात घट जाएगी।

मन का भी वजन है, प्रत्येक आदमी के मन का वजन है। एक समय कहा जाता था कि जितना वजनी मस्तिष्क हो उतना बुद्धिमान होता है। और आमतौर से यह बात सही है, लेकिन हमेशा सही नहीं है। क्योंकि कभी-कभी छोटे

मस्तिष्क के भी महान व्यक्ति हुए हैं और महामूर्ख मस्तिष्क भी वजनी हुए हैं। लेकिन सामान्यतया यह सच है कि जब तुम्हारे पास मन का बड़ा संयंत्र है तो तुम ज्यादा वजनी होते हो।

मन का भी वजन है। लेकिन चेतना वजनशून्य है। और इस चेतना को अनुभव करने के लिए तुम्हें वजनशून्य अनुभव करना होगा। इसलिए प्रयोग करो। चलते हुए, बैठे हुए, सोए हुए प्रयोग करो।

कुछ बातें। कभी-कभी मुर्दों का वजन क्यों बढ़ जाता है ? ज्यों ही चेतना शरीर को छोड़ती है कि शरीर असुरक्षित हो जाता है, बहुत-सी चीजें उसमें प्रवेश कर जा सकती हैं। तुम्हारे कारण वे शरीर में प्रवेश नहीं करती थीं। एक शव में अनेक तरंगें प्रवेश कर सकती हैं, तुममें नहीं कर सकतीं। तुम वहां थे, शरीर जीवित था, वह अनेक चीजों से बचाव कर सकता था। यही कारण है कि तुम एक बार बीमार पड़े कि यह एक लंबा सिलसिला हो जाता है। एक के बाद दूसरी बीमारी आती चली जाती है। एक बार बीमार होकर तुम अरक्षित हो जाते हो, हमले के प्रति खुल जाते हो; प्रतिरोध जाता रहता है। तब कुछ भी प्रवेश कर सकता है। तुम्हारी उपस्थिति शरीर की रक्षा करती है। इसलिए कभी-कभी मृत शरीर का वजन बढ़ सकता है। क्योंकि जिस क्षण तुम उससे हटते हो, उसमें कुछ भी प्रवेश कर सकता है।

दूसरी बात है कि जब तुम सुखी होते हो तो तुम वजनशून्य अनुभव करते हो। और दुखी होकर वजनी अनुभव करते हो। लगता है कि कुछ तुम्हें नीचे को खींच रहा है। तब गुरुत्वाकर्षण बहुत बढ़ जाता है। दुख की हालत में वजन बढ़ जाता है। जब तुम सुखी हो तो हलके होते हो; तुम ऐसा अनुभव करते हो। क्यों ? क्योंकि जब तुम सुखी हो, जब तुम आनंद का क्षण अनुभव करते हो, तो तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। और जब उदास, दुखी, विपन्न हो तो शरीर को नहीं भूल सकते; तुम उसका भार अनुभव करते हो। वह तुम्हें नीचे खींचता है। जमीन की तरफ खींचता है, मानो तुम जमीन में गड़े हो। सुख में तुम निर्भार होते हो; शोक में, विषाद में वजनी हो जाते हो।

इसलिए गहरे ध्यान में, जब तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो, तुम जमीन से ऊपर हवा में उठ सकते हो। तुम्हारे साथ तुम्हारा शरीर भी ऊपर उठ सकता है। कई बार ऐसा होता है।

बोलीविया में वैज्ञानिक एक स्त्री का निरीक्षण कर रहे हैं। ध्यान करते हुए वह जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाती है। अब तो यह वैज्ञानिक निरीक्षण की बात है। उसके अनेक फोटो और फिल्म लिए जा चुके हैं। हजारों दर्शकों

के सामने वह स्त्री अचानक ऊपर उठ जाती है। उसके लिए गुरुत्वाकर्षण व्यर्थ हो जाता है। अब तक इस बात की सही व्याख्या नहीं की जा सकी है कि क्यों होता है। लेकिन वही स्त्री गैर-ध्यान की अवस्था में ऊपर नहीं उठ सकती। या अगर उसके ध्यान में बाधा हो जाए तो भी वह ऊपर से झट नीचे आ जाती है। क्या होता है ?

ध्यान की गहराई में तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो और तादात्म्य टूट जाता है। शरीर बहुत छोटी चीज है और तुम बहुत बड़े हो। तुम्हारी शक्ति अपरिसीम है। तुम्हारे मुकाबले में शरीर कुछ भी नहीं है। यह तो ऐसा ही है कि जैसे एक सम्राट ने अपने गुलाम के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इसलिए जैसे गुलाम भीख मांगता है, वैसे ही सम्राट भी भीख मांगता है। जैसे गुलाम रोता है, वैसे ही सम्राट भी रोता है। और जब गुलाम कहता है कि मैं ना-कुछ हूं तो सम्राट भी कहता है कि मैं ना-कुछ हूं। लेकिन एक बार सम्राट अपने अस्तित्व को पहचान ले, पहचान ले कि वह सम्राट है और गुलाम बस गुलाम है, सब कुछ बदल जाएगा। अचानक बदल जाएगा।

तुम वह अपरिसीम शक्ति हो जो क्षुद्र शरीर से एकात्म हो गई है। एक बार यह पहचान हो जाए, तुम अपने स्व को जान लो, तो तुम्हारी वजनशून्यता बढ़ेगी और शरीर का वजन घटेगा। तब तुम हवा में उठ सकते हो, शरीर ऊपर जा सकता है।

ऐसी अनेक घटनाएं हैं जो अभी साबित नहीं की जा सकी हैं। लेकिन वे साबित होंगी। क्योंकि जब एक स्त्री चार फीट ऊपर उठ सकती है तो फिर बाधा नहीं है, दूसरा हजार फीट ऊपर उठ सकता है, तीसरा अनंत अंतरिक्ष में पूरी तरह जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से यह कोई समस्या नहीं है। चार फीट ऊपर उठे कि चार सौ फीट कि चार हजार फीट, इससे क्या फर्क पड़ता है।

राम तथा कई अन्य के बारे में कथाएं हैं कि वे सशरीर विलीन हो गए थे। उनके मृत, शरीर इस धरती पर कहीं नहीं पाए गए। मोहम्मद बिलकुल विलीन हो गए थे, सशरीर ही नहीं, अपने घोड़े के भी साथ। ये कहानियां असंभव मालूम पड़ती हैं। पौराणिक मालूम पड़ती हैं, लेकिन जरूरी नहीं है कि वे मिथक ही हों। एक बार तुम वजनशून्य शक्ति को जान जाओ तो तुम गुरुत्वाकर्षण के मालिक हो गए। तुम उसका उपयोग भी कर सकते हो, यह तुम पर निर्भर है। तुम सशरीर अंतरिक्ष में विलीन हो सकते हो।

लेकिन हमारे लिए वजनशून्यता समस्या रहेगी। सिद्धासन की विधि, जिसमें बुद्ध बैठते हैं, वजनशून्य होने की सर्वोत्तम विधि है। जमीन पर बैठो, किसी

कुर्सी या अन्य आसन पर नहीं। मात्र जमीन पर बैठो। अच्छा हो कि उस पर सीमेंट या कोई और कृत्रिमता नहीं हो। जमीन पर बैठो कि तुम प्रकृति के निकटतम रहो। और अच्छा हो कि तुम नंगे बैठो, जमीन पर नंगे बैठो—बुद्धासन में, सिद्धासन में।

वजनशून्य होने के लिए सिद्धासन सर्वश्रेष्ठ आसन है। क्यों ? क्योंकि जब तुम्हारा शरीर इधर-उधर झुका होता है तो तुम ज्यादा वजन अनुभव करते हो। तब तुम्हारे शरीर को गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होने के लिए ज्यादा क्षेत्र है। यदि मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं तो मेरे शरीर का बड़ा क्षेत्र गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होता है। जब तुम खड़े हो तो प्रभाव-क्षेत्र कम हो जाता है। लेकिन बहुत देर तक खड़ा नहीं रहा जा सकता। महावीर सदा खड़े-खड़े ध्यान करते थे, क्योंकि उस हालत में शरीर गुरुत्वाकर्षण का न्यूनतम क्षेत्र घेरता है। तुम्हारे पैर भर जमीन को छूते हैं। जब तुम पांव पर खड़े हो तो गुरुत्वाकर्षण तुम पर न्यूनतम प्रभाव करता है। और गुरुत्वाकर्षण ही वजन है।

पांवों और हाथों को बांधकर सिद्धासन में बैठना ज्यादा कारगर होता है, क्योंकि तब तुम्हारी आंतरिक विद्युत एक वर्तुल बन जाती है। रीढ़ सीधी रखो। अब तुम समझ सकते हो कि सीधी रीढ़ रखने पर इतना जोर क्यों दिया जाता है। क्योंकि सीधी रीढ़ से कम-से-कम जगह घेरी जाती है। तब गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव कम रहता है। आंखें बंद रखते हुए अपने को पूरी तरह संतुलित कर लो, अपने को केंद्रित कर लो। पहले दाईं ओर झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो, फिर बाईं ओर झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो, आगे को झुककर भी गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो। तब उस केंद्र को खोजो जहां गुरुत्वाकर्षण या वजन कम-से-कम अनुभव होता है। और उस स्थिति में थिर हो जाओ।

और तब शरीर को भूल जाओ और भाव करो कि तुम वजन नहीं हो, तुम वजनशून्य हो। फिर इस वजनशून्यता का अनुभव करते रहो। अचानक तुम वजनशून्य हो जाते हो; अचानक तुम शरीर नहीं रह जाते हो; अचानक तुम शरीरशून्यता के एक दूसरे ही संसार में होते हो।

वजनशून्यता शरीरशून्यता है। तब तुम मन का भी अतिक्रमण कर जाते हो। मन भी शरीर का हिस्सा है, पदार्थ का हिस्सा है। पदार्थ का वजन होता है, तुम्हारा कोई वजन नहीं है। इस विधि का यही आधार है।

किसी भी एक विधि को प्रयोग में लाओ। लेकिन कुछ दिनों तक उसमें लगे रहो, ताकि तुम्हें पता हो कि वह तुम्हारे लिए कारगर है या नहीं।

आज इतना ही।

8

तांत्रिक शुद्धि का आधार अभेद है

प्रश्न-सार

1. शुद्धि से तंत्र का अभिप्राय क्या है ?

एक बात अक्सर पूछी जाती है :

तंत्र का क्या मतलब है जब वह कहता है कि प्रगति के लिए मन का शुद्धिकरण, चित्त की शुद्धि बुनियादी शर्त है ?

सामान्यतः शुद्धि का जो अर्थ लिया जाता है वही तंत्र का अर्थ नहीं है। सामान्यतः हम हर चीज को शुभ और अशुभ में, भले और बुरे में बांटते हैं। यह विभाजन किसी भी कारण से हो सकता है; यह स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से भी हो सकता है, नैतिक दृष्टि से भी हो सकता है, या किसी भी तरह हो सकता है। लेकिन हम जीवन को शुभ और अशुभ में बांट देते हैं। और जब भी हम शुद्धि का नाम लेते हैं तो उससे शुभ का ही मतलब निकालते हैं। हम चाहते हैं कि अच्छे गुणों को तो रहना चाहिए और बुरे गुणों को जाना चाहिए।

लेकिन तंत्र के लिए शुभाशुभ का यह विभाजन कोई अर्थ नहीं रखता है। तंत्र जीवन को किसी द्वंद्व या विभाजन की दृष्टि से नहीं देखता है। इसलिए यह प्रश्न बहुत प्रासंगिक है कि तंत्र के लिए शुद्धि का, शुचिता का क्या अर्थ है।

अगर तुम किसी साधु-महात्मा से पूछो तो वह कहेगा कि क्रोध बुरा है, कामवासना बुरी है, लोभ बुरा है। और अगर गुरजिएफ से पूछो तो वह कहेगा कि नकारात्मकता बुरी है, जो भी निषेध भाव है वे बुरे हैं और विधेय भाव शुभ हैं। तुम जैन, बौद्ध, हिंदू, ईसाई या मुसलमान से पूछो; उनकी शुभाशुभ की परिभाषाएं अलग-अलग हो सकती हैं, लेकिन उन सबकी परिभाषाएं हैं। वे कुछ चीजों को अशुभ कहते हैं और कुछ चीजों को शुभ। इसलिए उनके लिए शुद्धता

की परिभाषा करना कठिन नहीं है। जिसे वे शुभ मानते हैं वह उनके लिए शुद्ध है और जिसे वह अशुभ मानते हैं वह अशुद्ध है।

लेकिन तंत्र के लिए यह एक गंभीर समस्या है। तंत्र शुभ और अशुभ के बीच सतही विभाजन नहीं करता है। तब शुद्धता क्या है ? पवित्रता क्या है?

तंत्र कहता है— बांटना ही अशुद्धि है और विभाजन में जीना शुद्धि है, शुचिता है।

एक बच्चा है, तुम उसे शुद्ध कहते हो। वह क्रोधित होता है, उसे लोभ पकड़ता है, फिर उसे शुद्ध क्यों कहते हो ? बचपन में शुद्ध क्या है ? उसकी निर्दोषता शुद्ध है। बच्चे के मन में विभाजन नहीं है। बच्चा यह विभाजन जानता ही नहीं है कि क्या शुभ है और क्या अशुभ है। उसका वह अबोध ही निर्दोषता है। अगर वह क्रोध भी करता है तो भी उसके पास क्रोध करने का मन नहीं है। उसका क्रोध करना शुद्ध और सरल कृत्य है। वह कृत्य मात्र घटित होता है। और जब क्रोध चला जाता है तो चला जाता है; कुछ भी पीछे नहीं छूट रहता है। बच्चा फिर वही का वही हो जाता है, मानो क्रोध कभी आया ही नहीं था। उसकी शुद्धता अछूती रहती है, पवित्रता वही की वही रहती है। बच्चा इसलिए पवित्र है कि उसके पास मन नहीं है।

ज्यों-ज्यों मन बड़ा होगा त्यों-त्यों बच्चा अशुद्ध होता जाएगा। तब क्रोध विचार के साथ आएगा, वह सहज-स्फूर्त नहीं होगा। तब कभी-कभी बच्चा अपने मन का दमन भी करेगा, जब स्थिति क्रोध करने की इजाजत नहीं देगी। और जब क्रोध का दमन होता है तब वह क्रोध अपने को दूसरी स्थिति में, दूसरे ढंग से प्रकट करेगा। तब वह उस स्थिति में भी क्रोध करेगा जब क्रोध करने की जरूरत नहीं होगी। क्योंकि दमित क्रोध को कोई निकास चाहिए। और तब सब कुछ अशुद्ध हो जाएगा, क्योंकि मन प्रविष्ट हो गया।

एक बच्चा हमारी नजर में चोर हो सकता है, लेकिन वह खुद कभी भी चोर नहीं है। क्योंकि उसके मन में अभी यह खयाल ही नहीं है कि चीजें व्यक्तियों की निजी संपत्ति हैं। अगर वह तुम्हारी घड़ी या रुपया या कुछ भी ले लेता है तो यह उसके लिए चोरी नहीं है, क्योंकि यह भाव ही कि चीजें दूसरों की हैं वहां नहीं है। इसलिए उसकी चोरी भी शुद्ध है। जब कि तुम्हारी गैर-चोरी भी शुद्ध नहीं है। तुम्हारे साथ मन है।

तंत्र कहता है कि जब कोई फिर से शिशुवत हो जाता है तब वह शुद्ध है। बेशक वह बच्चा नहीं है, वह बच्चे जैसा है। दोनों में फर्क भी है और समानता भी। समानता है फिर से उपलब्ध निर्दोषता में, फिर से कोई बच्चे के

समान हो गया है।

बच्चा नग्न खड़ा है; किसी को उसकी नग्नता महसूस नहीं होती, खटकती नहीं। क्यों ? क्योंकि बच्चे को अभी अपने शरीर का बोध नहीं है। उसकी नग्नता का गुणधर्म तुम्हारी नग्नता के गुणधर्म से भिन्न है। तुम्हें अपने शरीर का बोध है।

संत को यही निर्दोषता पुनः प्राप्त करनी है। महावीर फिर नग्न खड़े हो जाते हैं। इस नग्नता में फिर उसी निर्दोषता का गुणधर्म आ गया। वे अपने शरीर को भूल गए हैं, वे अब शरीर नहीं हैं। लेकिन शिशु और संत में फर्क भी साथ-साथ है। और फर्क बड़ा है। बच्चा महज अज्ञान में है, इसलिए निर्दोष है। लेकिन संत ज्ञानवान है, और वही उसकी निर्दोषता का कारण है। बच्चा एक दिन अपने शरीर के प्रति बोध से भरेगा और तब उसे उसकी नग्नता का एहसास होगा। तब वह उसे छिपाना चाहेगा, तब वह अपराधी अनुभव करेगा और शरमाएगा। वह बोध को प्राप्त करेगा। इसलिए उसकी निर्दोषता अज्ञान की निर्दोषता है। ज्ञान उसे नष्ट कर देने वाला है।

बाइबिल में जो आदम और ईव के अदन के बाग से निकाले जाने की कथा है उसका अर्थ यही है। वे बच्चों की भांति नग्न थे। उन्हें शरीर का बोध नहीं था, उन्हें क्रोध, लोभ, कामवासना या किसी चीज का बोध नहीं था। वे अबोध थे और बच्चों जैसे निर्दोष थे, पवित्र थे। लेकिन ईश्वर ने उन्हें ज्ञान के वृक्ष का फल खाने से मना कर दिया । ज्ञान का वृक्ष निषिद्ध था, लेकिन उन्होंने फल खाया। क्योंकि निषेध में निमंत्रण होता है, निषिद्ध वस्तु आकर्षक हो जाती है। वे एक बहुत बड़े बाग में रहते थे जिसमें अनंत वृक्ष थे। लेकिन ज्ञान का वृक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया, क्योंकि उसका निषेध किया गया था। सच तो यह है कि यह निषेध ही आकर्षण बन गया, निमंत्रण बन गया। मानो उस एक वृक्ष ने उन्हें सम्मोहित करके अपनी ओर खींच लिया। वे बच नहीं सके, उन्हें उसका फल खाना पड़ा।

लेकिन यह कथा सुंदर है, क्योंकि वृक्ष का नाम ज्ञान का वृक्ष है। जिस क्षण उन्होंने ज्ञान का फल खाया, वे गैर-निर्दोष हो गए। वे बोधपूर्ण हो गए और वे समझ गए कि हम नंगे हैं। फिर तुरंत ईव ने अपने शरीर को छिपाने की कोशिश की। और शरीर के बोध के साथ-साथ वे सबके प्रति—क्रोध, काम, लोभ—सबके प्रति बोधपूर्ण हो गए। वे वयस्क हो गए और इसलिए उन्हें स्वर्ग के बगीचे से निष्कासित किया गया।

इसलिए बाइबिल में ज्ञान ही पाप है। ज्ञान के कारण उन्हें बगीचे से निकाल

बाहर किया गया, उन्हें दंडित किया गया। और जब तक वे फिर से बच्चे की भांति निर्दोष, अबोध नहीं हो जाते तब तक उन्हें फिर से बगीचे में प्रवेश नहीं मिलेगा। वे परमात्मा के राज्य में तभी पुनः प्रवेश पाएंगे जब वे फिर निर्दोष हो जाएंगे।

यह पूरी कथा मनुष्यता की कथा है। न सिर्फ आदम और ईव अदन के बाग से निकाले गए थे, प्रत्येक बच्चे को वहां से निकाला जाता है। प्रत्येक बच्चा अपना बचपन निर्दोषता में बिताता है, वह कुछ भी नहीं जानता है। वह शुद्ध है। लेकिन वह शुद्धता अज्ञान की शुद्धता है, वह सदा नहीं चलेगी। और जब तक वह विवेक की शुद्धता नहीं बनती तब तक तुम उसका भरोसा नहीं कर सकते। उस शुद्धता को तो जाना ही होगा, देर-अबेर तुम्हें ज्ञान का फल खाना ही होगा।

अदन के बाग में तो बात आसान थी, वहां वृक्ष था। यहां वृक्ष की जगह स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय हैं। और हरेक बच्चे को उनसे गुजरना होगा, उन्हें गैर-निर्दोष होना होगा, निर्दोषता खोनी होगी। संसार में ज्ञान जरूरी है, अस्तित्व के लिए ज्ञान की जरूरत है। यहां तुम ज्ञान के बिना नहीं जी सकते हो। और ज्यों ही ज्ञान आया कि विभाजन आया। तुम यह विभाजन करते हो कि क्या शुभ है और क्या शुभ नहीं है।

तो तंत्र के लिए यह शुभाशुभ का विभाजन ही अशुद्धि है। इसके पहले तुम शुद्ध हो, इसके बाद भी तुम शुद्ध हो; इसमें ही अशुद्ध हो। लेकिन ज्ञान एक आवश्यक बुराई है, तुम इससे बच नहीं सकते। सबको इससे गुजरना होता है, वह जीवन का हिस्सा है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इसमें सदा-सर्वदा रहा जाए। तुम उसका अतिक्रमण कर सकते हो। और यह अतिक्रमण तुम्हें फिर से निर्दोष और पवित्र कर देगा। अगर विभाजन व्यर्थ हो जाए, अगर शुभाशुभ का भेद करने वाला ज्ञान जाता रहे तो तुम पुनः एक निर्दोष दृष्टि से संसार को देखने में समर्थ हो जाओगे।

जीसस ने कहा है— जब तक तुम बच्चे जैसे नहीं हो जाते तुम हमारे प्रभु के राज्य में नहीं प्रवेश पा सकोगे।

जब तक तुम बच्चे जैसे नहीं हो जाते! यही तंत्र की शुद्धता है।

लाओत्सु कहता है— एक इंच का विभाजन और स्वर्ग और नरक अलग-अलग हो जाते हैं।

अविभाजन, बिलकुल अविभाजन संत के मन का लक्षण है। संत नहीं जानता है कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है। वह बच्चे जैसा है। लेकिन वह बच्चे से

समान हो गया है।

बच्चा नग्न खड़ा है; किसी को उसकी नग्नता महसूस नहीं होती, खटकती नहीं। क्यों ? क्योंकि बच्चे को अभी अपने शरीर का बोध नहीं है। उसकी नग्नता का गुणधर्म तुम्हारी नग्नता के गुणधर्म से भिन्न है। तुम्हें अपने शरीर का बोध है।

संत को यही निर्दोषता पुनः प्राप्त करनी है। महावीर फिर नग्न खड़े हो जाते हैं। इस नग्नता में फिर उसी निर्दोषता का गुणधर्म आ गया। वे अपने शरीर को भूल गए हैं, वे अब शरीर नहीं हैं। लेकिन शिशु और संत में फर्क भी साथ-साथ है। और फर्क बड़ा है। बच्चा महज अज्ञान में है, इसलिए निर्दोष है। लेकिन संत ज्ञानवान है, और वही उसकी निर्दोषता का कारण है। बच्चा एक दिन अपने शरीर के प्रति बोध से भरेगा और तब उसे उसकी नग्नता का एहसास होगा। तब वह उसे छिपाना चाहेगा, तब वह अपराधी अनुभव करेगा और शरमाएगा। वह बोध को प्राप्त करेगा। इसलिए उसकी निर्दोषता अज्ञान की निर्दोषता है। ज्ञान उसे नष्ट कर देने वाला है।

बाइबिल में जो आदम और ईव के अदन के बाग से निकाले जाने की कथा है उसका अर्थ यही है। वे बच्चों की भांति नग्न थे। उन्हें शरीर का बोध नहीं था, उन्हें क्रोध, लोभ, कामवासना या किसी चीज का बोध नहीं था। वे अबोध थे और बच्चों जैसे निर्दोष थे, पवित्र थे। लेकिन ईश्वर ने उन्हें ज्ञान के वृक्ष का फल खाने से मना कर दिया । ज्ञान का वृक्ष निषिद्ध था, लेकिन उन्होंने फल खाया। क्योंकि निषेध में निमंत्रण होता है, निषिद्ध वस्तु आकर्षक हो जाती है। वे एक बहुत बड़े बाग में रहते थे जिसमें अनंत वृक्ष थे। लेकिन ज्ञान का वृक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया, क्योंकि उसका निषेध किया गया था। सच तो यह है कि यह निषेध ही आकर्षण बन गया, निमंत्रण बन गया। मानो उस एक वृक्ष ने उन्हें सम्मोहित करके अपनी ओर खींच लिया। वे बच नहीं सके, उन्हें उसका फल खाना पड़ा।

लेकिन यह कथा सुंदर है, क्योंकि वृक्ष का नाम ज्ञान का वृक्ष है। जिस क्षण उन्होंने ज्ञान का फल खाया, वे गैर-निर्दोष हो गए। वे बोधपूर्ण हो गए और वे समझ गए कि हम नंगे हैं। फिर तुरंत ईव ने अपने शरीर को छिपाने की कोशिश की। और शरीर के बोध के साथ-साथ वे सबके प्रति—क्रोध, काम, लोभ—सबके प्रति बोधपूर्ण हो गए। वे वयस्क हो गए और इसलिए उन्हें स्वर्ग के बगीचे से निष्कासित किया गया।

इसलिए बाइबिल में ज्ञान ही पाप है। ज्ञान के कारण उन्हें बगीचे से निकाल

बाहर किया गया, उन्हें दंडित किया गया। और जब तक वे फिर से बच्चे की भांति निर्दोष, अबोध नहीं हो जाते तब तक उन्हें फिर से बगीचे में प्रवेश नहीं मिलेगा। वे परमात्मा के राज्य में तभी पुनः प्रवेश पाएंगे जब वे फिर निर्दोष हो जाएंगे।

यह पूरी कथा मनुष्यता की कथा है। न सिर्फ आदम और ईव अदन के बाग से निकाले गए थे, प्रत्येक बच्चे को वहां से निकाला जाता है। प्रत्येक बच्चा अपना बचपन निर्दोषता में बिताता है, वह कुछ भी नहीं जानता है। वह शुद्ध है। लेकिन वह शुद्धता अज्ञान की शुद्धता है, वह सदा नहीं चलेगी। और जब तक वह विवेक की शुद्धता नहीं बनती तब तक तुम उसका भरोसा नहीं कर सकते। उस शुद्धता को तो जाना ही होगा, देर-अबेर तुम्हें ज्ञान का फल खाना ही होगा।

अदन के बाग में तो बात आसान थी, वहां वृक्ष था। यहां वृक्ष की जगह स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय हैं। और हरेक बच्चे को उनसे गुजरना होगा, उन्हें गैर-निर्दोष होना होगा, निर्दोषता खोनी होगी। संसार में ज्ञान जरूरी है, अस्तित्व के लिए ज्ञान की जरूरत है। यहां तुम ज्ञान के बिना नहीं जी सकते हो। और ज्यों ही ज्ञान आया कि विभाजन आया। तुम यह विभाजन करते हो कि क्या शुभ है और क्या शुभ नहीं है।

तो तंत्र के लिए यह शुभाशुभ का विभाजन ही अशुद्धि है। इसके पहले तुम शुद्ध हो, इसके बाद भी तुम शुद्ध हो; इसमें ही अशुद्ध हो। लेकिन ज्ञान एक आवश्यक बुराई है, तुम इससे बच नहीं सकते। सबको इससे गुजरना होता है, वह जीवन का हिस्सा है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इसमें सदा-सर्वदा रहा जाए। तुम उसका अतिक्रमण कर सकते हो। और यह अतिक्रमण तुम्हें फिर से निर्दोष और पवित्र कर देगा। अगर विभाजन व्यर्थ हो जाए, अगर शुभाशुभ का भेद करने वाला ज्ञान जाता रहे तो तुम पुनः एक निर्दोष दृष्टि से संसार को देखने में समर्थ हो जाओगे।

जीसस ने कहा है— जब तक तुम बच्चे जैसे नहीं हो जाते तुम हमारे प्रभु के राज्य में नहीं प्रवेश पा सकोगे।

जब तक तुम बच्चे जैसे नहीं हो जाते! यही तंत्र की शुद्धता है।

लाओत्सु कहता है— एक इंच का विभाजन और स्वर्ग और नरक अलग-अलग हो जाते हैं।

अविभाजन, बिलकुल अविभाजन संत के मन का लक्षण है। संत नहीं जानता है कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है। वह बच्चे जैसा है। लेकिन वह बच्चे से

भिन्न भी है, क्योंकि उसने विभाजन जाना है। वह इस विभाजन से होकर गुजरा है। और उसने इसका अतिक्रमण किया है, इसके पार गया है। उसने अंधेरे और उजाले को जाना है और अब उनके पार चला गया है। अब वह अंधेरे को उजाले के अंग की तरह देखता है और उजाले को अंधेरे के अंग की तरह। अब उसके लिए उनमें कोई विभाजन नहीं है। प्रकाश और अंधकार एक हो गए हैं—एक ही तत्त्व की घटती-बढ़ती मात्राएं हैं। अब वह हरेक चीज को एक ही तत्त्व के कमोबेश परिमाण की भांति देखता है। वे कितने ही एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत मालूम पड़ें, पर वे दो नहीं हैं। जीवन और मृत्यु, प्रेम और घृणा, शुभ और अशुभ, सब कुछ एक तत्त्व के, एक ऊर्जा के अंग हैं। अंतर परिमाण का है, अंश का है, मात्रा का है, और उन्हें कभी अलग-अलग नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता है कि इस बिंदु से विभाजन शुरू होता है। विभाजन है ही नहीं।

शुभ क्या है ? अशुभ क्या है ? कहां से तुम उन्हें अलग-अलग करके बांटोगे, परिभाषित करोगे ? वे सदा एक हैं, एक ही चीज के अलग-अलग परिमाण हैं। और जब यह एक बार जान और समझ लिया गया तो तुम्हारा मन शुद्ध हो गया। तंत्र की शुद्धि का यही अर्थ है। इसलिए मैं तांत्रिक शुद्धि को निर्दोषता कहूंगा, अच्छाई नहीं।

लेकिन निर्दोषता अज्ञानपूर्ण हो सकती है। तब वह किसी काम की नहीं होती। उस निर्दोषता को तो विदा देनी होगी, तुम्हें उसके बाहर जाना होगा। अन्यथा तुम प्रौढ़ नहीं हो सकोगे। ज्ञान का अर्जन और फिर ज्ञान का अतिक्रमण, दोनों जरूरी हैं, दोनों प्रौढ़ता के अंग हैं, सच में वयस्क होने के हिस्से हैं। इसलिए उनसे गुजरो जरूर, लेकिन उनसे बंधे मत रहो। आगे बढ़ते जाओ। और तब एक दिन आता है जब तुम सच में उनके पार निकल जाते हो।

यही वजह है कि तांत्रिक शुद्धि को समझना कठिन है। उसे गलत समझा जा सकता है, वह इतनी नाजुक है। इसलिए किसी तांत्रिक संत को पहचानना करीब-करीब असंभव है। साधारण साधु-संतों को पहचानना आसान है, क्योंकि वे तुम्हारा अनुगमन करते हैं, तुम्हारे मानकों का, तुम्हारी परिभाषाओं का, तुम्हारी नैतिकता का अनुगमन करते हैं। तांत्रिक संत को पहचानना कठिन है, क्योंकि वह सब विभाजनों का अतिक्रमण कर जाता है। इसलिए मनुष्य के विकास के पूरे इतिहास में तांत्रिक संतों के बारे में हम कुछ भी नहीं जान पाए। उन्हें पहचानना इतना कठिन है कि उनके बारे में उल्लेख नहीं हो सका।

कनफ्यूसियस लाओत्सु के पास गया। लाओत्सु का चित्त तांत्रिक ढंग से

संबुद्ध संत का चित्त है। तंत्र शब्द का भी लाओत्सु को पता नहीं था, उसके लिए शब्द ही निरर्थक है। वह तंत्र के संबंध में कुछ नहीं जानता था, लेकिन उसने जो कुछ कहा है वह तंत्र है। कनफ्यूसियस हमारे चित्त का प्रतिनिधि है, महाप्रतिनिधि है। वह सदा शुभ और अशुभ की भाषा में सोचता है; सोचता है कि क्या करने योग्य है और क्या नहीं करने योग्य है। कनफ्यूसियस विधिवादी है, सबसे बड़ा विधिवादी। वह लाओत्सु के पास गया और उससे पूछा, शुभ क्या है ? करने योग्य क्या है ? अशुभ क्या है ? कृपा करें और इनकी स्पष्ट परिभाषा करें।

लाओत्सु ने कहा कि परिभाषाएं सब गुड़-गोबर किए देती हैं, क्योंकि परिभाषा का अर्थ है बांटना, कि यह यह है और वह वह है। तुम बांटकर कहते हो कि अ अ है ब ब है। तुम बांटते हो और कहते हो कि अ ब नहीं हो सकता है। तब भेद पैदा हो गया, द्वंद्व निर्मित हो गया। और अस्तित्व एक है। अ सतत ब हो रहा है, अ निरंतर ब में प्रवेश कर रहा है। जीवन सतत मृत्यु बन रहा है, जीवन निरंतर मृत्यु में प्रवेश कर रहा है। इस हालत में तुम परिभाषा कैसे करोगे ? बचपन जवानी में प्रवेश कर रहा है और जवानी बुढ़ापे में गति कर रही है। स्वास्थ्य रोग में गति कर रहा है और रोग स्वास्थ्य में। इस हालत में तुम उनके बीच विभाजन रेखा कैसे खींचोगे ?

जीवन एक प्रवाह है। और जब तुम उसकी परिभाषा करते हो, तुम सब गड्ड-मड्ड कर देते हो। क्योंकि परिभाषाएं मृत होती हैं और जीवन एक जीवंत प्रवाह है। इसलिए परिभाषाएं सदा गलत होती हैं। लाओत्सु कहता है, परिभाषा असत्य को जन्म देती है। इसलिए परिभाषा मत करो। मत कहो कि क्या शुभ है और क्या अशुभ।

कनफ्यूसियस ने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं! तब लोगों का मार्ग-दर्शन कैसे होगा ? तब उनका शिक्षण कैसे होगा ? वे नैतिक और शुभ कैसे बनेंगे ? लाओत्सु ने कहा, मेरी दृष्टि में यही पाप है कि कोई किसी दूसरे को अच्छा बनाने की कोशिश करे। तुम मार्ग-दर्शन करने वाले कौन हो ? तुम राह दिखाने वाले कौन हो ? जितने ही मार्ग-दर्शक होंगे उतनी ही उलझन बढ़ेगी। हर आदमी को अपने ऊपर छोड़ दो। तुम कौन होते हो ?

यह दृष्टि खतरनाक मालूम होती है। है ही। ऐसी दृष्टि पर समाज नहीं खड़ा किया जा सकता। कनफ्यूसियस यही पूछे जाता है। और लाओत्सु की पूरी बात यह है कि प्रकृति, स्वभाव पर्याप्त है। नैतिकता की जरूरत क्या है ? स्वभाव सहज है, स्वभाव पर्याप्त है। आरोपित नियम और अनुशासन जरूरी

नहीं है। निर्दोषता, सरलता काफी है। नैतिकता अनावश्यक है। स्वभाव सहज है, स्वभाव पर्याप्त है। ऊपर से लादे गए नियम-निषेध कतई जरूरी नहीं हैं। निर्दोषता काफी है। ज्ञान की भी क्या जरूरत है ?

कनफ्यूसियस बहुत घबराया हुआ वापस आया। रातों उसे नींद नहीं आयी। और उसके शिष्य पूछते थे कि हमें उसके साथ हुई मुलाकात के संबंध में कुछ कहिए कि क्या हुआ ? कनफ्यूसियस ने कहा कि वह आदमी नहीं है, वह एक खतरा है। एक सिंह है। वह मनुष्य नहीं है। जहां वह रहता है उधर कभी मत जाना। जहां लाओत्सु का नाम सुनो वहीं से खिसक जाओ। वह तुम्हारे मन को पूरी तरह हिलाकर छोड़ेगा।

और यह बात सही है। क्योंकि पूरा तंत्र इस बात के लिए है कि मन का कैसे अतिक्रमण किया जाए। तंत्र मन को विनष्ट करने के लिए ही है। मन परिभाषा, नियम और अनुशासन के सहारे जीता है। मन एक व्यवस्था है। लेकिन याद रहे, तंत्र अव्यवस्था नहीं है। और यह एक नाजुक बात है जो समझने योग्य है।

कनफ्यूसियस लाओत्सु को नहीं समझ सका। कनफ्यूसियस जब चला गया तब लाओत्सु हंस रहा था। उसके शिष्यों ने पूछा कि आप इतना हंस क्यों रहे हैं ? बात क्या है ? तो लाओत्सु ने कहा, समझ के लिए मन बड़ी बाधा है; कनफ्यूसियस तक का मन बाधा है। वह मुझे बिल्कुल नहीं समझ सका और वह मेरे संबंध में जो भी कहेगा वह नासमझी होगी। वह समझता है कि वह दुनिया में व्यवस्था लाने जा रहा है। तुम संसार में व्यवस्था पैदा नहीं कर सकते, व्यवस्था तो उसमें निहित है, व्यवस्था उसमें समायी हुई है। और जब तुम व्यवस्था पैदा करने चलते हो तब अव्यवस्था ही पैदा होती है। कनफ्यूसियस तो सोचेगा कि मैं अव्यवस्था पैदा कर रहा हूं, लेकिन सच्चाई यह है कि अव्यवस्था वह पैदा कर रहा है। मैं तो सब आरोपित व्यवस्था के खिलाफ हूं, क्योंकि मैं उस सहज अनुशासन में विश्वास करता हूं जो आप ही आता है, जो आप ही विकसित होता है। उसे लाना और लादना नहीं पड़ता है।

तंत्र चीजों को इसी भांति देखता है। तंत्र के लिए निर्दोषता सहजता है। बिना किसी आरोपण के स्वयं होना, बस स्वयं होना, जैसे वृक्ष बढ़ता है वैसे बढ़ना सहजता है। और ध्यान रहे, तुम्हें तुम्हारे बगीचे का वृक्ष नहीं होना है; तुम्हें जंगल का वृक्ष होना है, जो सहजता से बढ़ता है, किसी मार्ग-दर्शन के अनुसार नहीं। क्योंकि सब मार्ग-दर्शन कुमार्ग-दर्शन हैं, तंत्र के लिए सब मार्ग-दर्शन कुमार्ग-दर्शन हैं। बिना मार्ग-दर्शन के, बिना पहरेदारी के, बिना

दिशा-सूचन के, बिना प्रयोजन के बढ़ता है। बस, बढ़ता है।

आंतरिक नियम काफी है; और कोई नियम जरूरी नहीं है। और अगर तुम्हें किसी और नियम की जरूरत है, तो उसका अर्थ है कि तुम्हें आंतरिक नियम का पता नहीं है, उसके साथ तुम्हारा संपर्क छूट गया है। इसलिए असली चीज आरोपण नहीं है। असली चीज है सतुंलन को, सम्यकत्व को फिर से प्राप्त करना, फिर से केंद्र की ओर गति करना, फिर से घर की ओर लौटना, ताकि तुम्हें सच्चा आंतरिक नियम उपलब्ध हो जाए।

लेकिन नीति के लिए, धर्मों के लिए, तथाकथित धर्मों के लिए जरूरी है कि वे व्यवस्था को, अच्छाई को ऊपर से लादें, बाहर से आरोपित करें। याद रहे, धर्म, नैतिक शिक्षण, पुरोहित, पोप, सब तुम्हें बुरा, बुनियादी रूप से बुरा मानकर चलते हैं। वे मनुष्य के शुभ में, उसकी अच्छाई में विश्वास नहीं करते, किसी आंतरिक अच्छाई में उन्हें भरोसा नहीं है। वे मानकर चलते हैं कि तुम बुरे हो, और जब तक तुम्हें अच्छा होना न सिखाया जाए तब तक अच्छे नहीं हो सकोगे। वे समझते हैं कि जब तक अच्छाई बाहर से न थोपी जाएगी तब तक उसके आने की, भीतर से आने की संभावना नहीं है।

इसलिए पुरोहितों, नीतिवादियों और धर्मगुरुओं की नजर में तुम बुनियादी रूप से बुरे हो। अच्छाई तो वह अनुशासन है जो ऊपर से थोपी जाती है। तुम एक अराजकता हो और वे तुम्हें व्यवस्था देंगे। वे व्यवस्था लाने वाले हैं, और उन्होंने सारी दुनिया को एक गड्ड-मड्ड, एक उलझाव, एक पागलखाना बना दिया है। क्योंकि सदियों से वे संसार में व्यवस्था पैदा करने में लगे हैं, अनुशासन ला रहे हैं। उन्होंने इतना सिखाया है कि सीखने वाले पागल हो गए हैं।

तंत्र तुम्हारी आंतरिक अच्छाई में विश्वास करता है। इस फर्क को स्मरण रखो। तंत्र कहता है कि हरेक व्यक्ति शुभ है, अच्छा है। वह अच्छा ही पैदा होता है, अच्छाई उसका स्वभाव है। यह हकीकत है, तुम अच्छे हो ही। तुम्हें स्वाभाविक विकास की जरूरत है, किसी आरोपण की जरूरत नहीं है। यही कारण है कि कोई भी चीज बुरी नहीं समझी जाती। अगर क्रोध है, कामवासना है, लोभ है, तो तंत्र कहता है कि वे सब भी शुभ हैं। बस एक ही चीज की कमी है कि तुम अपने में केंद्रित नहीं हो और इस कारण से तुम उनका उपयोग नहीं कर पाते हो। यही कारण है कि तुम उनका सदुपयोग नहीं कर पाते हो।

क्रोध बुरा नहीं है। असली समस्या यह है कि तुम अपने भीतर नहीं हो, और यही कारण है कि क्रोध तबाही लाता है। अगर तुम अपने भीतर उपस्थित रहे तो क्रोध स्वस्थ ऊर्जा बन जाता है, स्वास्थ्य बन जाता है। तब क्रोध ऊर्जा

में रूपांतरित हो जाता है। और तब वह शुभ हो जाता है।

जो कुछ भी है शुभ है। तंत्र सब चीज की अंतर्भूत अच्छाई में विश्वास करता है। सब कुछ पवित्र है। कुछ भी अपवित्र नहीं है, कुछ भी अशुभ नहीं है। तंत्र के लिए कहीं कोई शैतान नहीं है, केवल दिव्य अस्तित्व है।

धर्म शैतान के बिना जीवित नहीं रह सकते हैं। उन्हें ईश्वर की भी जरूरत है और शैतान की भी जरूरत है। इसलिए तुम उनको मंदिरों में अकेले ईश्वर को देखकर भूल में मत पड़ जाना, उस ईश्वर के ठीक पीछे शैतान छिपा बैठा है। क्योंकि कोई भी धर्म शैतान के बिना कैसे रह सकता है ? कुछ चीज जरूरी है जिसकी निंदा की जाए, जिसे विनष्ट किया जाए। वहां समग्र नहीं स्वीकृत है, सिर्फ अंश स्वीकृत है।

यह बुनियादी बात है। कोई भी धर्म तुम्हें तुम्हारी समग्रता में नहीं, आंशिक रूप में, खंड में ही स्वीकार करता है। सारे धर्म कहते हैं कि हम तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करते हैं, घृणा को नहीं, इसलिए घृणा को मिटाओ। और यह एक बहुत गहरी समस्या है। क्योंकि जब घृणा को पूरी तरह मिटा देते हो तब उसके साथ ही प्रेम भी मिट जाता है। क्योंकि घृणा और प्रेम दो नहीं हैं। वे कहते हैं, हम तुम्हारे मौन को तो स्वीकार करते हैं, लेकिन तुम्हारे क्रोध को नहीं। तुम क्रोध को मिटा दो और तुम्हारी जीवंतता भी मिट जाती है। तब तुम शांत तो हो जाओगे, लेकिन जिंदा न रहोगे, मुर्दा होकर रहोगे। वह शांति जीवन नहीं, मृत्यु है।

धर्म तुम्हें सदा दो में, शुभ और अशुभ में बांटते हैं। शुभ को वे स्वीकार करते हैं और अशुभ के विरोध में खड़े होते हैं। तब अशुभ को मिटाना है। इसलिए अगर कोई सच में उनकी मानकर चले तो अंतिम परिणाम होगा कि जिस क्षण शैतान मिटेगा उसी क्षण परमात्मा भी मिट जाएगा। लेकिन वास्तव में कोई भी उनकी नहीं मानता है। कोई मान भी नहीं सकता, क्योंकि यह शिक्षा ही बेहूदी है। फिर लोग क्या करते हैं ?

वे बस धोखा देते हैं। इसलिए तो जगत में इतना पाखंड है। वह पाखंड धर्मों के द्वारा पैदा किया गया है। तुम वह नहीं कर सकते जो धर्म करने को सिखाते हैं, इसलिए तुम पांखडी बन जाते हो। अगर तुम उनकी मानकर चलो तो तुम मरोगे, और अगर न मानो तो अपराधी अनुभव करोगे कि मैं अधार्मिक हूं। तब क्या किया जाए ?

तो इसलिए चालाक मन समझौता करता है। एक ओर तो वह उनके शाब्दिक समर्थन में कहता है कि मैं तुम्हारा अनुसरण करता हूं और दूसरी ओर वह वही

करता है जो करना चाहता है। तुम अपने क्रोध को जारी रखते हो, अपनी कामवासना को चलाए रखते हो, अपने लोभ को जहां का तहां रहने देते हो, और सतत यह भी कहे जाते हो कि लोभ बुरा है, क्रोध बुरा है, काम बुरा है। और यही पाप है, यही पाखंड है।

समूचा संसार पाखंडपूर्ण हो गया है। कोई आदमी ईमानदार नहीं है। यह बात विरोधाभासी लगती है। सभी धर्म ईमानदारी सिखाते हैं और वे ही बेईमानी की आधारशिला बने बैठे हैं। वे तुम्हें बेईमान बनाते हैं, क्योंकि वे तुम्हें असंभव चीजें करने को कहते हैं। तुम उन्हें नहीं कर पाते हो और पाखंडी बन जाते हो।

तंत्र तुम्हें तुम्हारी समग्रता में, पूरे का पूरा स्वीकार करता है। क्योंकि तंत्र कहता है कि या तो पूरा स्वीकार करो या पूरा अस्वीकार करो, बीच-बीच की बात नहीं हो सकती। आदमी संपूर्ण है, जैविक रूप से संपूर्ण है। तुम उसके खंड नहीं कर सकते हो; तुम नहीं कह सकते कि यह खंड हम नहीं स्वीकारेंगे। क्योंकि जिसे तुम अस्वीकारोगे वह जैविक रूप से उससे जुड़ा है जिसे तुम स्वीकारते हो।

यह ऐसा है कि जैसे यह मेरा शरीर है। कोई आता है और कहता है कि मैं तुम्हारे रक्त-संचालन को स्वीकारता हूं, लेकिन हृदय की धड़कन को नहीं। यह तो निरंतर धड़क रहा है हृदय; उसे मैं नहीं स्वीकारता हूं, पर रक्त-संचालन मुझे स्वीकार है। यह ठीक है, यह चुपचाप है।

लेकिन सच तो यह है कि मेरा रक्त-संचालन मेरे हृदय के द्वारा हो रहा है, और हृदय की धड़कन उससे संबंधित है। रक्त-संचालन धड़कन के कारण होता है। तो मैं क्या करूं ? मेरा हृदय और रक्त-संचालन सावयव रूप से जुड़े हैं। वे दो नहीं, एक हैं। इसलिए या तो मुझे पूरी तरह स्वीकार करो या पूरी तरह अस्वीकार करो। लेकिन कृपा कर मुझे बांटने की कोशिश मत करो। यह बेईमानी होगी, गहरी बेईमानी होगी। अगर तुम मेरे हृदय की धड़कन की निंदा करोगे तो मैं भी उसकी निंदा करने लगूंगा। लेकिन तब रक्त का संचालन नहीं होगा, और उसके बिना मैं जिंदा नहीं रह सकता। इसलिए क्या किया जाए ?

यह कि जैसे हो वैसे ही बने रहो, और सदा कुछ और कहते रहो जो तुम नहीं हो, जो तुम नहीं हो सकते हो।

फिर यह देखना कठिन नहीं है कि कैसे हृदय और रक्त-संचालन आपस में जुड़े हैं, लेकिन यह देख पाना कठिन है कि प्रेम और घृणा वैसे ही आपस में जुड़े हैं। वे एक ही हैं। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो क्या करते हो ?

वह एक प्रवाह है, वैसे ही जैसे श्वास का बाहर जाना है। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो क्या करते हो ? तुम उससे मिलने के लिए बाहर जा रहे हो, वह श्वास का बाहर जाना है। और जब तुम घृणा करते हो तो वह श्वास का वापस आना है। तुम प्रेम करते हो तो तुम किसी के प्रति आकर्षित होते हो, और जब घृणा करते हो तो विकर्षित होते हो।

आकर्षण और विकर्षण एक ही प्रवाह की दो लहरें हैं। आकर्षण और विकर्षण दो चीजें नहीं हैं, तुम उन्हें विभाजित नहीं कर सकोगे। तुम मुझे यह नहीं कह सकते कि तुम श्वास ले तो सकते हो, लेकिन श्वास छोड़ नहीं सकते। तुम मुझे यह नहीं कह सकते कि तुम श्वास छोड़ तो सकते हो, लेकिन श्वास ले नहीं सकते। दो में से एक ही काम कर सकते हो, दोनों नहीं। पर अगर तुम्हें श्वास छोड़ने न दी जाए तो तुम श्वास ले कैसे सकते हो ? इसी तरह अगर तुम्हें घृणा न करके दी जाए तो तुम प्रेम भी नहीं कर सकते हो।

तंत्र कहता है कि हम पूरे मनुष्य को स्वीकार करते हैं। क्योंकि मनुष्य एक जैविक एकता है। मनुष्य एक गहरी एकता है, तुम उसमें से कुछ भी नहीं छोड़ सकते। और वह जैसा है वैसा ही उसे होना चाहिए। क्योंकि अगर मनुष्य जैविक एकता नहीं है तो ब्रह्मांड में कुछ भी जैविक एकता नहीं है। मनुष्य जैविक संपूर्णता का शिखर है। सड़क पर पड़ा पत्थर वह एकता है, वृक्ष एकता है, फूल और पक्षी वह एकता हैं। सब एकता है तो मनुष्य क्यों नहीं ? मनुष्य तो शिखर है, एक महाएकता है, एक जटिल जैविक संपूर्णता। सच तो यह है कि तुम किसी को भी अस्वीकृत नहीं कर सकते।

तंत्र कहता है कि तुम जैसे हो हम तुम्हें वैसे ही स्वीकार करते हैं। उसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हें बदलने की जरूरत नहीं है। उसका यह मतलब भी नहीं है कि अब तुम्हें विकास नहीं करना है। वरन उसका अर्थ तो यह है कि तंत्र तुम्हारे विकास के मूलाधार को स्वीकार कर रहा है। तभी तुम विकास कर सकते हो। लेकिन यह विकास चुनाव नहीं होगा। यह चुनाव-रहित विकास होगा।

उदाहरण के लिए बुद्ध को देखो। जब बुद्ध बुद्ध होते हैं, हम पूछ सकते हैं, उनका क्रोध कहां गया ? उनमें भी क्रोध था, उनमें भी कामवासना थी। अब वह क्रोध, वह कामवासना कहां गई ? अब उनका लोभ कहां है ? अब हम उनमें कोई क्रोध नहीं देखते। जब वे बुद्ध हो गए तो उनमें कोई क्रोध क्यों नहीं दिखाई पड़ता ?

क्या तुम कमल में कीचड़ को देख सकते हो ? कमल कीचड़ से आता

है। अगर तुमने कमल को कीचड़ से जन्मते और बढ़ते नहीं देखा है और एक कमल का फूल तुम्हारे पास लाया जाए तो क्या तुम सोच सकते हो कि यह सुंदर कमल किसी तालाब के मामूली कीचड़ से पैदा हुआ है ? ऐसा सुंदर कमल और कुरूप कीचड़ से ? क्या कमल में कहीं भी तुम कीचड़ को पहचान सकते हो ?

कीचड़ कमल में है, लेकिन रूपांतरित होकर है। उसमें जो सुगंध है वह उसी कुरूप कीचड़ से आ रही है। उसकी पंखुड़ियों का गुलाबीपन उसी कुरूप कीचड़ का वरदान है। अगर तुम इस कमल को फिर से कीचड़ में छिपाकर रख दो तो थोड़े ही दिनों में वह अपनी माता में विलीन हो जाएगा। और तब तुम फिर नहीं पहचान सकोगे कि कमल कहां गया ? उसकी सुगंध कहां है ? उसकी सुंदर पंखुड़ियां कहां हैं ?

वैसे ही तुम बुद्ध में मनुष्य को नहीं पहचान सकोगे, लेकिन वह वहां है—एक बड़े और ऊंचे तल पर रूपांतरित होकर। वहां कामवासना है, क्रोध है, घृणा है; सब कुछ जो मनुष्य का है, वह वहां है।

बुद्ध मनुष्य हैं, लेकिन वे अपने परम विकास को उपलब्ध हो गए हैं। वे कमल का फूल हो गए हैं, इसलिए उनमें तुम कीचड़ को नहीं देख सकते। लेकिन उसका यह अर्थ नहीं है कि कीचड़ वहां नहीं है, वह वहां है, लेकिन कीचड़ की तरह नहीं, वह अब एक ऊंची एकता बन गई है। यही कारण है कि बुद्ध में न तुम्हें घृणा मिलेगी और न प्रेम मिलेगा।

यह समझना और भी कठिन होगा, क्योंकि बुद्ध सर्वथा प्रेमपूर्ण मालूम पड़ते हैं। वे कभी घृणा नहीं करते, कभी क्रोध नहीं करते; वे सदा शांत हैं। लेकिन उनकी शांति तुम्हारी शांति से भिन्न है। वे समान नहीं हैं। तुम्हारी शांति क्या है ?

आइंस्टीन ने कहीं कहा है कि हमारी शांति युद्ध की तैयारी के सिवाय और कुछ नहीं है। दो युद्धों के बीच में हमें शांति का एक छोटा-सा अंतराल मिलता है, लेकिन वह शांति असली शांति नहीं है। वह दो युद्धों के बीच मात्र एक विराम है, एक अंतराल है। इसलिए तो वह विराम शीत युद्ध बन जाता है। कहना चाहिए कि युद्ध दो तरह के हैं, गरम युद्ध और शीत युद्ध। दूसरे महायुद्ध के बाद रूस और अमेरिका के बीच शीत युद्ध हुआ। उनके बीच शांति नहीं है, वे महज दूसरे युद्ध की तैयारी में लगे हैं। वे तैयार हो रहे हैं। हर युद्ध अशांति और विनाश लाता है, इसलिए उसकी तैयारी के लिए अंतराल जरूरी है।

लेकिन अगर संसार से सचमुच युद्ध विदा हो जाएं, बिल्कुल विदा हो जाएं,

तो इस तरह की शांति जो सच में शीत युद्ध है विदा हो जाएगी। क्योंकि यह शांति सदा दो युद्धों के बीच घटित होती है। अगर युद्ध समाप्त हो जाएं तो शीत युद्ध भी, जिसे हम शांति कहते हैं, समाप्त हो जाएगा।

तुम्हारा मौन क्या है ? बस दो क्रोधों के बीच तैयारी का समय। जब तुम चैन में, आराम में होते हो तो क्या होते हो ? क्या तुम सचमुच शिथिल हो, सचमुच विश्राम में हो, या दूसरे विस्फोट की मात्र तैयारी कर रहे हो ? क्रोध ऊर्जा का अपव्यय है, इसलिए तुम्हें समय चाहिए। जब तुम क्रोध करते हो उसके तुरंत बाद तुम फिर क्रोध नहीं कर सकते।

जब तुम संभोग में उतरते हो तो उसके तुरंत बाद ही फिर संभोग में नहीं जा सकते। इसलिए तुम्हें समय की जरूरत होगी, कम-से-कम दो-तीन दिनों तक ब्रह्मचर्य रखने की जरूरत होगी। और यह तुम्हारी उम्र पर निर्भर करेगा। लेकिन यह ब्रह्मचर्य वास्तविक ब्रह्मचर्य नहीं है। तुम सिर्फ तैयारी कर रहे हो। दो संभोगों के बीच ब्रह्मचर्य नहीं हो सकता।

तुम दो भोजनों के बीच के समय को उपवास कहते हो। इसलिए तो अंग्रेजी में सुबह के जलपान को ब्रेकफास्ट कहते हैं। लेकिन उपवास कहां है ? तुम तैयारी भर कर रहे थे। तुम अपने भीतर निरंतर भोजन नहीं ठूंस सकते हो, तुम्हें अंतराल चाहिए। लेकिन वह अंतराल उपवास नहीं है। वह दूसरे भोजन की तैयारी भर है।

ऐसे ही जब हम मौन रहते हैं तो वह दो क्रोधों के बीच का मौन है। जब हम विश्राम में होते हैं तो वह दो तनावों के बीच का विश्राम है। हमारा ब्रह्मचर्य दो संभोगों के बीच का ब्रह्मचर्य है। और जब हम प्रेम करते हैं तो वह दो घृणाओं के बीच का प्रेम है। यह याद रहे।

तो यह मत समझो कि बुद्ध की शांति तुम्हारी शांति है। जब तुम्हारा क्रोध खतम होता है तब तुम्हारी शांति भी खतम हो जाती है। वे दोनों साथ-साथ रहते हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। वैसे ही बुद्ध के ब्रह्मचर्य को अपना ब्रह्मचर्य मत समझो। जब तुम्हारी कामवासना विदा होती है तब तुम्हारा ब्रह्मचर्य भी विदा हो जाता है। दोनों एक ही चीज के हिस्से थे, दोनों साथ-साथ विदा होते हैं।

बुद्ध के साथ एक भिन्न ही व्यक्ति का उदय होता है जिसकी तुम्हें कोई भी धारणा नहीं हो सकती। तुम सिर्फ द्वंद्वों की सोच सकते हो। तुम यह सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध किस भांति के मनुष्य हैं कि उन्हें क्या घटित हुआ है। उनमें समस्त ऊर्जा अस्तित्व के एक सर्वथा भिन्न तल पर आ खड़ी हुई है। कीचड़

कमल बन गया है। लेकिन वह है। कीचड़ को कमल से निकाल बाहर नहीं किया गया है, वह रूपांतरित हुआ है।

इसलिए तंत्र तुम्हारी समस्त ऊर्जा को स्वीकार करता है। तंत्र किसी के छोड़े जाने के पक्ष में नहीं है, वह उसे रूपांतरित करने के पक्ष में है। और तंत्र का कहना है कि इस रूपांतरण की ओर पहला कदम स्वीकार है। यह पहला कदम, स्वीकार करने का कदम कठिन है। तुम दिन में कई बार क्रोध करते होगे, लेकिन उस क्रोध को स्वीकारना बहुत कठिन है। क्रोध करना बहुत आसान है, लेकिन उसे स्वीकारना बहुत कठिन है। क्यों ? क्रोध करने में बहुत कठिनाई नहीं होती है, उसे स्वीकारने में इतनी कठिनाई क्यों होती है ?

क्रोध करना उतना बुरा नहीं मालूम पड़ता है जितना बुरा उसे स्वीकारना मालूम पड़ता है। हर आदमी सोचता है कि मैं अच्छा आदमी हूं और यह क्रोध क्षणिक है; यह आता है और चला जाता है। वह तुम्हारी प्रतिमा को नष्ट नहीं करता है; तुम अच्छे के अच्छे बने रहते हो। तुम कहते हो, क्रोध बस हो गया। वह तुम्हारे अहंकार को नहीं नष्ट करता है।

इसलिए जो लोग चालाक हैं वे तुरंत पश्चात्ताप कर लेते हैं। वे क्रोध करेंगे और फिर पश्चात्ताप कर लेंगे। वे क्षमा मांग लेंगे। मैं उन्हें चालाक क्यों कहता हूं ? क्योंकि उनका क्रोध उनकी प्रतिमा को कंपा देता है। वे बेचैन अनुभव करने लगते हैं, वे समझते हैं कि मैं इतना बुरा हूं कि क्रोध करता हूं। इसलिए उसकी अच्छे आदमी होने की प्रतिमा कांपने लगती है। और उसे पुनर्स्थापित करना है। इसलिए वह कहता है कि यह बुरा हुआ, ऐसा फिर मैं नहीं करूंगा; मुझे क्षमा करें। और क्षमा मांगकर उसकी प्रतिमा पुनर्स्थापित हो जाती है। वह फिर दुरुस्त है, ठीक है; क्रोध के पहले की अवस्था में वापस चला गया है। क्षमा मांगकर उसने अपने क्रोध को बराबर कर दिया, अपने को बुरा कहकर उसने अपनी भलमनसी वापस पा ली।

यही कारण है कि तुम जन्मों-जन्मों तक क्रोधी बने रहते हो, कामी बने रहते हो, कब्जा जमाते रहते हो, या यह-वह करते रहते हो, लेकिन कभी उन्हें स्वीकार नहीं करते। यही मन की चालाकी है। यह जो भी तुम करते हो वह परिधि पर है, केंद्र पर तुम भले बने रहते हो।

अगर तुम स्वीकार कर लो कि मैं क्रोधी हूं तो तुम केंद्र पर बुरे हो जाते हो। तब यह महज करने का सवाल नहीं रह जाता, तब यह क्षणिक नहीं रहता, तब क्रोध तुम्हारी संरचना का हिस्सा हो जाता है। तब ऐसा नहीं है कि कोई तुम्हें क्रोध करने को उत्तेजित करता है; तब तुम अकेले भी हो तो क्रोध में हो।

जब तुम क्रोध नहीं कर रहे हो तब भी क्रोध है, क्योंकि क्रोध तुम्हारी ऊर्जा है, तुम्हारा अंग है। ऐसा नहीं है कि क्रोध कभी-कभी भड़कता है और फिर शांत हो जाता है। नहीं, अगर वह सदा मौजूद नहीं है तो भड़केगा कैसे ?

तुम इस बल्ब को बुझा सकते हो, फिर जला सकते हो, लेकिन विद्युत-प्रवाह को वहां सतत रहना चाहिए। अगर प्रवाह नहीं है तो तुम जला-बुझा नहीं सकते। उसी तरह क्रोध का प्रवाह सदा मौजूद है; कामवासना का प्रवाह सदा मौजूद है; लोभ का प्रवाह सदा मौजूद है। उन्हें भी तुम जलाते-बुझाते रहते हो। बाह्य स्थितियों में तुम बदलते हो, अंतर-स्थिति में तुम वही के वही रहते हो।

स्वीकार का अर्थ है कि क्रोध कृत्य नहीं है, तुम ही क्रोध हो। कामवासना कृत्य नहीं है, तुम ही कामवासना हो। लोभ कृत्य नहीं है, तुम ही लोभ हो। इसे स्वीकार करने का अर्थ है, अपनी प्रतिमा को उखाड़ फेंकना। और हम सबने अपनी सुंदर प्रतिमाएं बना रखी हैं। हरेक ने अपनी-अपनी सुंदर, अत्यंत सुंदर प्रतिमाएं बना रखी हैं। और तुम जो भी करते हो उससे वे प्रतिमाएं एकदम अछूती रह जाती हैं। तुम उन्हें बचाए चलते हो। और जब प्रतिमा सुरक्षित है तो तुम प्रसन्न महसूस करते हो। यही कारण है कि तुम क्रोध करते हो, कामवासना में उतरते हो, और उससे विचलित नहीं होते। लेकिन अगर तुम स्वीकार कर लो और कहो कि मैं कामवासना हूं, मैं क्रोध हूं, मैं लोभ हूं, तो तुम्हारी प्रतिमा तत्क्षण बिखर जाती है।

तंत्र कहता है कि तुम जो भी हो उसे स्वीकारना पहला कदम है, और सबसे कठिन कदम है। कभी-कभी हम स्वीकारने की कोशिश भी करते हैं, लेकिन जब भी यह कोशिश करते हैं तो बहुत हिसाब-किताब के साथ करते हैं। हमारी चालाकी गहरी और सूक्ष्म है। और मन के धोखा देने के ढंग भी बड़े सूक्ष्म हैं।

कभी-कभी तुम स्वीकारते हो और कहते हो कि हां, मैं क्रोध में हूं। लेकिन यह स्वीकार तभी करते हो जब सोचते हो कि क्रोध से कैसे मुक्त हुआ जाए। तब तुम स्वीकारते हुए कहते हो, ठीक है, मैं क्रोध में हूं; अब बताओ कि इसके ऊपर कैसे उठा जाए ? तुम कामवासना से छूटने के लिए कामवासना को स्वीकार करते हो। जब भी तुम कुछ और होने की कोशिश करते हो तो तुम स्वीकार करते हो, क्योंकि तब भविष्य के द्वारा तुम्हारी प्रतिमा सुरक्षित रह जाती है। तुम हिंसक हो और तुम अहिंसक होने की चेष्टा कर रहे हो। इसलिए तुम स्वीकार करते हो कि मैं हिंसक हूं, आज मैं हिंसक हूं, लेकिन कल अहिंसक हो जाऊंगा।

लेकिन तुम अहिंसक कैसे हो जाओगे ? इस तरह तुम अपनी प्रतिमा को

भविष्य के लिए स्थगित करते हो, बचा लेते हो। तुम अपने को वर्तमान में नहीं सोचते; तुम सदा आदर्श की भाषा में, अहिंसा, प्रेम और करुणा की भाषा में सोचते हो। और तब तुम भविष्य में होते हो। यह वर्तमान तो तुरंत अतीत हो जाने वाला है। तुम्हारा असली रूप तो भविष्य में है, इसलिए तुम आदर्शों के साथ तादात्म्य किए जाते हो।

वे आदर्श भी यथार्थ को, हकीकत को अस्वीकृत करने के ढंग हैं। तुम हिंसक हो, यह यथार्थ है। और सिर्फ वर्तमान का अस्तित्व है, भविष्य कहीं है नहीं। तुम्हारे सब आदर्श मात्र सपने हैं। वे मन को स्थगित करने के, मन को कहीं और बांधे रखने के ढंग भर हैं।

तुम हिंसक हो, यह यथार्थ है। इसलिए इसे स्वीकार कर लो। और अहिंसक बनने की चेष्टा छोड़ दो। कोई हिंसक चित्त अहिंसक नहीं हो सकता है। यह कैसे संभव है ? अपने भीतर गहरे देखो। तुम हिंसक हो, अहिंसक कैसे हो सकते हो ? तुम जो भी करोगे वह हिंसक आदमी का कृत्य होगा। अहिंसक होने का प्रयास भी हिंसक मन का ही प्रयास होगा। तुम हिंसक हो, इसलिए अहिंसक होने की चेष्टा में भी तुम हिंसक ही रहोगे। अहिंसक होने की चेष्टा में ही तुम हर तरह की हिंसा करोगे।

यही कारण है कि तुम अहिंसा के साधकों के पास जाते हो। वे दूसरों के साथ तो हिंसा नहीं करते, लेकिन अपने साथ हिंसा कर रहे हैं। वे अपने प्रति बहुत हिंसापूर्ण हैं, वे आत्महत्या कर रहे हैं। और वे जितने ही पागलपन के साथ अपने खिलाफ होते हैं वे उतने ही पूजे जाते हैं। और जब वे पूरी तरह पागल हो जाते हैं तो समाज कहता है कि वे संत हैं।

लेकिन उन्होंने सिर्फ हिंसा के विषय बदल लिए हैं। पहले वे औरों के साथ हिंसा करते थे, अब अपने साथ कर रहे हैं, लेकिन हिंसा कायम है। और इस हिंसा में एक और सुविधा है। जब तुम दूसरे के साथ हिंसा करते हो तो कानून, अदालत, समाज सब उसकी रक्षा को आ सकते हैं, लेकिन जब तुम अपने साथ हिंसा करते हो तो कोई कानून नहीं है। तब कोई कानून तुम्हें तुमसे नहीं बचा सकता। जब आदमी अपने ही विरुद्ध होता है तब कोई बचाव नहीं है। दूसरा कोई चिंता भी नहीं लेता, क्योंकि यह तुम्हारा मामला है। कोई दूसरा इसमें सम्मिलित नहीं है, यह बिलकुल तुम्हारा निजी मामला है। तथाकथित साधु-संत अपने ही प्रति हिंसक हैं। किसी को क्या पड़ी है ? वे कहते हैं, तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

अगर तुम्हारा मन लोभी है तो तुम अलोभी कैसे हो सकते हो ? लोभी मन

लोभी ही रहेगा। वह लोभ के पार जाने के लिए जो भी करेगा उससे कुछ होने वाला नहीं है। हां, हम नए लोभ पैदा कर लेंगे। किसी लोभी आदमी से पूछो कि क्या कर रहे हो, सिर्फ धन कमा रहे हो ? मर जाओगे और यह धन यहीं पड़ा रह जाएगा।

यही सारे तथाकथित धर्मगुरुओं का तर्क है—कि तुम अपने साथ अपना धन नहीं ले जा सकते। लेकिन अगर कोई धन साथ ले जा सके तो तुम्हारा सारा तर्क व्यर्थ हो जाता है। लोभी आदमी को भी यह तर्क जंचता है। वह भी कहता है कि धन हम अपने साथ नहीं ले जा सकेंगे। लेकिन वह ले जाना तो चाहता ही है। और यही कारण है कि पुरोहित प्रभावी हो जाता है। वह उसे बताता है कि जो चीजें मृत्यु के बाद साथ नहीं जाने वाली हैं उनका परिग्रह व्यर्थ है; मैं तुम्हें वे चीजें बताता हूं जो साथ जा सकती हैं। पुण्य साथ जा सकता है, अच्छाई साथ जा सकती है, लेकिन धन नहीं। इसलिए धन दान कर दो।

लेकिन यह भी तो उसके लोभ को ही उकसाना हुआ। उसे यह कहना हुआ कि अब हम तुम्हें ऐसी चीजें देते हैं जो मृत्यु के पार जा सकती हैं। और यह उपदेश नतीजा लाता है। लोभी आदमी सोचता है कि उपदेशक सही कहता है। मौत है, और उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता; इसलिए मुझे कुछ ऐसा करना होगा जो मृत्यु के पार जा सके। मुझे परलोक के लिए किसी तरह का बैंक-बैलेंस जमा करना होगा, क्योंकि इस लोक की संपदा सदा साथ नहीं रह सकती है। वह इसी भाषा में सोचता है।

तुम शास्त्रों को पढ़ो, वे तुम्हारे लोभ को उकसा रहे हैं। वे कहते हैं कि क्षणभंगुर सुखों के पीछे क्यों समय व्यय कर रहे हो ! जोर क्षणभंगुर पर है। कुछ शाश्वत सुख की खोज करो। फिर ठीक है। वे सुख के विरुद्ध नहीं हैं, वे क्षणभंगुर सुख के विरुद्ध हैं। इस लोभ को तो देखो।

तो कभी यह हो सकता है कि एक लोभरहित आदमी तुम्हें मिल जाए जो क्षणिक सुखों का सुख ले रहा हो, लेकिन तुम्हें तुम्हारे साधु-महात्माओं में कोई न मिलेगा जो शाश्वत सुखों की खोज न करता हो। उनका लोभ तो और भी भारी है। तुम्हें सामान्यजनों के बीच कोई अलोभी मिल भी सकता है, लेकिन तथाकथित साधु-संतों के बीच अलोभी न मिलेगा। वे भी सुख खोजते हैं, लेकिन उनका लोभ बहुत बड़ा है। तुम क्षणभंगुर सुखों से संतुष्ट हो, वे नहीं। उनका लोभ तो शाश्वत सुख से ही तृप्त होगा। ध्यान रहे, असीम लोभ असीम सुख की खोज करता है, सीमित लोभ सीमित सुख से संतुष्ट है।

वे तुम्हें कहेंगे, क्या एक स्त्री को प्रेम करते हो ! उसमें खून और हड्डी के

सिवाय और क्या है ? वे स्त्री के विरोध में नहीं हैं, वे हड्डी और शरीर के विरोध में हैं। अगर स्त्री सोने की हो तो ठीक। वे स्वर्ण-स्त्री की मांग कर रहे हैं। और चूंकि सोने की स्त्री इस दुनिया में नहीं होती, इसलिए वे दूसरी दुनिया निर्मित करते हैं। वे कहते हैं, स्वर्ग में अप्सराएं हैं जिनकी काया सोने की है और जो सदा युवा रहती हैं।

हिंदुओं के स्वर्ग में अप्सराओं की उम्र कभी सोलह साल से ऊपर नहीं जाती। वे कभी बूढ़ी नहीं होतीं, सदा सोलह साल की बनी रहती हैं। तो इन मामूली औरतों के पीछे क्यों समय बर्बाद करते हो ? स्वर्ग की सोचो। ये लोग सुख के विरोध में नहीं हैं। अमल में वे क्षणभंगुर सुख के विरोध में हैं। अगर किसी झक में परमात्मा इस संसार को शाश्वत सुखों से भर दे, तो तुरंत तुम्हारे धर्म का सारा महल धूल-धूसरित हो जाएगा। तब धर्म का सारा आकर्षण ही जाता रहेगा। अगर किसी तरह बैंक बैलेंस मृत्यु के पार ले जाए जा सकें तो कोई वहां के बैंक बैलेंस में उत्सुक नहीं होगा। इसलिए तो मृत्यु पुरोहित का भारी सहारा है।

लोभी आदमी सदा दूसरे लोभ से आकर्षित होता है। अगर तुम उससे कहो कि तुम्हारा लोभ तुम्हारे दुखों का कारण है और इसलिए अगर लोभ छोड़ दो तो तुम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे, तो वह राजी हो सकता है। क्योंकि तुम अब उसके लोभ को नए चरागाह दे रहे हो। वह लोभ के नए आयामों में प्रवेश कर जा सकता है।

इसलिए तंत्र कहता है— लोभी मन अलोभ को नहीं उपलब्ध हो सकता है। लेकिन यह तो बहुत निराशाजनक है। अगर ऐसी बात है तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। तब तंत्र चाहता क्या है ? अगर लोभी चित्त अलोभ को नहीं प्राप्त हो सकता, अगर हिंसक चित्त अहिंसक नहीं हो सकता और अगर कामुक चित्त कामुकता को नहीं पार कर सकता, अगर कुछ किया ही नहीं जा सकता, तो तंत्र आखिर क्या चाहता है ?

तंत्र यह नहीं कहता है कि कुछ भी नहीं किया जा सकता। कुछ किया जा सकता है, लेकिन उसका आयाम सर्वथा भिन्न है। एक लोभी मन को समझना है कि वह लोभी है, और यह उसे स्वीकार करना है। उसे अलोभी होने की चेष्टा में नहीं लगना है। लोभी मन को अपनी गहराई में उतरकर अपने लोभ की गहराई को जानना है। उसे अपने लोभ से पृथक नहीं होना है, उसे उसके साथ-साथ रहना है। उसे आदर्शों में, लोभ के विपरीत आदर्शों में नहीं गति करनी है, बल्कि वर्तमान में रहना है। उसे लोभ में ही गति करनी है, लोभ को ही

जानना है, अपने लोभ को ही समझना है। उसे लोभ से किसी भी भांति पलायन नहीं करना है। और अगर तुम अपने लोभ के साथ रह सके तो बहुत-सी बातें होंगी। अगर तुम अपने लोभ के साथ, कामवासना के साथ, अपने क्रोध के साथ इस तरह रह सके तो तुम्हारा अहंकार विसर्जित हो जाएगा। यह पहली बात होगी। और यह कितना बड़ा चमत्कार है।

अनेक लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं कि अहंकार से कैसे मुक्त हुआ जाए ? तुम अहंकार से नहीं मुक्त हो सकते, क्योंकि मुक्त होने के लिए तुम्हें अहंकार के आधार को खोजना और पाना होगा। तुम लोभी हो और तुम समझते हो कि मैं अलोभी हूं—यही अहंकार है। अगर तुम लोभी हो और समग्रता से जानते और स्वीकारते हो कि मैं लोभी हूं, तो तुम्हारे अहंकार को खड़े होने की जगह कहां रही ? अगर तुम क्रोधी हो और कहते हो कि मैं क्रोधी हूं, दूसरों से नहीं कहते हो, लेकिन अपने भीतर गहरे महसूस करते हो, अपनी बेबसी महसूस करते हो, तो तुम्हारा क्रोध कहां खड़ा रहेगा ? अगर तुम कामुक हो तो यह स्वीकार कर लो। तुम जो भी हो उसे स्वीकार कर लो।

स्वभाव की अस्वीकृति से, तथाता के इनकार से, जो भी तुम हो उससे पलायन से अहंकार का निर्माण होता है। और तुम उसे स्वीकार कर लो तो अहंकार नहीं रहेगा। और अगर उसे नहीं स्वीकार करते हो, इनकार करते हो, उसके विरुद्ध आदर्श निर्मित करते हो तो अहंकार रहेगा। आदर्श ही वह चीज है जिससे अहंकार का निर्माण होता है।

अपने को स्वीकार करो। लेकिन तब तुम जानवर जैसे मालूम पड़ोगे। तब तुम मनुष्य जैसे नहीं मालूम पड़ोगे, क्योंकि तुम्हारी मनुष्य की धारणा तुम्हारे आदर्शों में बसती है। यही कारण है कि हम लोगों को सिखाते हैं कि पशु जैसे मत होओ। और हरेक आदमी पशु है। क्या कर सकते हो ? तुम पशु हो।

तो अपनी पशुता को स्वीकार कर लो। और जिस क्षण तुम अपनी पशुता को स्वीकारते हो उसी क्षण तुमने अपनी पशुता से आगे जाने का कदम उठा लिया। क्योंकि कोई पशु नहीं जानता है कि वह पशु है। केवल मनुष्य यह जान सकता है। और वही पार जाना है। तुम इनकार करके, अस्वीकार करके पार नहीं जा सकते। स्वीकार करो। और जब सब स्वीकृत होता है तो तुम अचानक महसूस करते हो कि तुम अतिक्रमण कर गए।

यह कौन है जो स्वीकार करता है ? यह कौन है जो समग्र को स्वीकार करता है ? जो स्वीकार करता है वह पार चला जाता है। अगर तुम इनकार करते हो तो तुम उसी तल पर पड़े रहते हो। स्वीकार करने से अतिक्रमण करते

हो। स्वीकृति अतिक्रमण है।

और अगर तुम समग्रता से स्वीकार करते हो तो तुम अचानक अपने केंद्र पर फेंक दिए जाते हो। तब तुम कहीं नहीं जा सकते; तब तुम अपने तथाता से, अपने स्वभाव से अलग नहीं हो सकते और इसीलिए तुम अपने केंद्र पर फेंक दिए जाते हो। जिन तांत्रिक विधियों की हम यहां चर्चा कर रहे हैं वे तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर फेंकने के अलग-अलग उपाय हैं।

और तुम अनेक-अनेक ढंगों से अपने केंद्र से बचने की चेष्टा कर रहे हो। आदर्श इस बचाव के, पलायन के बहुत अच्छे उपाय हैं। आदर्शवादी सब से सूक्ष्म रूप से अहंकारी लोग होते हैं। इसमें बहुत-सी बातें हैं।

तुम हिंसक हो और तुम अहिंसा का आदर्श निर्मित करते हो। तब तुम्हें अपने भीतर अपनी हिंसा में जाने की, उसे देखने की जरूरत न रही। तब इतना ही जरूरी है कि तुम अहिंसा के संबंध में सोचो, अहिंसा के संबंध में पढ़ो और अहिंसा का अभ्यास करो। तुम अपने को कहते हो कि हिंसा के पास भी नहीं जाना है, और तुम हिंसक हो। इसलिए तुम अपने से, स्वयं से पलायन कर सकते हो। तब तुम परिधि पर पहुंच सकते हो। लेकिन अब तुम केंद्र पर कभी न आ सकोगे। यह एक बात हुई।

दूसरी बात कि जब तुम अहिंसा का आदर्श निर्मित करते हो तब तुम दूसरों की निंदा कर सकते हो। अब यह बहुत आसान काम है। अब तुम्हारे पास हरेक के संबंध में निर्णय लेने का मापदंड है। वह आदर्श है। अब तुम हरेक से कह सकते हो कि तुम हिंसक हो।

भारत ने ऐसे अनेक आदर्श खड़े किए हैं। यही वजह है कि भारत निरंतर समूचे संसार की निंदा से भरा है। वह सारे संसार को निंदित कर रहा है। सब कोई हिंसक है, केवल भारत अहिंसक है। सच तो यह है कि यहां कोई भी अहिंसक नहीं है। लेकिन दूसरों की निंदा करने के लिए आदर्श एक अच्छा नुस्खा है। इससे तुम नहीं रूपांतरित होते हो, लेकिन तुम दूसरों की निंदा तो कर सकते हो। क्योंकि तुम्हारे पास आदर्श है, मापदंड है। और जब तुम खुद हिंसा करते हो तो तुम इसके इर्द-गिर्द तर्कजाल खड़े कर सकते हो। तुम कहते हो, मेरी हिंसा कुछ और चीज है।

पिछले पच्चीस वर्षों में हम अनेक बार हिंसा पर उतरे, लेकिन हमने कभी उनकी निंदा नहीं की। सदा हमने सुंदर शब्दों में उसका बचाव और समर्थन किया। अगर हम बंगलादेश में हिंसा करते हैं तो कहते हैं कि हम वहां के लोगों को स्वतंत्र होने में सहायता कर रहे हैं। अगर काश्मीर में हिंसा करते हैं तो

वह काश्मीरियों की सहायता के लिए करते हैं।

लेकिन तुम्हें पता होगा कि सभी युद्धखोर यही भाषा बोलते हैं। अगर अमेरिका वियतनाम में हिंसा कर रहा है तो वह वहां के गरीबों के लिए कर रहा है। कोई अपने लिए थोड़े ही हिंसा करता है, हमेशा दूसरों के लिए करता है। अगर मैं तुम्हारी हत्या भी कर दूं तो यह तुम्हारे ही हित के लिए करूंगा, तुम्हारी मदद में करूंगा। अगर तुम मर भी गए और मेरे हाथ से मरे तो भी तुम्हें मेरी करुणा पर निगाह रखनी पड़ेगी। तुम्हारे ही हित के लिए मैं तुम्हारी हत्या भी कर सकता हूं।

इस तरह तुम सारे संसार की निंदा किए चले जाते हो। जब भारत ने गोआ पर आक्रमण किया और चीन के साथ युद्ध किया तो बर्ट्रेंड रसेल ने नेहरू की आलोचना की और पूछा कि अब तुम्हारी अहिंसा कहां गई ? तुम सब गांधीवादी हो; तुम्हारी अहिंसा का क्या हुआ ?

नेहरू ने भारत में बर्ट्रेंड रसेल की पुस्तक पर प्रतिबंध लगाकर उसका जवाब दिया। रसेल ने जो किताब लिखी थी, उस पर नेहरू ने पाबंदी लगा दी, यही हमारी अहिंसा है। यह एक बढ़िया विवाद बन सकता था। वह किताब भारत में मुफ्त बांटी जानी चाहिए थी, क्योंकि रसेल ने सुंदर विवाद खड़ा किया था। उसने कहा था— तुम हिंसक हो; तुम्हारी अहिंसा महज राजनीतिक है। तुम्हारे गांधी महात्मा नहीं थे, वे एक कूटनीतिज्ञ थे। तुम सब अहिंसा की बात करते हो, लेकिन जब मौका आता है तो तुम हिंसक हो जाते हो। और जब दूसरे लड़ते हैं तब तुम ऊंचे मंच पर खड़े होकर सारी दुनिया को हिंसक कहकर उसकी निंदा करते हो।

व्यक्ति, समाज, संस्कृति, राष्ट्र, सबके साथ यही होता है। अगर तुम आदर्शवादी हो, तो तुम्हें खुद को बदलने की जरूरत न रही। तुम हमेशा इस आशा में रहोगे कि वे आदर्श तुम्हें भविष्य में बदल देंगे। और ऐसे तुम आसानी से दूसरों की निंदा कर सकते हो।

तंत्र कहता है— अपने साथ रहो, जो भी तुम हो उसे स्वीकार करो। न अपनी निंदा करो और न दूसरों की। निंदा निरर्थक है। उससे ऊर्जा का रूपांतरण नहीं होता। इसलिए पहला कदम स्वीकार है। तथ्य के साथ जीयो। यह बहुत वैज्ञानिक बात है। क्रोध, लोभ और कामवासना के तथ्य के साथ जीयो और उन्हें उनकी पूरी तथ्यता में जानो। उन्हें बस ऊपर-ऊपर, सतह पर छूकर मत छोड़ दो; बिलकुल उनकी जड़ में उतरो।

और याद रहे, जब तुम किसी चीज की जड़ में उतरते हो तो तुम उसका

अतिक्रमण कर जाते हो। अगर तुम अपनी कामवासना को उसकी जड़ों तक जान लो तो तुम उसके मालिक हो जाओगे। अगर क्रोध को उसकी जड़ों तक जान लो तो तुम क्रोध के मालिक हो जाओगे। तब क्रोध साधक बन जाता है। और तुम उसका उपयोग कर सकते हो।

मुझे गुरजिएफ की अनेक बातें याद आती हैं। गुरजिएफ अनेक शिष्यों को सही ढंग से, सम्यक रूप से क्रोध करना सिखाता था। उसकी यह शिक्षा पुरानी तंत्र परंपरा से प्रभावित थी। पश्चिम में गुरजिएफ की बहुत निंदा हुई, क्योंकि पश्चिम में वह तंत्र का जीवंत प्रतीक था। वह सम्यक क्रोध सिखाता था।

गुरजिएफ सिखाता था कि कैसे सम्यकरूपेण क्रोध किया जाए। अगर तुम्हें क्रोध आए तो वह कहेगा— पूरी तरह क्रोध करो; उसे दबाओ मत, उसे उसकी समग्रता में प्रकट होने दो; उसमें पूरी तरह उतर जाओ और क्रोध ही बन जाओ।

गुरजिएफ कहेगा— क्रोध को रोको मत; उसके बाहर मत खड़े रहो, उसकी गहराई में कूद पड़ो; तुम्हारे समूचे शरीर को अंगार बन जाने दो।

कभी किसी को तुमने क्रोध की इस गहराई में उतरते नहीं देखा होगा। कभी तुमने खुद भी इस तरह क्रोध नहीं किया होगा। क्योंकि कमोबेश हर आदमी सुसंस्कृत है; कोई भी मौलिक नहीं है, हर आदमी अनुकरण कर रहा है, नकल कर रहा है। अगर तुम क्रोध में समग्रता से उतर सके, तो तुम दहकती आग बन जाओगे। और आग इतनी गहरी होगी, उसकी ज्वाला इतनी गहरी होगी कि अतीत और भविष्य दोनों उसमें विलीन हो जाएंगे, तुम मात्र वर्तमान की ज्वाला बनकर रह जाओगे। और जब तुम्हारा कोश-कोश आग हो जाएगा और तुम मात्र क्रोध ही होकर रह जाओगे, तब गुरजिएफ कहेगा— अब सजग हो जाओ, बोधपूर्ण हो जाओ; दमन मत करो, जागो। अब अचानक होशपूर्वक देखो कि तुम क्या हो गए हो ! देखो कि यह क्रोध क्या है !

इस समग्र उपस्थिति के क्षण में तुम अचानक भाग सकते हो और पूरी बात की व्यर्थता पर, उसकी मूढ़ता पर, बेवकूफी पर हंस सकते हो। यह दमन नहीं है, यह हंसी है। तुम अपने पर हंस सकते हो, क्योंकि तुम अपना अतिक्रमण कर चुके हो। क्रोध अब फिर कभी तुम पर मालकियत नहीं कर सकेगा। तुमने क्रोध को उसकी संपूर्णता में जान लिया। अब तुम उस पर हंस सकते हो; अब तुम उसके पार जा सकते हो। तुम अब पार से अपने ही क्रोध को देख सकते हो। और यदि तुमने एक बार उसे उसकी समग्रता में देख लिया तो तुमने जान लिया कि क्रोध क्या है। और अब तुम यह भी जानते हो कि अगर समूची ऊर्जा भी क्रोध में बदल जाए तो भी तुम उसके द्रष्टा बने रह सकते हो। इसलिए

अब डर की कोई बात न रही।

यह याद रहे कि जो ज्ञात नहीं है, अज्ञात है, वह सदा भय पैदा करता है; जो अंधेरे में है, वह हमेशा भयभीत करता है।

तुम अपने क्रोध से भयभीत हो, डरे हो। लोग कहते हैं कि हम अपने क्रोध को इसलिए दबाते हैं कि क्रोध करना अच्छा नहीं है, उससे दूसरे को चोट लगती है। लेकिन यह असली कारण नहीं है। असली कारण है कि वे अपने क्रोध से भयभीत हैं। अगर वे सच में क्रोधित हो जाएं तो क्या होगा, इसका उन्हें पता नहीं है। वे अपने आप से डरे हुए हैं, भयभीत हैं। उन्होंने कभी क्रोध को नहीं जाना। यह उनके भीतर छिपी हुई एक डरावनी चीज है; वे डरे हुए हैं। यही कारण है कि वे समाज, संस्कृति, शिक्षा के पीछे-पीछे हो लेते हैं और कहते हैं कि हमें क्रोध नहीं करना चाहिए; क्रोध बुरा है, उससे दूसरों को दुख होता है।

तुम अपने क्रोध से भयभीत हो, तुम अपनी कामवासना से भयभीत हो। तुम कभी समग्र रूप से काम-कृत्य में नहीं उतरे; तुम कभी इस समग्रता से संभोग में नहीं उतरे कि अपने को भूल गए हो। तुम हमेशा वहां मौजूद थे, तुम्हारा मन मौजूद था। और अगर काम-कृत्य में तुम्हारा मन मौजूद है तो वह कृत्य सदा झूठा होगा, नकली होगा। मन को वहां विसर्जित होना चाहिए; तुम्हें मात्र शरीर रह जाना चाहिए। वहां किसी तरह का सोच-विचार नहीं चलना चाहिए। अगर विचार चलता है तो तुम विभाजित हो गए। तब तुम्हारा काम-कृत्य अतिरिक्त ऊर्जा का स्खलन मात्र होकर रह जाएगा। वह स्खलन से ज्यादा कुछ नहीं होगा।

लेकिन तुम काम-कृत्य में समग्रता के साथ उतरने में डरते हो। और इसी वजह से तुम समाज की मानकर चलते हो और कहते हो कि कामवासना बुरी है। तुम भयभीत हो। लेकिन तुम भयभीत क्यों हो ?

तुम भयभीत हो, क्योंकि अगर तुम समग्रता से संभोग में उतरे तो तुम क्या कर गुजरोगे, इसका तुम्हें कुछ पता नहीं है। तब क्या होगा, यह भी तुम्हें नहीं मालूम है। तब कौन-सा पशुबल जागेगा, यह तुम नहीं जानते हो। और तुम नहीं जानते हो कि तुम्हारा अचेतन तुम्हें उठाकर कहां फेंक देगा। तुम्हें कुछ नहीं मालूम है। तब तुम अपने मालिक नहीं रहोगे, तब तुम्हारा नियंत्रण जाता रहेगा। और तब तुम्हारी प्रतिमा भी नष्ट हो जाएगी। इसीलिए तुम काम-कृत्य पर नियंत्रण रखते हो। और नियंत्रण रखने का उपाय है कि मन से तुम मौजूद रहो। काम-कृत्य तो हो, लेकिन महज स्थानीय रहे।

इस 'स्थानीय और समग्र' को समझने की कोशिश करो। तंत्र कहता है कि जब सिर्फ तुम्हारा काम-केंद्र काम-कृत्य में संलग्न होता है तब वह कृत्य स्थानीय है। वह स्थानीय हैं, स्थानीय स्खलन है। काम-केंद्र निरंतर ऊर्जा इकट्ठी कर रहा है, और जब वह ऊर्जा अतिशय हो जाती है तो तुम्हें उसे निकास देना पड़ता है। अन्यथा वह ऊर्जा तनाव पैदा करेगी, बोझिल हो जाएगी। इसलिए तुम उसका स्खलन कर देते हो। लेकिन वह स्थानीय स्खलन है। उसमें तुम्हारा समूचा शरीर, समूचे तुम सम्मिलित नहीं होते हो।

गैर-स्थानीय यानी समग्र काम-कृत्य का अर्थ है कि उसमें तुम्हारे शरीर का एक-एक रेशा, एक-एक कोश, समूचे तुम सम्मिलित होते हो। काम-केंद्र ही नहीं, तुम्हारा पूरा अस्तित्व कामुक हो उठा है; समूचा अस्तित्व काममय हो गया है।

लेकिन तुम भयभीत हो, डरे हुए हो। क्योंकि उस हालत में कुछ भी हो सकता है। और तुम्हें नहीं मालूम है कि क्या होगा, क्योंकि तुमने कभी समग्रता को नहीं जाना है। तब तुम कुछ भी कर सकते हो जिसको तुम सोच भी नहीं सकते। उसमें तुम्हारे अचेतन का विस्फोट हो सकता है। तुम एक नहीं अनेक पशु एक साथ हो सकते हो, क्योंकि तुम अनेक जीवनों से गुजर चुके हो, अनेक पशु-जीवनों से। तुम चीखने-चिल्लाने लग सकते हो, तुम सिंह की भांति दहाड़ने लग सकते हो। तुम नहीं जानते कि क्या हो सकता है। कुछ भी संभव है। और उससे भय पैदा होता है।

इसीलिए तुम नियंत्रण में रहते हो और किसी भी कृत्य में अपने को पूरी तरह नहीं खोते। और उसका नतीजा यह होता है कि तुम कभी कुछ नहीं जानते हो। और जाने बिना अतिक्रमण नहीं हो सकता है।

स्वीकार करो। गहरे उतरो और बिलकुल जड़ों तक जाओ। यही तंत्र है। तंत्र गहन अनुभव की हिमायत करता है। जिसका अनुभव ले लिया जाता है, उसका अतिक्रमण हो जाता है। और जिसका दमन करोगे, उसका अतिक्रमण कभी नहीं हो सकता।

आज इतना ही।

ओशो—एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या शृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है : ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर, 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैरकर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च, 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि को उपलब्ध हुए। संबोधि के संबंध में वे कहते हैं : 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूं। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।' उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। बुद्धत्व घटित होने के पश्चात भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन् 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्ड मेडलिस्ट) रहकर एम॰ ए॰ की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः ही 60-70 हजार की संख्या में उपस्थित होनेवाले श्रोताओं में वे आध्यात्मिक जन-जागरण की लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी

में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध, थी जो किसी पार के लोक से आती है।

सन् 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया, ताकि वे ध्यान की कला को और एक नये मनुष्य ज़ोरबा दि बुद्धा—के अपने जीवन-दर्शन को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचा सकें। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है, जो भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है; जो मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है।

सन् 1970 में वे बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें बताया कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आस-पास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में पहचाने जाने लगे।

सन् 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने पर उनके प्रभाव का घेरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम, पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। कृष्ण, शिव, महावीर, बुद्ध, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म आकाश के अनेक संतों—आदि शंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है, जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी अनेक साधना-पद्धतियों के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण, संभावित परमाणु युद्ध का विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन

नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।''

वे दिन में केवल दो बार बाहर आते रहे—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

वर्ष 1979 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष उन्हें जून में अमरीका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगॉन के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जगह खरीदी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह जगह एक फूलते-फ ते शहर में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5,000 प्रेमी मित्र मिल-जुलकर अपने सद्गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे, वैसे ही अचानक अक्टूबर 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया।

मध्य सितंबर 1985 में ओशो की सचिव के रजनीशपुरम छोड़कर चले जाने के बाद उसके अपराधों की खबरें ओशो तक पहुंचीं। उसके अपराधपूर्ण कृत्यों के संबंध में बताने के लिए एक विश्व पत्रकार-सम्मेलन बुलाया, जिसमें ओशो ने स्वयं प्रशासन-अधिकारियों से अपनी सचिव को गिरफ्तार करने को कहा। लेकिन अधिकारियों की खोजबीन का उद्देश्य कम्यून को नष्ट करना था, न कि सचिव के अपराधपूर्ण कृत्यों का पता लगाना। प्रारंभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं। यह उनके लिए एक अच्छा मौका था।

अक्टूबर, 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डालकर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल ले जाया जाता रहा। जगह-जगह घुमाते हुए उन्हें पोर्टलैंड (ओरेगॉन) ले जाया गया। सामान्यतः जो यात्रा पांच घण्टे की है, वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असर वाला ज़हर दिया।

14 नवंबर, 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने उन्हें विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। उनकी देखभाल करनेवाले उनके गैर-भारतीय शिष्यों के वीसा रद्द कर दिये गये, उन्हें मिलने के लिए आनेवाले पत्रकारों और उनके शिष्यों को वीसा देने से इनकार किया गया। तब ओशो नेपाल चले गये। लेकिन उन्हें नेपाल में भी अधिक समय तक रुकने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी, 1986 में वे विश्व-भ्रमण के लिए निकले, जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से की। लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतंत्र लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्जरलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई, 1986 में बम्बई और जनवरी, 1987 में पूना में अपने आश्रम में लौटे, जो अब ओशो कम्यून इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों के आग्नेय बाणों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इंटरनेशनल में अकसर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित यूटोपिया का सपना साकार देखकर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर, 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी, 1989 को ओशो कम्यून इंटरनेशल के बुद्ध सभागार में प्रवचन के दौरान उनके 10,000 शिष्यों व प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्तूबर, 1985 में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने के कारण एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया, जिसके बावजूद वे ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल, 1989,

तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे।

17 सितंबर, 1989 से गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। यह बैठक 'ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड' कहलाती है। ओशो 16 जनवरी, 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सभा में उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर में इतना दर्द है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी, 1990 की संध्या-सभा में घोषणा की गई कि ओशो अपनी देह छोड़कर पांच बजे अपराह्न को महाप्रयाण कर गए हैं। ओशो की इच्छा के अनुरूप उसी संध्या उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए ला कर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी, 1990 की पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून में लाकर च्वांग्त्सू हॉल में निर्मित एक संगमरमर की समाधि में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों से अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931—Jan 19 1990

ओशो कम्यून, ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन ओशो की विदेह-उपस्थिति में आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बन गया है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति की अनुभूति कर रहे हैं।

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

मीरा
पद घुंघरू बांध
झुक आई बदरिया सावन की

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागों में)

अष्टावक्र
महागीता (छह भागों में)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूंघट के पट खोल
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फरीद)

शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

दादू
सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन
नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

सुंदरदास
हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

पलटू
अजहूं चेत गंवार
सपना यह संसार
काहे होत अधीर

धरमदास
जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

मलूकदास
कन थोरे कांकर घने
रामदुवारे जो मरे

दरिया
कानों सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कंवल

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदि शंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना
(दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर
नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पाजेब बजी

12
8
20
9
30

ओशो

तंत्र-विज्ञान

- तंत्र-विज्ञान बाहर की किसी गुफा-ग़ार को नहीं, अपने तन को हुजरा बना लेने की एक विधि है, जिसमें बैठकर यह मिट्टी-काया तरंगित होकर ईश्वर का हुजरा बन जाती है।

- ओशो कहते हैं, 'तंत्र विज्ञान है, दर्शन नहीं है'; वह 'कैसे' की चिंता करता है, वह बताता है कि सत्य को 'कैसे' प्राप्त किया जाए। वह तंत्र की आत्मा में उतरे और अनुभव से तरंगित होकर वाणी को तरंगित कर पाए और इस तरह शिव के बीज अक्षरों में ओशो ने प्राण-प्रतिष्ठा करके 'तंत्र-विज्ञान' की धारा ही प्रवाहित कर दी।

- 20वीं सदी के सर्वाधिक लोकप्रिय संत दार्शनिक और प्रखर वक्ता ओशो ने 'तंत्र-सूत्र' में अनेक आध्यात्मिक विधियां दी हैं, जिनसे मानव चेतना का विकास हो सके और वह आत्म उन्नति कर सके।

- 'तंत्र-विज्ञान' ओशो द्वारा भगवान शिव के 'विज्ञान भैरव तंत्र' पर दिए गए 80 प्रवचनों में से प्रथम बारह विधियों पर 1 से 8 प्रवचनों का संकलन है। यह तंत्र-विज्ञान का समग्र परिचय कराता है तथा इसके लाभ और उपयोगिता को रेखांकित करता है।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 75/-
ISBN 81-216-0788-6
AHW HPB HINDI SERIES